महावीर ग्रंथमाला—१७ वां पुष्प

महाकवि दौलतराम कासलीवाल
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

लेखक

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

एम. ए., पी-एच. डी., शास्त्री

भूमिका

डा० हीरालाल माहेश्वरी

एम. ए., एल्-एल्. बी., डी. फिल्., डी. लिट्.

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक

सोहनलाल सोगाणी

मंत्री

प्रबन्धकारिणी कमेटी

दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी,

महावीर भवन, जयपुर–३

प्रथम संस्करण

वीर निर्वाण संवत् २४६६

जून – १६७३

प्रतियां – १०००

मूल्य : दस रुपए

मुद्रक :
मनोज प्रिन्टर्स,
गोदीकों का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर—३०२००३
(राजस्थान)

विषय-सूची

प्रकाशकीय

" महाकवि दौलतराम कासलीवाल-व्यक्तित्व एवं कृतित्व " पुस्तक को पाठकों के हाथों में देते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता है। श्री महावीर ग्रंथमाला का यह १७ वां प्रकाशन है। इनमें राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची के पाँच भाग, प्रशस्ति संग्रह, प्रद्युम्नचरित, जिणदत्त चरित राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एव कृतित्व, Jaina Grantha Bhandars in Rajasthan, हिन्दी पद संग्रह जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों के नाम उल्लेखनीय है। "राजस्थान के जैन सन्त', पुस्तक पं० गोपालदास वरैय्या पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत होना हमारे प्रकाशनों के स्तर की ओर एक संकेत है। क्षेत्र द्वारा संचालित साहित्य शोध विभाग का मुख्य उद्देश्य प्राचीन एवं अलभ्य साहित्य का संरक्षण, महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन तथा राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों का सूचीकरण करना रहा है। इस उद्देश्य में उसे कहां तक सफलता मिली है इसके वारे में तो विद्वान ही कुछ कह सकते हैं। लेकिन क्षेत्र द्वारा प्रकाशित साहित्य के आधार पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जैनधर्म एवं साहित्य के प्रति विद्वानों में जो रुचि पैदा हुई है वह इसकी प्रगति का शुभ सूचक है। इसके अतिरिक्त साहित्य शोध विभाग में जितनी अधिक संख्या में विद्वान एवं शोध छात्र अपने शोध कार्य के लिये आने लगे हैं वह भी जैन साहित्य के प्रति विद्वानों की अभिरुचि में वृद्धि का एक कदम है ऐसा हमारा विश्वास है।

जयपुर नगर गत २४५ वर्षों से जैन विद्वानों का केन्द्र रहा है। हिन्दी साहित्य की इन्होंने जो महत्वपूर्ण सेवा की थी वह देश के विद्वानों से छिपी नहीं है। इन वद्वानों में दौलतराम जी, टोडरमल जी, वखतराम जी, जयचन्द जी, पारसदास जी, सदासुख जी, गुमानीराम, चंपाराम भांवसा आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों में से पं० ठोडरमल जी के वारे में तो समाज अवश्य जानता है लेकिन अन्य विद्वानों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी वहुत कम लोगों को है। दौलतराम कासलीवाल जयपुर नगर के ऐसे ही प्रथम महाकवि थे जिनके ग्रन्थों का हम स्वाध्याय तो करते रहते हैं लेकिन उनके व्यक्तित्व के वारे में अधिक नहीं जानते। इन्होंने हिन्दी भाषा में १८ ग्रन्थों की रचना करके साहित्य की महान सेवा की थी। प्रस्तुत पुस्तक में उनके विस्तृत जीवन परिचय के अतिरिक्त डा कासलीवाल जी ने तत्कालीन जयपुर के विद्वानों एवं

राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में भी अच्छी जानकारी दी है। पुस्तक में उनकी दो महत्वपूर्ण कृतियों —जीवन्धर चरित एवं विवेक विलास को पूर्ण रूप से तथा अन्य कुछ कृतियों के पाठांश दिये गये हैं। हमारा विश्वास है कि हिन्दी साहित्य पर काम करने वाले विद्वानों केलिये यह पुस्तकउपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के जैन कवियों को प्रकाश में लाने की हमारी योजना का एक शुभारम्भ है।

हिन्दी जैन कवियों पर विस्तृत परिचयात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित हिन्दी कृतियों के सम्पादन का कार्य भी चल रहा हैं। इनके प्रकाशन का कार्य भी शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है।

पुस्तक की भूमिका लिखने में राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के अधिकारी विद्वान् डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने जो कष्ट उठाया है इसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं।

१-६-७३

सोहनलाल सोगाणी
मंत्री

भूमिका

शोध मनन और महानता की दृष्टि से हिन्दी भाषा और साहित्य के अनेकविध अध्ययन में बहुत सी जिज्ञासाओं, पूर्वापर सम्बन्ध सूत्रों के ओझल रह जाने के कारण उत्पन्न उलझनों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएं भिन्न-भिन्न रूपों में हिन्दी के विद्वानों और शोधकों के सम्मुख यदाकदा आती रहती हैं। जहां तक जनसाधारण का प्रश्न है, वह तो 'खड़ी बोली' को, जो राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकृत है, हिन्दी मानता है किन्तु हिन्दी से थोड़ा-बहुत भी प्रेम रखने वाले यह जानते हैं कि हिन्दी की इयत्ता खड़ी बोली तक ही नहीं है। विद्वानों ने पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी तथा पहाड़ी और इनकी बोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत समझा है। कतिपय विद्वानों ने पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी की बोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत लेने का सुझाव दिया है। इस प्रकार, मोटे रूप से हिन्दी के अर्थ के सम्बन्ध में ये तीन मत प्रचलित हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से मैथिली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी और खड़ी बोली पृथक्-पृथक् भाषाएं हैं, पर साहित्यिक दृष्टि से विद्वान इनमें लिखे गए साहित्य को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत समझते हैं, और यह तो स्वीकृत तथ्य है ही कि परिमाण और गुण की दृष्टि से इन पांचों में लिखा गया साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी में बहुत बड़े परिमाण में एक प्रकार के मिश्रित साहित्य का भी निर्माण हुआ है। यह उस मिश्रित भाषा में रचा गया है जो प्रमुखतः दो भाषाओं के संवलन और एकीकरण से बनी है, यथा—राजस्थानी और ब्रज (जिसे पिंगल कहते हैं), राजस्थानी और खड़ी बोली (जिसके उदाहरण झूलणा, नीसाणी और अरिल्ल छन्दों में रचित प्रचुर रचनाएं हैं), ब्रज और खड़ी बोली। पं० टोडरमल, पं० दौलतराम कासलीवाल आदि अनेक लेखकों की गद्य रचनाएं इसी प्रकार की हैं। मिश्रित भाषा का आधारभूत व्याकरणिक ढांचा तो प्रायः एक भाषा का ही रहता है परन्तु दूसरी भाषा स्पष्टतः अन्योन्याश्रित रूप से समीकृत हुई रहती है। कहना न होगा कि "पिंगल" के अतिरिक्त अन्य ऐसी किसी भी 'मिश्रित भाषा' और उसके साहित्य का अध्ययन हिन्दी में नहीं हुआ है। मैं कहना चाहता हूँ कि मिश्रित भाषा का ऐसा समवाय और समवायिक मिश्रित भाषाओं का प्रचार-प्रसार हिन्दी भाषा के इतिहास की महनीय घटना है, यह उसकी समन्वया-

त्मक प्रवृत्ति और सरलीकरण का उद्घोष है। शोधार्थियों को इस ओर प्रेरित होना चाहिए।

इसलिए जब हिन्दी संज्ञा के अन्तर्गत उसका भाषिक या साहित्यिक अध्ययन किया जाता है (विशेषतः लगभग संवत् १९२५ तक) तो अध्येता के लिए यह बताना परमावश्यक हो जाता है कि वह इसके अन्तर्गत किस भाषा का (राजस्थानी, व्रज, अवधी या मिश्रित आदि का) अध्ययन प्रस्तुत कर रहा है। यदि कोई अध्येता हिन्दी नाम के अन्तर्गत उसके आभोग में आने वाली किसी भाषा-विशेष का उल्लेख न करके, सामान्य रूप से एक भाषा या उसके साहित्य का ही अध्ययन प्रस्तुत करता है, तो वह हिन्दी नाम की सार्थकता कदापि सिद्ध नहीं करता। यह केवल अध्येता का अपना और सुविधावादी दृष्टिकोण ही है। दुर्भाग्य से हिन्दी में आजकल ऐसे अध्ययन ही अधिक हो रहे हैं, जो अनेक भ्रान्तियों को जन्म देते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध है कि हिन्दी का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और उसकी-अर्थात् उसकी विभिन्न बोलियों को प्रयोग में लाने वालों की संख्या देश की लगभग एक तिहाई जनसंख्या के बराबर है। इतने बड़े प्रदेश में हिन्दी की विभिन्न बोलियों में रचे गए साहित्य का अभी तक आकलन और संचयन भी भली प्रकार नहीं हो सका है, और जब कोई भी साहित्यिक महत्व की कृति या अच्छा कवि जब कभी प्रकाश में आता है तो हिन्दी साहित्य की परम्परा में या तो वह एक नई कड़ी जोड़ता है अथवा क्षीण ही सही, किसी नई परम्परा की सूचना देता है। अनेक कारणों से बड़े क्षेत्र विशेष में लोक-भावना के अनुसार, कतिपय नवीन साहित्यिक पम्पराएँ आरम्भ हो जाती हैं। इसके विशिष्ट कारण पारम्परिक, भौगोलिक, राजनैतिक और सामाजिक होते हैं। यद्यपि सांस्कृतिक स्रोत प्रायः सबका समान ही रहता है तथापि इन कारणों से लोक में विभिन्न परम्परा या परम्पराओं का विकास और प्रसार हो जाता है। जैसे भाषा विशेष की अपनी प्रकृति होती है वैसे ही इन साहित्यिक परम्पराओं की भी अपनी विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें भाषा विशेष की साहित्यिक जातीय परम्पराएँ कह सकते हैं। उदाहरणार्थ, व्रज भाषा की प्रकृति की मुख्य बातें ये कही जा सकती हैं—मुक्तक, सवैया, मनहरण, और दोहा छन्द, शृंगार प्रेम तथा राधा-गोपी-कृष्ण विषयक रचनाओं का बाहुल्य, हृदय की कोमल मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति आदि। राजस्थानी की प्रकृति की मुख्य बातें हैं— मुक्तक रचनाओं के साथ-साथ प्रभूतशः प्रबन्धात्मक ऐतिहासिक और वीर रसात्मक रचनाओं का निर्माण, शुद्ध लौकिक प्रेमकाव्य, ओज गुण प्रधान, कोमल शक्तियों के साथ-साथ परुष और कठोर

वृत्तियों का चित्रण, राम और कृष्ण के वीर और उद्धारक रूपों का विशेषतः चत्रण, डिंगल गीत दोहा और नीसाणी आदि छन्दों का प्रभूत प्रयोग आदि। व्र जी में जहां राधा कृष्ण और गोपी कृष्ण से सम्बन्धित अनेक लीलाओं और चरित्र का वर्णन मिलता है, वहां राजस्थानी में रुक्मिणि-कृष्ण प्रबन्ध अथवा रामचरित विषयक प्रबन्ध काव्यों का बाहुल्य है। यद्यपि भगवान के सभी अवतार सभी जगह मान्य है तथापि उल्लिखित कारणों से राजस्थानी में जहाँ भगवान के उद्धारक और वीर रूप को विशेष रूप से लिया गया है, वहां ब्रजी में विशेषतः कृष्ण के बाल अथवा राधा कृष्ण या गोपी कृष्ण रूप को। यह तो एक छोटा सा उदाहरण है जो यह सिद्ध करता है कि व्यापक रूप से हिन्दी साहित्य के सम्यक् और सांगोपांग अध्ययन में प्रत्येक क्षेत्र में लिखे गये प्रत्येक प्रकार के हिन्दी साहित्य का आलोड़न-विलोड़न और वहां प्रचलित विशेष परम्पराओं को समझने की एक महती आवश्यकता है। इस संदर्भ में एक और बात की ओर संकेत करना भी आवश्यक है। ऐसी अनेक समृद्ध साहित्यिक परम्पनाएँ और काव्य ग्रन्थ हैं, जिनका इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है। कइयों का तो नामोल्लेख मात्र भी नहीं है। विद्वानों के पुनः विचारार्थ इन परम्पराओं की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है—जैन साहित्य परम्परा, संत काव्य परम्परा, राम और कृष्ण काव्य परम्परा, ऐतिहासिक और वीर रसात्मक काव्य परम्परा, विभिन्न जीवन्त सम्प्रदायों का साम्प्रदायिकता से मुक्त साहित्य और उसकी सतत प्रवहमान परम्परा। 'आदिकाल' के जाली या परवर्ती सिद्ध हुए काव्यों का यथाकालों में सन्निवेश, भक्ति काल में अनेकशः वीर काव्यों तथा लौकिक प्रेम काव्यों आदि का विवेचन, रीतिकाल में पूर्वकालों की परम्पराओं के अतिरिक्त, नवीन उद्भूत सम्प्रदायों के साम्प्रदायिकता मुक्त काव्यों, राष्ट्रीय काव्यों का समावेश आदि आदि। ये कुछ ऐसी बातें हैं जिनको हिन्दी साहित्य के इतिहास में सम्यक् स्थान मिलना चाहिए। अब यह बात अनेक विद्वानों द्वारा मान ली गई है कि जिन रचनाओं में साहित्यिक गुण हैं और जिनका प्रेरणा स्रोत धर्म है, साहित्यिक, इतिहास में विवेचनीय हैं।

ऊपर हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैन साहित्य के सन्निवेश और मिश्रित भाषा का उल्लेख हो चुका है। कहना न होगा कि जैन साहित्य के अनेक कवि और कृतियाँ इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास में विवेचनीय हैं। भाषा की दृष्टि से भी जैन साहित्य का गौरवपूर्ण स्थान है। हिन्दी की अन्यान्य प्रमुख काव्यधाराओं की भाँति, जैन साहित्य धारा भी किसी न किसी रूप में सतत प्रवहमान रही है। आदिकाल से लेकर अद्य पर्यन्त जैन साहित्य की

अनेक कृतियां प्रकाश में आ चुकी हैं किन्तु फिर भी उनका किसी प्रकार का कोई उल्लेख साहित्येतिहास में एक धारा विशेष के रूप में अथवा भाषागत देन के रूप में विद्वानों द्वारा नहीं किया गया है ।

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल की प्रस्तुत कृति 'महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व' एक ऐसा ही ग्रन्थ है जो पांच दृष्टियों से विशेष रूप से उल्लेखनीय है :—(१) दौलतराम का काव्य (२) उनका गद्य (३) पाठ-सम्पादन और व्याख्या की दृष्टि से (४) काव्य रूप, भाषा, कथानक रूढ़ियाँ और तत्कालीन समाज चित्रण (५) कवि द्वारा अपनी भाषा विषयक संकेत ।

यह आश्चर्य की बात ही कही जानी चाहिए कि दौलतरामजी का आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा उल्लेख किए जाने के बाद भी, ये परवर्ती विद्वानों की दृष्टि से ओझल ही रहे । शुक्लजी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'गद्य का विकास' (पृ०४११) के संदर्भ में दौलतराम का नामोल्लेख और उनके गद्य में लिखे आदिपुराण की नमूने के रूप में कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की हैं । इस प्रकार एक हिन्दी गद्य लेखक के रूप में दौलतरामजी साहित्य संसार में थोड़े बहुत परिचित तो थे किन्तु इस रूप में भी उनकी किसी प्रकार की कोई चर्चा नहीं हुई ।

प्रस्तुत पुस्तक के सुयोग्य संपादक और लेखक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इसमें न केवल कवि की तीन गद्य कृतियों—'पद्मपुराण भाषा', 'आदिपुराण', और 'हरिवंश पुराण' के कतिपय अंशों को मूल रूप में दिया है, अपितु उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाओं, 'जीवन्धर स्वामी चरित', 'विवेक विलास' पूर्ण रूप में तथा श्रीपाल चरित, परमात्म प्रकाश भाषा टीका एवं अध्यात्म बारहखड़ी का आंशिक रूप में समावेश किया है । इससे गद्य लेखक के रूप में भी दौलतरामजी प्रकट होते हैं । हिन्दी गद्य के अनुसन्धित्सुओं के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री है । इनकी भाषा खड़ी बोली मिश्रित व्रज भाषा है जिसमें यत्र-तत्र ढूंढाड़ी की झलक भी दिखाई देती है, किन्तु बहुत ही कम । और निश्चय ही यह मिश्रित भाषा अध्ययन का नवीन बिन्दु उपस्थित करती है । व्रज और खड़ी बोली मिश्रित ऐसी भाषा के उदाहरण केवल दौलतरामजी की रचनाओं में ही नहीं प्राप्त होते, इनसे किंचित् पूर्व हुए पं० टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक की भाषा भी ऐसी ही है । दोनों की भाषा में अंतर इतना है कि जहां टोडरमलजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक की भाषा में व्रजी अपेक्षाकृत प्रधान है, वहां दौलतरामजी की भाषा में व्रज और खड़ी बोली दोनों का बराबर सा मिश्रण है । ढूंढाड़ी का हल्का पुट दोनों की ही भाषाओं में है, जो दोनों के इस क्षेत्र के निवासी होने

के कारण स्वाभाविक ही था। खड़ी बोली और ब्रज भाषाओं के विकास क्रम में इस प्रकार की भाषा का प्रचलन, उसकी मुख्य-मुख्य कृतियां और उसके समय विशेष के स्वरूप तथा मानक खड़ी बोली के विकास क्रम में उसका योगदान, अध्ययन के वे नए आयाम हैं, जिनकी ओर शोधार्थियों का ध्यान जाना चाहिए। यह जहाँ हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रसार का द्योतक है, वहां तदयुगीन एक सामान्य भाषा की आवश्यकता पूर्ति की ओर उल्लेखनीय कदम भी।

दौलतरामजी का काव्य जैन धर्म से प्रभावित तो है किन्तु उनकी कृतियों में सुन्दर काव्यत्व के भी दर्शन होते हैं। जैन काव्यों की चरित परम्परा में उनके 'जीवन्धर स्वामी चरित', 'श्रेणिक चरित' और श्रीपाल चरित उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ये अधिकांश में पद्यात्मक कृतियाँ हैं, तथापि अनेक स्थलों पर रूप, स्थिति और मनोभावनाओं के मोहक चित्र इनमें मिलते हैं। काव्य, अध्यात्म और रूप की दृष्टि से दौलतरामजी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाएं विवेक-विलास और अध्यात्म-बारहखड़ी हैं। ये दोनों कृतियाँ हिन्दी की दो विशिष्ट परम्पराओं-रूपक काव्य तथा कक्को काव्य या बावनी काव्य या बारह खड़ी काव्य परम्परा की न केवल महत्वपूर्ण कृतियां ही हैं, अपितु उनके प्रौढ़ रूप का दिग्दर्शन कराती हैं। विवेक विलास में ६२४ दोहे हैं, जो दोहा काव्य परम्परा में भी विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। जैन कवियों द्वारा लिखित रूपक या प्रतीक काव्य की परम्परा पुरानी है। हिन्दी में पन्द्रहवीं शताब्दी उतरार्ध के आरंभ में राजशेखर सूरि रचित 'त्रिभुवन दीप प्रबन्ध' (अपर नाम प्रबोध चिन्तामणि या परमहंस प्रबन्ध) इस प्रकार की एक महत्वपूर्ण रचना है। इस परम्परा में जैन और जैनेतर सभी कवियों ने योगदान दिया है किन्तु सर्वाधिक कृतियाँ जैन कवियों की ही मिलती है। जैनेतर कवियों में इस कोटि की रचना अधिकांशत: विभिन्न सम्प्रदायों के कवियों ने अध्यात्म-दृष्टि से की हैं, जिनमें विष्णोई कवि सुरजनदासजी कृत 'ज्ञान महातम' और 'ज्ञान तिलक' तथा सेवादास रचित 'पिसण संघार,' प्रबन्धाभास बड़े रूपक काव्य हैं। ६२४ दोहों में रचित विवेक विलास इस परम्परा की सर्वाधिक बड़ी और महत्वपूर्ण रचना है। इसी प्रकार कक्को या बारहखड़ी काव्य भी बहुत लिखा गया है जिसमें जैनेतर कवियों का योगदान, रूपक काव्यों की तुलना में बहुत ज्यादा है। ऐसी काव्य परम्परा में प्रस्तुत कवि की अध्यात्म बारहखड़ी का महत्त्व स्वयं स्पष्ट है।

पाठ संपादन और व्याख्या के क्षेत्र में भी दौलतराम जी के परमात्म-प्रकाश भाषा टीका का विशेष महत्व है। इसमें उन्होंने परमात्म प्रकाश के पाठ के साथ प्रत्येक छन्द की विस्तार से टीका, जिसे व्याख्या कह सकते हैं, की है। इस कृति के पाठ-संपादन के लिए दौलतरामजी द्वारा प्रस्तुत किया गया पाठ

भी विचारणीय सिद्ध हो सकता है । इसके जो दो उदाहरण प्रकाशित 'टीका' में दिए गए हैं, उनको डा० ए० एन० उपाध्ये संपादित 'परमात्म प्रकाश' से मिलाने पर शब्दान्तों में कुछ अन्तर प्रतीत होता है । डा० उपाध्ये के संवधित पाठ में जहां 'भासग्रो', 'दिव्व-काग्रो', 'दिव्व-जोग्रों, शब्द हैं, वहां इस टीका में उनके स्थान पर क्रमशः भासउ, दिव्वकाउ, तथा दिव्व जोउ शब्द हैं । शब्दान्त में 'ओ' और 'उ' के ये प्रयोग स्वर परिवर्तन के लेखन-प्रमाद के कारण भी हो सकते है और भाषा-प्रवृत्ति भी । यदि इसकी विभिन्न प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध हो कि इस भाषा टीका का पाठ एक, विभिन्न परम्परा या उप परम्परा का है, तो निस्सन्देह इसका महत्व बढ़ जाएगा । अर्थों का स्पष्टीकरण टीका में विस्तार से किया गया है जो इसके अध्येताओं को मूल मंतव्य को हृदयंगम कराने में सहायता देता है । संदेश रासक को समझने के लिए जैसे लक्ष्मी चन्द्र कृत टिप्पणक रूपा व्याख्या तथा दूसरी टीका जिसे अवचूरिका कहा गया है, का जो महत्व है, वैसा ही महत्व परमात्मप्रकाश को समझने के लिए दौलत राम कासलीवाल की इस भाषा टीका का है । यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि अपभ्रंश काव्यों को समझने के लिए ऐसी टीकाओं का आज बड़ा महत्व है । अपभ्रंश की ही नही, हिन्दी की बहुत सी पुरानी कृतियों को भी यदि उनकी टीकाएं उपलब्ध होतीं, तो और भी अच्छी तरह समझा जाता । राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि क्रिसन रुक्मणी' का भावार्थ उसकी ऐसी विभिन्न टीकाओं के कारण ही हमको प्रधानतः सुलभ हुआ है ।

मध्ययुगीन काव्यों में अनेक कथानक रुढ़ियों का प्रयोग हुआ है । जैन काव्यों में भी विभिन्न अवसरों पर कथा को वांछित मोड़ देने में इनका प्रयोग किया गया है । दौलतराम जी के उल्लिखित चरित काव्यों में उनका प्रभूत प्रयोग हुआ है । इस दृष्टि से यह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है । तत्कालीन समाज और कतिपय स्थानों तथा व्यक्तियों के नामोल्लेख दौलतराम जी की रचनाओं में किए गए मिलते हैं । इससे उनके समय के समाज को विशेषतः जैन समाज को समझने का माध्यम तो मिलता ही है, साथ ही उस समय के अन्य जैन विद्वानों और कवियों का उल्लेख, जैन साहित्यिक परम्परा का द्योतन तथा उल्लिखित लोगों के विषय में अध्ययन करने की हमारी इच्छा को जाग्रत करता है ।

एक उल्लेखनीय बात यह है कि दौलतराम जी ने अपनी भाषा को 'देश भाषा' की संज्ञा दी है । प्रायः सभी हिन्दू कवियों ने अपनी भाषा-द्योतन के लिए ऐसे या ऐसे ही अन्य प्रयोग किए हैं । 'देश भाषा' प्राकृत भाषा या भाषा के ऐसे उल्लेख, मुसलमान कवियों द्वारा लिखी गई की खड़ी बोली रचनाओं के

लिए प्रयुक्त हिन्दी, हिन्दवी आदि के संदर्भ में कुछ विचारणीय संकेत उपस्थित करते हैं। खड़ीबोली प्रसार के प्रसंग में ऐसे संकेतों द्वारा द्योतित भाषा और उसकी मूल प्रवृत्ति का अध्ययन, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से किया जाना नितान्त आवश्यक है। इससे हिन्दी की उल्लिखित सभी भाषाओं विशेषतः खड़ी बोली के सबन्ध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलेंगे।

डा० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल ने अपनी वृहद् प्रस्तावना में दौलतरामजी और उनकी कृतियों पर तो अनेकविध प्रकाश डाला ही है, तत्कालीन विद्वत्-मंडली और विभिन्न कवियों का भी संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित परिचय दिया है, जो मूल रूप में पठनीय है। दौलतराम जी का समय संवत् १७४६ से १८२६ तक अर्थात् अठारहवीं शताब्दी उतरार्ध और उन्नीसवीं का पूर्वार्द्ध था। इस प्रकार, डा० कासलीवाल जी की प्रस्तावना से उस समय के अन्य महत्वपूर्ण कवियों का परिचय भी प्राप्त हो जाता है। इस समय से सबन्धित जैन साहित्य पर शोध कार्य करने वालों के लिये एक आधार भूमि इस प्रस्तावना में मिलती है।

डा० कासलीवाल लगभग पिछले २५ वर्षों से किसी न किसी रूप में साहित्य सेवा करते रहे हैं। हिन्दी संसार उनकी विभिन्न कृतियों और लेखों के माध्यम से उनसे परिचित है। अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ उन्होंने साहित्य ससार को प्रदान की हैं। जिन तथ्यों, साहित्यिक मान्यताओं और परम्पराओं को उन्होंने साकार रूप दिया है, उनसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने अपने मत-मतान्तरों में संशोधन किए हैं। अनेक शोधार्थियों को उनकी रचनाओं से नवीन क्षेत्र, आधार भूमि, प्रेरणा और सम्बल मिला है। विना किसी प्रकार का शोर-गुल किए वे एकान्त भाव से साहित्य साधना में लीन और 'असूर्यपश्य' रचनाओं को हमारे सम्मुख रख रहे हैं। स्वतः प्रेरणा के स्रोत और धुन के धनी डा० कासलीवाल जैसे साहित्य साधक और शोधक कम ही मिलेंगे। उनकी सभी कृतियों का साहित्य संसार में बहुत अच्छा स्वागत हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनका यह ग्रन्थ यथारुचि, साहित्यिक और धर्मभाव-तुष्टि के अतिरिक्त मनन और शोध का आधार बनेगा तथा इसका उन अनेक दृष्टियों से अध्ययन किया जाएगा जिनका किंचित् सकेत-उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

ऐसी महत्वपूर्ण और सुन्दर कृति के प्रकाशन के लिए डॉ० कासलीवाल तथा श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के मंत्री एवं प्रबन्ध कारिणी के समस्त सदस्य हिन्दी संसार की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं।

डा० हीरालाल माहेश्वरी



आभार

१८वीं शताब्दी के महाकवि दौलतरामजी कासलीवाल के जीवन एवं साहित्य पर आधारित पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। महाकवि ने हिन्दी साहित्य की जो महान् सेवा की थी उसी पर इसमें प्रकाश डाला गया है। "दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व" पुस्तक प्रकाशन के लिये मैं श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी की प्रवन्धकारिणी कमेटी के सभी सदस्यों एवं विशेषतः उसके अध्यक्ष श्री मोहनलाल जी सा० काला एवं मंत्री श्री सोहनलाल जी सा० सोगाणी का आभारी हूँ। जैन साहित्य के संरक्षण एवं प्रकाशन की ओर आप दोनों की ही काफी रुचि है जो सर्वथा स्वागत योग्य है।

पुस्तक के प्रस्तुतीकरण में पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का जो पूर्ण सहयोग मिला है इसके लिये मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ। कवि के जीवन्धर चरित को खोज निकालने का श्रेय भी आपको है। मैं मेरे अन्य सहयोगी श्री प्रेमचन्द राँवका एम. ए. रिचर्स स्कालर का भी आभारी हूँ जिन्होंने कवि के ग्रन्थों की प्रेस कापी करने में पूर्ण सहयोग दिया है। जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री भंवरलाल जी वज का भी आभारी हूँ जिनके शास्त्र भण्डार के गुटके में हमें कवि का जन्मलगन प्राप्त हुआ है। इसी तरह पाण्डे लूणकरणजी के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी वागायत वालों का भी आभारी हूँ जिनके शास्त्र भण्डार की विवेक विलास की एक मात्र पांडुलिपि का पुस्तक में उपयोग किया गया है। इसी तरह उदयपुर के दि० जैन अग्रवाल मंदिर के व्यवस्थापक डा० मोहनलाल जी जैन का भी मैं आभारी हूँ जिनके मंदिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत जीवन्धर स्वामि चरित की एक मात्र पाण्डुलिपि का हमने उपयोग किया है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि कवि की मूल पाण्डुलिपि है। श्री वा० राजमलजी गोधा व्यवस्थापक मंदिर जी ठोलियान् का भी मैं आभारी हूँ जिनकी अध्यात्म वारहखड़ी की प्रति का इसमें उपयोग किया गया है। मैं पं० भंवरलालजी पोल्याका जैनदर्शनाचार्य का भी उनके सुझावों के लिए आभारी हूँ।

मैं आदरणीय डा० हीरालाल जी माहेश्वरी का भी पूर्ण आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक पर महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखने की महती कृपा की। डा० माहेश्वरीजी राजस्थानी भाषा के अधिकारी विद्वान् हैं और जैन विद्वानों द्वारा लिखी हुई हिन्दी एवं राजस्थानी कृतियों को साहित्य के इतिहास में उचित स्थान मिले इस ओर वे प्रयत्नशील हैं।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों का आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक पर अपनी महत्वपूर्ण सम्मति भेज कर इसके महत्व पर प्रकाश डाला है।

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल

प्रस्तावना

हिन्दी के विकास में राजस्थानी जनता एवं यहां के कवियों का विशेष योगदान रहा है। १०वीं शताब्दि के पहले से ही अपभ्रंश और फिर राजस्थानी भाषा के माध्यम से हिन्दी की जितनी सेवा यहां के निवासियों एवं विद्वानों ने की थी; वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित रहेगी। अपभ्रंश भाषा के बहुचर्चित कवि धनपाल राजस्थानी विद्वान थे। जिनकी "भविसयत्त कहा" कथा साहित्य की बेजोड़ कृति है। इसी तरह 'धम्मपरिक्खा' के रचयिता हरिषेण' राजस्थानी महाकवि थे। जिन्होंने मेवाड़ देश को जन संकुल लिखा है। लघु कथाओं को धार्मिक पुट देकर जनप्रिय बनाने में इन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी तरह आचार्य हरिभद्रसूरि चित्तौड़ के थे; जिन्होंने प्राकृत एवं अपभ्रंश में कितनी ही कृतियों को प्रस्तुत करके हिन्दी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया था। हिन्दी की जननी अपभ्रंश राजस्थान की अत्यधिक लोकप्रिय भाषा रही थी और यही कारण है कि इस भाषा की अधिकांश पाण्डुलिपियां राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में आज भी सुरक्षित हैं। अबतक अपभ्रंश की छोटी बडी ५०० कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं। जिनमें अधिकांश राजस्थान के शास्त्र-भण्डारों में संग्रहीत है। जब जनता संस्कृत एवं प्राकृत से ऊब चुकी की; तब उसने अपभ्रंश का सहारा लिया और उसी का आगे चलकर हिन्दी के रूप में विकास हुआ। संवत् १३५४ में रचित 'जिणदत्त चरित' इसका स्पष्ट उदाहरण है। यह काव्य अपभ्रंश एवं हिन्दी के बीच की कड़ी का काव्य है। अपभ्रंश ने धीरे-धीरे हिन्दी का स्थान किस प्रकार लिया, वह अपभ्रंश के उत्तरकालीन काव्यों से जाना जा सकता हैं। इसी तरह सधारु कवि रचित प्रद्युम्न चरित (सं० १४११) का नाम भी लिया जा सकता है। इन काव्यों मे हिन्दी के ठेठ (तद्भव) शब्दों का प्रयोग भाषा विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

हिन्दी का आदिकालिक इतिहास राजस्थान के कवियों का इतिहास है। वह यहां की जनता की भाषा का इतिहास है। रासो काल के नाम से जो काल निर्देश किया जाता है; वह सब राजस्थानी कवियों की ही रचनाओं के कारण है। रासो साहित्य यहां के आदिकालिक कवियों का प्रधान साहित्य है। यद्यपि जनप्रिय कवियों ने काव्य की अन्य शैलियों में भी खूब लिखा है; लेकिन

उसमें भी रासो साहित्य की ही प्रधानता है। शालिभद्र सूरि का "भरतेश्वर बाहुबलि रास" संभवतः इस काव्य विधा की प्रथम रचना है। इसके पश्चात् "स्थूलिभद्र रास" (संवत् १२०६),"चन्दनबाला रास" (१२५७ सन्) "रेवन्त गिरि रास", 'नेमिनाथ रास' जैसे पचासों रास संज्ञक काव्य लिखे गये; जिन्होंने जनता में पहुँच कर हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने में अपना पूरा योग दिया। प्रो० रामचन्द्र शुक्ल एवं डाँ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के आदिकाल का स्वरूप जिस रूप में स्वीकार किया है, उसे संवारने में जैन कवियों ने विशेष रुचि ली थी। एक ओर तो इन कवियों ने अपनी सशक्त लेखनी से देश के वीरों के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित की तथा दूसरी ओर राजस्थानी कवियों के प्रति वीर रसात्मक काव्य लिखने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट की। लेकिन जैन कवि एक ही धारा से चिपके नहीं रहे। उन्होंने ऐसे काल में भी आध्यात्मिक, भक्ति परक. एवं नीति परक काव्य लिखकर अपनी जनप्रिय दृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत किया। आदिकालिक कृतियों में मुनि रामसिंह का "दोहा पाहुड़" एक महत्वपूर्ण कृति है; जिसमें अध्यात्म, भक्ति एवं नीति के साथ ही तत्कालीन समाज की परम्पराओं पर भी आक्षेप किये गये हैं। डॉ० हीरालाल जैन के अनुसार यह सन् १००० की कृति है; जिसमें २२२ दोहे हैं। रामसिंह राजस्थानी कवि थे और अध्यात्म प्रचार एवं समाज सुधार में उनकी गहरी अभिरुचि थी। योगीन्दु कवि का 'योगसार' एवं 'परमात्म-प्रकाश' अध्यात्म साहित्य की अनुपम कृतियां हैं।

आदिकाल के पश्चात् मध्यकाल में राजस्थानी विद्वानों की हिन्दी सेवा का क्रम अधिक जोर से चला। इस काल के विद्वानों ने दो नाम दिये हैं पहला भक्तिकाल और दूसरा रीतिकाल। इस काल में राजस्थान में मीरां, दादूदयाल, ब्रह्म जिनदास, भट्टारक रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, ज्ञानभूषण, दौलतराम जैसे कवि हुए; जिन्होंने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में सर्वाधिक योग दिया। इन कवियों ने हिन्दी को जन भाषा नाम देकर तथा उसमें सैकड़ों कृतियां लिखकर उसे झोंपड़ियों तक पहुंचाने में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। हिन्दी में काव्य, चरित, रास, फागु, वेलि, चौपई, दोहा आदि के रूप में सैकड़ों हजारों कृतियों को लिखकर उसे लोकप्रिय बनाया। एक ओर मीरां जैसी सन्त कवयित्री कृष्ण की भक्ति में तल्लीन होकर भक्ति रस से ओत-प्रोत एवं गेय सुन्दर पदों की रचना करने लगी तो दूसरी ओर जैन कवियों द्वारा अध्यात्म, भक्ति एवं नीति परक रचनाएं लिखकर साहित्य की त्रिवेणी को पल्लवित किया। राधाकृष्ण के समान नेमि-राजुल के पदों का निर्माण हुआ,

श्रौर उनमें श्रृंगार एवं विरह की कहानी कही जाने लगी । फागु, रास एवं वेलि परक रचनाओं में खुलकर श्रृंगार रस का प्रयोग हुआ । भक्ति एवं रीतिकाल में राजस्थान के जैन कवियों ने एक विशाल साहित्य की सर्जना की की; लेकिन अभी उसके शतांश का भी मूल्यांकन नहीं हो सका है। अभी तो केवल वनारसीदास, भूधरदास जैसे कवियों का नामोल्लेख मात्र हुआ है और शेष सारा साहित्य समालोचकों, विद्वानों एवं गवेषकों की दृष्टि से अछूता पड़ा हुआ है।

मध्यकाल में हिन्दी पूर्णतः जन भाषा बन चुकी थी और संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भी सामान्य जन की समझ के वाहर हो चुकी थी। जैनाचार्य एवं विद्वान् जनता की मनोभावना को पहिचान चुके थे । इसलिए उन्होंने १६ वीं शताब्दी से ही संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की हिन्दी वचनिकाएं लिखना प्रारम्भ कर दिया; जिससे उनकी रचनाएं घर-घर पहुंचने लगीं । उनकी न केवल धार्मिक दृष्टि से; अपितु साहित्यिक दृष्टि से भी परख होने लगी । आगरा, कामां, उदयपुर एवं जयपुर में ऐसी ही सैलियां, जिन्हें आजकल के शब्दों में गोष्ठियों का नाम दिया जा सकता है, चलती थी । हिन्दी भाषा में वचनिकाएं लिखने वाले कवि जनप्रिय कवि वन गये और उनकी कृतियों का प्रचार-प्रसार घर-घर तक पहुंच गया ।

ऐसे ही जनप्रिय कवियों में महाकवि दौलतराम का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। कविवर दौलतराम का जन्म उस समय हुआ था; जब कबीर दास, मीरां, सूरदास, तुलसीदास एवं वनारसीदास जैसे कवि लोकप्रिय हो चुके थे और इसके साथ ही हिन्दी भाषा की नींव भी सुदृढ़ होती जा रही थी। मीरां एवं सूरदास के पद, रामायण की चौपाइयां तथा बनारसीदास के नाटक समयसार के छन्द मन्दिरों में, घरों में एवं राजपथों पर चलते-चलते गाये जाने लगे थे और सामान्य जनता भी उनके प्रचार-प्रसार के लिए कृत संकल्प हो चुकी थी । प्राकृत एवं संस्कृत ग्रंथों की भाषा वचनिकाएं लिखी जाने लगी थी और सामान्य पाठक उन्हें चाव से पढ़ने लगा था । जैन कवियों का प्रमुख केन्द्र उत्तर प्रदेश से हटकर राजस्थान बन चुका था। ऐसे उपयुक्त वातावरण में कविवर दौलतराम का जन्म हुआ ।

महाकवि दौलतराम का जन्म राजस्थान की एक बड़ी रियासत जयपुर के तहसील स्तर के ग्राम बसवा में हुआ । बसवा[1] राजस्थान के प्राचीन नगरों

१ बसवा जयपुर से १०३ किलोमीटर एवं देहली से २०५ किलोमीटर दूरी पर स्थित है ।

में गिना जाता है। जो देहली से अहमदावाद जाने वाली पश्चिमी रेल लाइन पर एक स्टेशन है। कवि ने अपनी कृतियों में वसवा का नामोल्लेख किया है किन्तु न उसे ग्राम लिखा और न नगर। वैसे राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में वसवा में लिपिवद्ध किये हुए कितने ही ग्रंथ मिलते हैं इनमें "त्रिलोक चौवीसी पूजा" की प्रतिलिपि सं० १७०४ में वसवा में ही लिखी हुई उपलब्ध होती है। संवत् १७३३ में त्रिलोकसार की पाण्डुलिपि भी अपने आप में उल्लेखनीय है। स्वयं कवि ने "वसवै वास हमारी जानि" कहकर अपने प्रथम निवास स्थान का 'पुण्यास्रव कथाकोश' की अन्तिम पुष्पिकाओं में वर्णन किया है इनके घर के सामने ही जिन मन्दिर था। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में वसवा को मध्यप्रदेश का नगर माना है, जो सही नहीं हैं।

दौलतराम का जन्म संवत् १७४९ की आषाढ़ वुदी १४ को हुआ[1]। इनका जन्म नाम वेगराज था। इनके पिता का नाम आनन्दराम एवं पितामह का नाम घासीराम था[2]। ये खण्डेलवाल जाति एवं कासलीवाल गोत्र के दि० जैन श्रावक थे[3]। कवि ने अपनी माता के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। इनका वाल्यकाल कैसे वीता, कहाँ तक अध्ययन किया और ये किसके पास पढ़े इन सव के वारे में कवि मौन हैं किन्तु इनके पिता के उच्च पद पर कार्य करने के कारण इनकी भी शिक्षा अच्छी हुई होगी। और ऐसा लगता है कि इन्हें संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी इन तीनों ही भाषाओं की उत्तम शिक्षा मिली थी। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी इन्हें कराया गया होगा। इनकी विद्वता एवं गहन अध्ययन के कारण ही वे आगरा की 'अध्यातम सैली' के लोकप्रिय सदस्य वन गये थे।

परिवार :—कवि के परिवार का विवरण निम्न प्रकार दिया जा सकता है।

---

१. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थभाग—पृष्ठ संख्या २८३

२. दौलतराम आनन्दराम का घासीराम का दिवाण श्री महाराजकंवार माधोसिंह का। राजस्थान राज्य अभिलेखागार रजिस्टर कौमवार नं० २१ पृष्ठ संख्या ७४८

३. जात वानियां श्रावक सोय, खण्डेलवाल जानहु सव कोय।
अलि कहिए कासलीवाल आनन्दराम सुत वचन रसाल ।। ९२ ।।
पुण्यास्रव कथाकोश

घासीराम
|
आनन्दराम
|
निर्भयराम | दौलतराम | वख्तावरलाल
|
लालचन्द
अजीतदास, शंभुनाथ, जादूराम, शीतलदास. जोधराज, गुलावदास

कवि के पिता आनन्दराम भी जयपुर महाराजा की सेवा में थे और जोधपुर के महाराजा अभैसिंह के पास जयपुर महाराजा की ओर से देहली में रहते थे।

इनका निधन संवत् १७९२ की आषाढ़ सुदी १४ को हुआ।[४] जब कवि की आयु ४३ वर्ष की थी। कवि के पिता की मृत्यु के पश्चात इनके वड़े पुत्र एवं कवि के वड़े भाई निर्भयराम को जयपुर महाराजा की ओर से मातमी का सिरोपाव देहली भेजा गया था। ऐसा राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहीत रिकार्ड में उल्लेख मिलता है। निर्भयराम भी अपने पिता के समान देहली में महाराजा की ओर से अभैसिंह के पास ही रहते थे। कवि के छोटे भाई वख्तावरलाल के वारे में विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

कवि के ६ पुत्र थे। चार पुत्रों का उल्लेख तो स्वयं कवि ने अध्यात्म वारहखड़ी के इकारान्त वर्णन में किया है जो निम्न प्रकार है :—

ई में श्री जी की भक्ति प्रार्थना आइ कवि का कवीला को नाव आयो। आनन्द पिता दौलति इत्यादि पुत्र अजितदास इत्यादि चारि दौलति का पुत्र इति इकारावर स्तुति सम्पूर्ण"।

ऐसा लगता है कि उक्त चार पुत्र अध्यात्म वारहखड़ी की समाप्ति तक (संवत् १७९८ तक हो गये थे। शेष दो पुत्र जोधराज एवं गुलावदास वाद में हुए होंगे। जोधराज अपने पिता के समान ही साहित्यिक व्यक्ति थे। इन्होंने संवत् १८८४ में कामा में सुखविलास नामक विशाल संग्रह ग्रन्थ की रचना की थी। इस कृति में इन्होंने अपने आपका निम्न प्रकार परिचय दिया है :—

४. देखिये दस्तूर कोमवार राजस्थान अभिलेखागार वीकानेरS.No.1252

दौलत सुत कामा बसै, जोध कासलीवाल ।
निज सुख कारन यह कियो, सुखविलास गुणमाल ।।

कवि के छठे पुत्र गुलाबदास कायमिलिनागार के निकासे मे दौलतराम का पुत्र एवं आनन्दराम का पौत्र के रूप में उल्लेख आया है । उन्हें संवत् १८२० व संवत् १८२४ में जयपुर महाराजा द्वारा सम्मानित किये जाने का उल्लेख भी मिलता है । इनके एक पुत्र सहजराम भी महाराजा जयपुर की सेवा में थे और संवत् १८२८ में इन्हें भी गावों का पूरा लगान जमा कराने के कारण सिरोपाव देकर सम्मानित किया गया था ।

दौलतराम का प्रथम पुत्र अजीतदास था जो अपने पिता एवं पितामह के समान जयपुर महाराजाओं का अत्यधिक कृपापात्र था । तथा जिसे उनकी कार्यकुशलता के कारण समय समय पर सम्मानित किया गया था । अजीतदास का सर्वप्रथम उल्लेख संवत् १८०१ का मिलता है जब उन्हें बहाम परगना की वसूली का कार्य कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने के कारण सिरोपाव दिया गया।

संवत् १८०४ में उन्हें राज्य सेवा में सिरोपाव से सम्मानित करके उदयपुर भेज दिया गया गया । इस समय स्वयं कवि दौलतराम भी वहीं थे । ऐसा मालूम पड़ता है कि इसके एक दो वर्ष बाद ही दौलतराम जयपुर आगये और उनके स्थान पर अजीतदास कार्य करने लगे । संवत् १८०८ में अपने ही गांव बसवा की वसूली का कार्य इन्हें दिया गया और इसके उपलक्ष में इन्हें फिर सिरोपाव दिया गया । इसके पश्चात् पुनः संवत् १८१२ में बहाम परगना एवं संवत् १८१८ में कारगोड़ परगने की वसूली का कार्य करने के कारण इन्हें सम्मानित किया गया । संवत् १८२१ में कविवर दौलतराम की पौत्री एवं अजीतदास की पुत्री का विवाह हुआ जिसमें महाराजा जयपुर की ओर से ३००) की सहायता दी गई ? संवत् १८२४ में दौलतराम के आग्रह से इन्हें मरहठा सरदार रघुनाथराव के पास भेजा गया तब इन्हें हाथी वगैरह पारितोषिक में दिया गया । इस प्रकार अजीतदास, जोधराज एवं गुलाबदास के अतिरिक्त शेष तीन पुत्रों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती !

युवा होने पर महाकवि दौलतराम को एक बार कार्यवश आगरा जाना पड़ा ! बसवा से आगरा १०० मील से कुछ अधिक दूर है । आगरा उस समय

उत्तर भारत का प्रमुख नगर था। मुगल शासकों की राजधानी होने के कारण वह व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। लेकिन इन सबकें अतिरिक्त वह सांस्कृतिक नगर भी था। और अध्यात्मिक सैली का केन्द्र भी। महाकवि बनारसीदास का स्वर्गवास हुए ७० वर्ष से भी अधिक हो गये थे लेकिन उनके द्वारा स्थापित अध्यात्म शैली पूर्ववत चल रही थी! इस सैली में कविवर भूधरदास का व्यक्तित्व उभर रहा था। दौलतराम जब आगरा पहुंचे तो वे इस सैली के सहज ही में नियमित सदस्य बन गये और जब तक आगरा रहे, तब तक वे आध्यात्मिक सैली में बराबर जाते रहे। अपनी प्रथम कृति "पुण्यास्रव कथाकोश" में उन्होंने आध्यात्म सैली एवं उनके सदस्यों का विस्तृत वर्णन दिया है। कुछ समय पश्चात् वे इस सैली के प्रमुख सदस्य बन गये। उनकी विद्वता एवं काव्य प्रतिभा के सभी प्रशंसक हो गये। वे स्वयं शास्त्र पढने लगे और श्रोताओं को उन्होनें अपनी व्याख्यान शैली से मुग्ध कर लिया। जब उन्होंनें महापुराण का स्वाध्याय समाप्त किया तो श्रोताओं ने उन्हें स्वतन्त्र काव्य लिखने की प्रेरणा दी और सर्व प्रथम उन्होंने आगरा रहते हुए ही संवत् १७७७ में 'पुण्यास्रव कथाकोश' की रचना समाप्त की!

कवि आगरा में कितने वर्षों तक रहे-इसका उन्होंने कही भी उल्लेख नहीं किया। लेकिन ऐसा लगता है कि जयपुर स्थापना के पूर्व ही वे बसवा लौट आये और यहां कुछ समय अपने परिवार के साथ रहने के पश्चात वे जयपुर आगये। यह समय कोई सं० १७८५-८६ के लगभग का होगा।

जयपुर नगर का विकास तेजी से हो रहा था। बाहर से आने वाले विद्वानों, साहित्यकार [illegible] वियो एवं अन्य विद्या में पारंगत विद्वानों को ससम्मान जयपुर में बसाया जा रहा था। ऐसे ही समय में इन्हें भी जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिंह ने अपनी सेवा में बुला लिया और सर्वप्रथम संवत् १७८७ आषाढ़ बुदी ८ के शुभ दिन इन्हें जोधपुर के महाराजा अभैसिंह की सेवा में मथुरा भेजा गया। मथुरा जाने के पूर्व इनका सम्मान करने हेतु ४१।) रुपये का सिरोपाव दिया गया[1]। कवि की सूझ बूझ, प्रतिभा एवं कार्य कुशलता के कारण इन्हे संवत् १७९३ की पोषबुदी दशमी के दिन

---

१. संवत् १७८७ मिती अषाढ वदी ८ मुकाम मथुरा जो मुसारन अलह ने अभैसिंह कने भेज्यो तीने अजरुप महरवानगी सिरोपाव कीमती साबिक ४१।) थान ३.राजस्थान राज्य अभिागार रजिस्टर कोमवार पृष्ठ संख्या 748।

महाराजा कुमार माधोसिंह की सेवा में उनके दीवान के रूप में उदयपुर भेज दिया गया और सम्मान सूचक सिरोपाव दिया। उदयपुर जाने के पश्चात कवि को अपनी कार्य कुशलता दिखाने का अच्छा अवसर मिल गया। इनकीसेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा जयपुर ने संवत १७६४ एवं १८०० में उदयपुर में ही सिरोपाव भेजकर इनकी सेवाओं का मूल्यांकन किया। संवत् १८०३ में जब कवि उदयपुर दरबार में जयपुर महाराजा की ओर से वकील थे तो दरबार के खर्च के लिये इन्हें १५०) भेजे गये। त्रेपन क्रियाकोश में इन्होंनें अपने आपको "आनन्द सुत जयसुत कौ मंत्री जय को अनुचर" लिखकर एवं जीवंधर स्वामी चरित में "दौलतराम उकील पुत्र आनन्द को होई" लिखकर अपना परिचय दिया है!

आगरा के समान उदयपुर में भी ये तत्कालीन समाज समाज में सम्मानित व्यक्ति माने जाने लगे थे। नगर की धानमंडी के दि० जैन अग्रवाल मन्दिर में ये प्रतिदिन जाते थे। इन्होंने आगरा के समान उदयपुर में भी एक आध्यात्मिक सैली स्थापित की और स्वयं ही शास्त्र प्रवचन करने लगे। यहां आने के कुछ ही वर्षों के पश्चात् इन्होंने 'त्रेपन क्रियाकोश' की रचना की। यह ग्रंथ कवि की स्वतन्त्र कृति है, जिसमें श्रावकों के आचार-धर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'त्रेपन क्रियाकोश' के पश्चात् वे 'अध्यात्म बारहखड़ी' की रचना में लग गये। यह कवि की सबसे बड़ी पद्यात्मक कृति है। भक्ति एवं अध्यात्म की इस अनूठी कृति को लिखने में कितना समय लगा होगा। इन्होंने संवत् १७६८ में इसे विशाल कृति को समाप्त करके अपनी साहित्यक प्रतिभा के चार चांद लगा दिये। इस कृति के निर्माण ने कवि की यशोगाथा और भी फैल गयी और अब उनकी चर्चा चारों ओर होने लगी। बारहखड़ी संज्ञक रचनाओं में इसका महत्वपूर्ण स्थान है और कवि के विशाल ज्ञान का परिचयाक है। उदयपुर उनके लिये वरदान सिद्ध हुआ और साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने यहां रहते हुए महान् सेवायें की। सं० १८०५ में उन्होंने "जीवधर चरित" नामक प्रबन्ध काव्य को समाप्त किया, जिसके निर्माण का आग्रह वहीं के कुछ श्रवकों ने किया था। इसके पश्चात ये और भी साहित्यिक सेवा में लग गये। "जीवन्धर चरित" हिन्दी का प्रबन्ध काव्य है: जिसमें कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। कवि का उदयपुर में बहुत सम्मान था। शासक एवं शासित दोनों ही वर्गों में ये लोकप्रिय थे। वक्तृत्व शक्ति के धनी थे तथा तथा लेखन शक्ति इन्हें जन्म से ही प्राप्त थी। इसीलिये उदयपुर प्रवास में ये वहां सर्वप्रिय बन गये। स्वयं उदयपुर महाराणा की इन पर विशेष कृपा

थी। तत्कालीन महाराणा जगतसिंह की विशेष कृपा का इन्होंने निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

रहे रांण के पास, रांण अति किरपा करई ।
जानै नीकौ तांहि, भेद भाव जु नहिं धरई ॥

इसके पश्चात् कवि कितने वर्षों तक उदयपुर और रहे, इसकी उनकी रचना के आधार पर कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती; लेकिन संवत् १८०७ तक वे जयपुर आगये होंगे—ऐसा जान पड़ता है। क्योंकि इसी वर्ष महाराजा सवाई माधोसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे थे और इन्हीं महाराजा के कवि मन्त्री रह चुके थे।

जयपुर आने के पश्चात् वे पुनः जयपुर महाराजा की सेवा में रहने लगे। राज्य सेवा के अतिरिक्त उन्होंने अपना शेष जीवन साहित्य सेवा में समर्पित कर दिया। इसी समय यहां पं० टोडरमल का व्यक्तित्व उभर रहा था। वे महान् क्रान्तिकारी समाज-सुधारक थे, साथ ही में सिद्धान्त ग्रन्थों के महान् ज्ञाता थे। उनकी वाणी में जादू था तथा उन्होंने अपने पांडित्य से सारे जयपुर को प्रभावित कर लिया था। कविवर दौलतराम का सर्व प्रथम परिचय जब उनसे हुआ तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे गंगा–यमुना का संगम हो गया हो। दौलतराम शासन में थे। महाराजा के अधिक निकट थे। इसलिए उन्होंने अपने आपको सक्रिय समाज सेवा से दूर रखकर साहित्य निर्माण की ओर अधिक लगाया। अब तक उन्होंने "पुण्यास्रव कथाकोश" को छोड़कर शेष रचनाएं प्रमुखतः पद्य में ही निर्मित की थीं। लेकिन टोडरमल के प्रभाव के कारण वे भी गद्य की ओर झुके और संवत् १८१६ से लेकर १८२९ तक ८ महान् एवं विशालकाय ग्रन्थों की रचना कर डाली। वास्तव में इतने थोड़े से समय में इतना विशाल साहित्य का निर्माण कर उन्होंने तत्कालीन समाज के बड़े–बड़े पंडितों को आश्चर्य चकित कर दिया।

इनमें श्रीपाल चरित्र एवं विवेक-विलास को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थ हिन्दी गद्य में लिखे गये। इनमें पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवंश पुराण जैसे ग्रन्थ भी शामिल हैं। वास्तव में इन रचनाओं के माध्यम से उन्होंने जनता के स्वाध्याय का क्रम ही बदल दिया और फिर तो सारे देश में उन्हीं के ग्रन्थों का स्वाध्याय होने लगा।

दौलतराम एवं टोडरमल का साथ अधिक समय नहीं रह सका। टोडरमल का स्वर्गवास सं० १८२६ के पूर्व ही हो गया, इसलिए उनकी अपूर्ण

कृति को भी इन्हें ही पूर्ण करना पड़ा। कवि टोडरमल की विद्वत्ता से अत्यधिक प्रभावित थे। इसलिए जब 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' को पूरा करने का प्रश्न आया, तो रतनचन्द दीवान ने अत्यधिक विनय के साथ दौलतराम से प्रार्थना की—

तासु रतन दीवान ने कही प्रीत वर एह ।
करिये टीका पूरण उर पा धरम सनेह ॥
तव टीका पूरण करी भाषा रूप निधान ।

"पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषा" का रचना काल सं० १८२७ है।[1] इसी वर्ष या इसके कुछ समय पहिले इन्होंने "विवेक विलास' जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थ को समाप्त किया और फिर "हरिवंश पुराण" जैसी विशाल गद्य कृति को संवत् १८२९ में समाप्त किया।[2] यह कवि की अन्तिम कृति थी।

इसी वर्ष भादवा सुदी २ को उनका स्वर्गवास हो गया। राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहीत रिकार्ड के अनुसार फागुन सुदी ११ को कवि के बड़े पुत्र अजीतदास की मातमी होने पर राज्य की ओर से सिरोपाव प्रदान किया गया।[3]

दौलतराम नाम वाले अन्य विद्वान—

दौलतराम के नाम से अब तक जितने प्रसिद्ध विद्वान हुए उनमें से कुछ प्रसिद्ध विद्वान् निम्न प्रकार हैं—

१. दिलाराम अथवा दौलतराम

ये बूंदी के रहने वाले थे और इन्होंने संवत् १७६८ में दिलाराम

---

१ अट्ठारहसै ऊपरै संवत सत्ताईस
मास मार्गशिर ऋतु शिविर दोयज रजनीश ॥

२ अट्ठारह सौ संवता, ता पर धर गुणतीस ।
वार शुक्र पून्यो तिथि, चेत मास रति ईस ॥२६॥

३ संवत् १८८९ मिती भादवा सुदि २ वाके मिती फागुण सुदी ११ नें बावति मुसारन अलह का वाप की मातमी को सिरोपाव वखस्यो कीमती साविक थान ३।

विलास एवं आत्म-द्वादशी कृतियां लिखी थीं। ये पाटनी गोत्र के श्रावक थे तथा पिता का नाम चतुर्भुज था।

२. दौलतराम :

ये असनी (फतेहर) के निवासी थे। और इनके पिता का नाम शिवनाथ था। इन्होंने लगभग १८९७ में अलंकार संग्रह एवं कविप्रिया पर टीका लिखी थी। ये जैनेतर विद्वान् थे।

३. दौलतराम :

ये मारवाड़ नरेश महाराजा मानसिंह के आश्रित थे। इनका समय संवत् १८६३ के लगभग माना गया है। इनकी एक रचना "जालंधर नाथ जी रो गुण" उपलब्ध होती है।

४. दौलतराम :

ये मैनपुरी के रहने वाले थे। जाति से कायस्थ थे। उनकी एक लघु कृति "ज्योनार" नाम से मिलती है।

५. दौलतराम :

ये हाथरस के रहने वाले थे। इनका जन्म संवत् १८५५–५६ में हुआ। इनके पिता का नाम टोडरमल एवं जाति पल्लीवाल जैन थी। कपड़े के व्यापार के साथ कविता बनाने की भी इनकी प्रारम्भ से ही रुचि थी। इनके आध्यात्मिक एवं भक्ति परक पद अत्यधिक उच्चकोटि के मिलते हैं, जो १०० से भी अधिक संख्या में हैं। इनकी 'छहढाला' के लघु होने पर भी जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय है।

तत्कालीन साहित्यिक वातावरण

कविवर दौलतराम का समय सं० १७४९ से १८२९ तक रहा है। उस समय राजस्थान का साहित्यिक वातावरण कैसा था—इस सम्बन्ध में यहां कुछ विचार करना है। यह तो निर्विवाद रूप से सही है कि उस समय तक हिन्दी भाषा की प्रतिष्ठा हो चुकी थी और उसके चार स्तम्भ कबीरदास, सूरदास, मीरां, तुलसीदास जैसे महाकवि हो चुके थे तथा ही रल्ह, सधारु, ब्रह्म जिनदास, रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास, राजमल्ल जैसे जैन कवियों ने भी अपनी हिन्दी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी को पूर्ण रूप से अपना लिया था। उधर आमेर में हिन्दी का अच्छा वातावरण था और यहां कितने

ही विद्वानों ने इसके प्रचार प्रसार की ओर विशेष योग दिया था। इनमें कविवर विहारी की "सतसई" का शृंगार रस की महत्वपूर्ण कृति के रूप में समादर होने लगा था। आमेर में ही अजयराज पाटनी हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। जिनकी छोटी-वड़ी लगभग २० रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं। इनमें आदिपुराण भाषा (१७९७), नेमिनाथ चरित (१७९२), यशोवर चौपई (१७९२) जैसे महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। अजयराज कवि के समकालीन विद्वान् थे। तथा उन्होंने आमेर के सम्बन्ध में अच्छा वर्णन लिखा है। पं० नेमिचन्द भी आमेर के ही कवि थे; जिनकी एकमात्र कृति 'नेमिनाथ रास' हिन्दी का अच्छा प्रवन्ध काव्य है। कवि ने इसे सं० १७६९ में ही समाप्त किया था।

सतरासै गुणहत्तरे सुदि आसोज दसे रवि जाणंतौ।
रास रच्यो श्री नेमिको, वुद्धि सारु में कियो वखाणतौ ॥

आमेर के समान सांगानेर में भी कवि के पूर्व हिन्दी के कितने ही विद्वान हो चुके थे और उन्होंने भी साहित्य की खूव सेवा की थी। इनमें ब्रह्म रायमल्ल, जोधराज गोदीका, किशनसिंह के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं। ब्रह्म रायमल्ल सन्त कवि थे और उनकी कृतियों में 'हनुमत रास', 'श्रीपाल रास', 'सुदर्शनरास', 'भविष्यदत्त कथा' के नाम उल्लेखनीय है। जोधराज गोदीका की 'सम्यकत्व कौमुदी' कथा उल्लेखनीय कृति है; जिसका रचना काल संवत् १७२४ है।

समकालीन हिन्दी विद्वान्

महाकवि दौलतराम का समय सवत् १७४९ से १८२९ तक का है। ८० वर्ष का यह समय भारत के इतिहास का एक धुंधला चित्र उपस्थित करता है। उस काल में राजनैतिक अस्थिरता तो थी ही, सामाजिक दृष्टि से भी समाज में अन्तर्विरोध था। रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों में वह फंसता जा रहा था। १४ से १८वीं शताव्दी तक अत्यधिक समर्थ भट्टारक संस्था का ह्रास प्रारम्भ हो गया था, तथा समाज में उनके विरुद्ध विद्रोह होने लगा था। अध्यात्म-शैलियों ने इस संस्था के ह्रास में विशेष योग दिया। समाज में स्पष्ट रूप से दो दल वन चुके थे। भट्टारकों के समर्थक वीस पंथ आम्नाय वाले कहलाने लगे। जवकि उनके विरोधी एवं समाज सुधारक तेरह पंथ अम्नाय वाले कहलाने लगे थे। इसी प्रकार विद्वानों में भी दो विचार-धारायें आचुकी थी। आगरा, आमेर, उदयपुर, जयपुर एवं सांगानेर में विद्वानों का विशेष जोर था। एवं वहां उनका व्यापक प्रभाव भी था। इन विद्वानों ने सवत् १७५० से

१६०० तक जितना जवरदस्त साहित्य-लेखन का कार्य किया, उसने देश में साहित्य के प्रति नवीन क्रान्ति पैदा की और इससे समाज में नव चेतना जागृत हुई। नये-नये ग्रन्थों की मांग होने लगी और उसकी पूर्ति भी हमारे इन्हीं विद्वानों ने की। यहां हम ऐसे ही कुछ प्रमुख विद्वानों का परिचय उपस्थित कर रहे हैं—

भूधरदास :

दौलतराम एवं भूधरदास की भेंट सर्व प्रथम आगरे में हुई थी। दौलतराम के अनुसार भूधरदास आगरे की अध्यात्म शैली के प्रमुख विद्वान् थे। वे स्याहगंज में रहते थे। ये अधिकांश समय जिनेन्द्र पूजा एवं भक्ति में लवलीन रहते थे। भूधरदास का जन्म कब और कहां हुआ ? उनकी शिक्षा-दीक्षा कहां हुई तथा वे जीवन भर क्या करते रहे, इसके सम्वन्ध में कवि की रचनाएं मौन हैं। कवि को संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों का अच्छा ज्ञान था। पुराण साहित्य का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था—जिसका स्पष्ट प्रभाव उनकी रचनाओं में मिलता है। कवि खण्डेलवाल जैन थे तथा एक विद्वान् के अनुसार उनका भी गोत्र कासलीवाल था। अतः दौलतराम जब आगरा पहुंचे तो दोनों कवियों में घनिष्ट सम्वन्ध हो गया।

'भूधरदास' का साहित्यिक जीवन संभवतः अधिक लम्बा नहीं रहा। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम १५—२० वर्ष ही साहित्य सेवा एवं लेखन में लगाये। उनकी प्रथम कृति जैन शतक है; जिसे उन्होंने संवत् १७८१ पौष कृष्णा १३ रविवार के दिन समाप्त की थी। इसकी रचना महाराजा सवाई जयसिंह के सूबा हाकिम गुलावचन्द की प्रेरणा से हुई थी। गुलाबचन्द शाह हरीसिंह के वंशज थे; जो धार्मिक प्रकृति वाले व्यक्ति थे तथा आगरा आने पर उसने कवि से निवेदन किया था—

> आगरे में बाल वुद्धि भूधर खण्डेलवाल,
> बालक के ख्याल सों कवित्त रच जाने हैं।
> ऐसे ही करत भये जैसिंघ सवाई सूवा,
> हाकिम गुलावचन्द आये तिहि ठाने है।
> हरीसिंह शाह के सवंस धर्मरागी नर,
> तिनके कहे सौं जोरि दीनौ एक ठाने है।

फिरि फिरि मेरे मेरे आलस का अंस भयो,
उनकी सहाय यह मेरे मान माने है।
सतरहसै इक्यासिया, पोह पांख तमलीन,
तिथि तेरस रविवार को. शतक समापत कीन ॥४१॥

जैन शतक स्तुति परक, नीति परक एवं जैनधर्म महिमापरक कृति है। उनकी दूसरी कृति पार्श्वपुराण है जो हिन्दी की एक वेजोड़ कृति है। यह एक महाकाव्य है; जिसमें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन चरित को निवद्ध किया गया है। भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से यह कृति भाषा साहित्य की सर्वोत्तम कृतियों में से है। इसकी रचना सं० १७८६ में हुई थी। पार्श्वपुराण जैन-साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यों में से है; जिसकी पाण्डुलिपियां आज भी राजस्थान के ही नहीं किन्तु समस्त देश के शास्त्र भण्डारों में विपुल संख्या में संग्रहीत हैं। इस पुराण के अतिरिक्त कवि ने हिन्दी पद भी लिखे हैं, जिनकी संख्या ७४ है जो अध्यात्म एवं भक्ति परक हैं।

भूधरदास यद्यपि आगरे के थे, लेकिन उनका जयपुर के विद्वानों से विशेष सम्वन्ध था। कवि कभी जयपुर आये थे या नही—इसके सम्वन्ध में तो कोई निश्चित तथ्य नहीं मिलते लेकिन यह अवश्य है कि इनका जयपुर के विद्वानों एवं समाज के नेताओं तथा उच्च अधिकारियों से अच्छा परिचय था। आगरा के मन्दिरों में स्थित जैन भण्डारों की विशेष खोज नहीं होने के कारण अभी इनके जन्म एवं मृत्यु के वारे में निश्चित तिथि नहीं मिलती। लेकिन कवि संवत् १८०० के पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये हों—ऐसा अनुमानित किया जाता है।

किशनसिंह :

ये रामपुरा के निवासी थे। रामपुरा उणियारा-टोंक के समीप है तथा जो आजकल अलीगढ़ के नाम से जाना जाता है! किशनसिंह के पिता का नाम सुखदेव पाटनी था; जिनके द्वारा अलीगढ़ (रामपुरा) में एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया गया था तथा जिसका लेख इसी मन्दिर में उत्कीर्ण है। मन्दिर की नींव संवत् १७२१ में लगी थी। किशनसिंह दो भाई थे। आनन्द सिंह इनके लघु भ्राता थे। ये भी खण्डेलवाल एवं पाटनी गोत्र के थे। इनके पिता माथुरदास वसंत के प्रधान थे। उनकी सभी ओर प्रसिद्धि थी। लेकिन किशनसिंह अपने गांव में नहीं रहे और सांगानेर आकर वस गये। वे संभवतः

कुछ समय चौथ का बरवाड़ा तथा आगरा भी रहे थे। सांगानेर आने के पश्चात् वे साहित्य निर्माण में लग गये. उन्होंने १० से भी अधिक रचनाएं की हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१.	णमोकार रास	संवत् १७६०
२.	चौबीस दण्डक	,, १७६४
३.	पुण्यास्रव कथाकोश	,, १७७३
४.	भद्रबाहु चरित्र	,, १७८३
५.	त्रेपनक्रिया कोश	,, १७८४
६.	लब्धि विधान कथा	,, १७८२
७.	निर्वाण काण्ड भाषा	,, १७८३
८.	चतुर्विंशति स्तुति	—
९.	चेतन गीत	—
१०.	चेतन लौरी	—
११.	पद संग्रह	—

नेमिचन्द :

आमेर के जिन हिन्दी विद्वानों एवं कवियों ने साहित्य निर्माण में गहरी अभिरुचि ली थी; उनमें कविवर नेमीचन्द का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। नेमिचन्द आमेर की भट्टारक गादी के भट्टारक जगत्कीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। वे खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र के श्रावक थे तथा अपनी आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त शेष समय को काव्य रचना में लगाया करते थे। इनके समय में 'आमेर ही' ढूंढाहड प्रदेश की राजधानी थी और उनका यश अपनी सर्वोच्च अवस्था में पहुंच चुका था। कवि ने अपनी कृतियों में आमेर नगर का जो सुन्दर वर्णन किया है, उससे नगर के वैभव, सम्पन्नता एवं विशालता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।[1]

नेमिचन्द दो भाई थे झगडु इनके छोटे भाई का नाम था। इनके कितने ही शिष्य थे; जिनमें डूंगरसी एवं रूपचन्द के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। कवि की अब तक तीन कृतियों की उपलब्धि हो चुकी है, जिनके नाम नेमीश्वर रास, नेमीश्वर गीत एवं प्रीत्यंकर चौपई है।

'नेमीश्वर रास' इनकी प्रमुख कृति है। यह हिन्दी का एक पद्य-गद्य मिश्रित काव्य है। काव्य की कथावस्तु गद्य एवं पद्य दोनों में ही वर्णित है।

---

१ प्रशस्ति संग्रहः पृ २७९

हिन्दी-भाषा का यह संभवतः प्रथम काव्य है। जो इतना प्राचीन है; जिसमें गद्य एवं पद्य दोनों ही को अपनाया गया है। रास में ३६ अधिकार हैं। जिनमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन का वर्णन किया गया है। साथ ही में महाभारत की कथा का भी समावेश किया गया है। रास का रचना काल संवत् १७६९ आसोज सुदी १३ रविवार है। पूरा रास १३०८ छन्दों में समाप्त होता है, जिनका विभाजन निम्न प्रकार है—

दोहा	सोरठा	सवैया	कडख	ढाल	कुल योग
२६०	२५	२	११	१०१०	१३०८

इसके अतिरिक्त गद्य में जो वर्णन मिलता है, वह उक्त संख्या से अतिरिक्त है। कृति का दूसरा नाम हरिवंश पुराण भी दिया हुआ है।

"प्रीत्यंकर चौपई" कवि की दूसरी बड़ी रचना है, जो दोहा और चौपई-छन्दों में निबद्ध है, जिनकी संख्या ३१९ है। इसका रचना काल सं० १७७१ वैशाख सुदी ११ है। चौपाई का आरम्भ प्राचीन परम्परा के अनुसार हुआ है; जिसमें चौबीस तीर्थंकरों के स्तवन के पश्चात् पंच परमेष्ठियों की भक्ति एवं आचार्य कुन्दकुन्द का स्मरण किया गया है। चौपई की भाषा राजस्थानी है—

जीवां वैर भाव मिट गयो, आपस में सब आनन्द भयो।
वनमाली हास्यौ भयो देखि, छह रिति मां फल फूल वसै।
वनमाली फल फूल विराय, श्रेणिक राजा वंदौं जू भाय।

दीपचन्द कासलीवाल :

दीपचन्द कासलीवाल भी आमेर नगर के ही कवि थे। ये भी कवि दौलतराम कासलीवाल के समकालीन कवि थे और इन्हीं के समान गद्य-पद्य दोनों ही शैलियों में रचना करने वाले थे। लेकिन इनका अध्यात्म की ओर अधिक झुकाव था। इसलिये इनकी अधिकांश रचनायें अध्यात्म प्रधान हैं।

कवि का जन्म कब हुआ था। इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती! इनकी एक रचना 'आत्मावलोकन' सं० १७७४ की कृति है। इसलिए इनका जन्म सं० १७३० के आस पास होना चाहिये। इनकी एक अन्य रचना सं० १७८१ की है। यदि इसे कवि की अन्तिम रचना मान ली जावे तो इनका सम्पूर्ण जीवन संवत् १७३० से १७८५ तक का माना जा सकता है। इनके नाम के पूर्व शाह शब्द का प्रयोग होता था;

इससे ज्ञात होता है कि कवि समाज के प्रतिष्ठित पद पर आसीन थे। ये पहले सांगानेर रहते थे और फिर आमेर आकर रहने लगे थे। कवि ने अपनी 'चिद्विलास' नामक कृति में इनका वर्णन निम्न प्रकार से किया है।

"इस ग्रंथ में प्रथम परमात्मा का वर्णन किया, पीछे उपाय परमात्मा पायवे का दिखाया। जे परमात्मा को जनमौ कियो चाहै ते या ग्रंथ को बार-बार विचारो। यह ग्रन्थ दीपचन्द साधर्मी कीया वास है, सांगानेर, आमेर में आय, तब यह ग्रंथ कियो सं० १७७९ का मिति फागुण वदी पंचमी को यह ग्रंथ पूर्ण कियो।

कवि की अब तक निम्न कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं—

१. अनुभव प्रकाश, २. आत्मावलोकन, ३. चिद्विलास
४. परमात्म पुराण, ५. उपदेश रत्नमाला, ६. ज्ञान मार्त्तण्ड

'अनुभव प्रकाश' पूर्ण आध्यात्मिक रचना है। धारावाहिक रूप में यह गद्य काव्य यद्यपि आकार में लघु है, लेकिन जिस रीति से कवि ने गागर में सागर भर दिया है; वह उनकी विद्वत्ता एवं थोड़े में अधिक गम्भीर बात कहने का चातुर्य्य प्रगट करता है।

'आत्मावलोकन' इनकी दूसरी आध्यात्मिक कृति है। जिसमें आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध पर विशद विवेचन किया गया है। गद्य शैली में इस प्रकार का विवेचन अन्य कवियों द्वारा बहुत ही कम हुआ है। ग्रन्थ में विभिन्न अधिकार हैं। इसकी भाषा ढूंढारी है; जिस पर ब्रज भाषा का पूर्ण प्रभाव है। पर साथ ही उर्दू भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार की कवि की अन्य कृतियां भी अध्यात्मपूर्ण हैं। महाकवि दौलतराम से इनका कितना सम्पर्क रहा इसके सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं मिलती।

अजयराज पाटनी :

"अजयराज पाटनी" दौलतराम के समकालीन ज्येष्ठ विद्वान थे। पाटनी जी हिन्दी के श्रेष्ठ कवि थे। अपनी लघु रचनाओं द्वारा पाठकों को नयी-नयी कृतियां भेंट किया करते थे। अब तक उनकी २० रचनाओं का पता लग चुका है, जिनमें पूजा, जयमाल, कथा, गीत, चरित, चौपई, विवाह, वंदना, बत्तीसी आदि सभी नाम की कृतियां मिलती हैं। राजस्थान के विभिन्न

शास्त्र-भण्डारों में अब तक इनकी निम्न रचनाएं उपलब्ध होती हैं—

१. आदिनाथ पूजा, २. कक्का बत्तीसी, ३. चरखा चउपई, ४. चार मित्रों की कथा, ५. चौवीस तीर्थंकर पूजा, ६. चौवीस तीर्थंकर स्तुति, ७. जिन गीत, ८. जिनजी की रसोई, ९. ठामोकार सिद्धि. १०. नन्दीश्वर पूजा, ११. नेमिनाथ चरित्र, १२. पंच मेरु पूजा, १३. पार्श्वनाथजी का सालेहा, १४. बाल्य वर्णन, १५. बीस तीर्थंकरों की जयमाल, १६. यशोधर चौपई, १७. वंदना, १८. शांतिनाथ जयमाल, १९. शिवरमणी विवाह, २०. विनती।

उक्त रचनायें कवि की काव्य विविधता की ओर संकेत करती हैं। जिनमें सामान्य विषय से लेकर रूपक काव्य तक की रचनायें उपलब्ध होती हैं। कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी थे; जो उनकी रचनाओं की विभिन्न प्रशस्तियों से मालूम होती है। ये पाक शास्त्र के भी विशेषज्ञ थे। 'जिनजी की रसोई' कृति में पाक शास्त्र का अच्छा परिचय मिलता है। 'शिव रमणी विवाह' में तीर्थंकर की बरात का रूपक बांधा गया है; जिसमें तीर्थंकर दुल्हा है तथा मुक्ति को वधू के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तीर्थंकर के प्रवचनों को सुनने वाले सभी भव्य जन उनके बराती हैं। पंचम गति अर्थात् मोक्ष ससुराल है; जहां वे मुक्तिवधु के साथ ज्ञान सरोवर में खूब स्नान किया करते हैं। यद्यपि इसमें केवल १७ पद्य ही हैं; लेकिन रूपकों का अच्छा रूप प्रस्तुत किया गया है।

इसी तरह चरखा चौपई भी एक सुन्दर रूपक काव्य है। इसमें कवि ने गागर में सागर भरा है। चरखे को लेकर कवि ने जो रूपक बांधा है, वैसा रूपक अन्यत्र मिलना कठिन है। इस लघु कृति में शील और संयम दो खूंटे हैं। शुभ ध्यान ताड़ियां एवं शुक्ल ध्यान को चरखे का पाया बनाया है। संसार रूपी जेवड़ी का दामरा, दश धर्म को माल, चार दान को हथली तथा आत्मा को ताक् के रूप में प्रस्तुत किया है। क्षमा की आटियां बनाकर ज्ञान गुफा में रखने की ओर संकेत किया गया है। उस शताब्दि में 'चरखा' अत्यधिक लोकप्रिय था तथा सब रोजी-रोटी देने वाला एवं गरीबों का एकमात्र सहारा था।[1]

—भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कृति है।

---

१ ऐसो चरखो गांव कोय, ताके घर अति आनन्द होय।
अजैराज थोड़ा में कही, चतर नारि मानि जो सही॥

'जिनजी की रसोई' पाक शास्त्र पर एक महत्वपूर्ण कृति है। जैन कवियों द्वारा लिखी हुई संभवतः ऐसी प्रथम रचना है जो केवल पाक-शास्त्र से सम्बन्ध रखती है। इसमें कवि ने व्यञ्जनों, पक्वानों एवं फलों के नाम गिनाकर उनके वनाने की विधि का उल्लेख किया है। इसी के साथ तीर्थंकर के विविध प्रकार के आभूषणों का भी वर्णन मिलता है। जैसे रूठे हुये कृष्ण जी को यशोदा मनाती थी; उसी तरह इसमें कवि ने "तुम रूसो मत मेरे चिमना, खेलो वहुविधि घर के अंगना" कहकर उन्हें मनाने की प्रक्रिया अपनायी है।

सोहे सुन्दर कुण्डल कान, गले हार मोतिन को जाणि।
कडा जड़ाऊं हाथा पगा, रंग रंग का पहरे झंगा ।।

हीरा जडित पांच अति सोहे, सुर नर नाग सकल मन मोहे।
माथे मुकुट अनुपम सार, खेले कुंवर महासुख कार ।।

इसी तरह विविध प्रकार के व्यञ्जनों का जब वर्णन किया गया है; तो ऐसा लगता है कि मानों स्वयं कवि उन्हें वनाने बैठ गया हो—

जांवू नींवू खारा मिठा, करौ सवाद रहौ मति रूठा।
सरदा खरवूजा काकडी, नौझी आणी तुरत की घड़ी ।।

केरीपाक मुरवा भला, पांति खांड घी में घिलमिला।
छोलि वादाम धरे अखरोट, चारौली पिस्ता की मोट ।।

वेसण की चौखी पापडी, घिरत मांहि तलतै भी धरी।
मुख विलास मुख मांहि विलाई, तास वोपमा कही न जाई।

प्रस्तुत रचना संवत् १७९५ की है। एक ओर आमेर में अजयराज साहित्य की गंगा वहा रहे थे तो दूसरी ओर दौलतराम उदयपुर में काव्य रचना कर रहे थे। अजयराज अन्त तक आमेर में ही रहे और जयपुर वसने के वाद भी उन्होंने आमेर में रहना ही उचित समझा। इन्होंने आमेर नगर, वहां के राजमहल, प्राकृतिक दृश्य, मन्दिर आदि का अच्छा वर्णन किया है। इन्होंने महाराजा जयसिंह के शासन काल का भी उल्लेख किया है। एक वर्णन देखिये—

अजयराज इह कीयो वखाण, राज सवाई जयसिंह आण।
अंवावती सहरै सुभ थान, जिन मन्दिर जिन देव विमान ।।

नीर निवाण सोहै वनराई, वेलि गुलाव चमेली जाई।
चंपो मरवो अरु सेवति, यो हो नाना विधि किती ॥
वहु मेवा वहुविधि सार, वरणत मोहे लागै वार।
गढ़ मन्दिर कछु कह्यौ न जाइ, मुखिया लोग वसै अधिकाई ॥
तामैं जिन मन्दिर इकसार, तहां विराजै नेमि कुमार।
स्याम मूर्ति शोभा अति घणी, ताकी वोपमा जाइ न वणी ॥

खुशालचन्द काला :

खुशालचन्द राजस्थान के गौरवमान कवि थे। अपने जीवन के बीस से भी अधिक वसन्त ऋतुयें इन्होंने साहित्य निर्माण में व्यतीत की थी। कवि को एक नगर में रहने का अवसर नही मिला। इनके पूर्वज टोडारायसिंह के निवासी थे; लेकिन फिर जिहानांवाद—जयसिंह पुरा में जाकर रहने लगे थे। कवि का जन्म संभवतः यहीं हुआ होगा। इनके पिता का नाम सुन्दरदास एवं माता का नाम सुजानदे था। काला इनका गोत्र था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा जयसिहपुरा में ही हुई थी; लेकिन फिर भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के साथ ये सांगानेर आ गये और कविवर लक्ष्मीदास चांदवाड़ के शिष्य बनने का इन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्हीं के पास इन्होंने शास्त्र ज्ञान प्राप्त हुआ, जिसका उल्लेख कवि ने अपनी रचनाओं में बड़ी कृतज्ञता से किया है—

जिन सु भये तहां नाम लिखमीदास,
चतुर विवेकी श्रुत ज्ञान कूं उपाय कै।
तिहनै पास मै भी कछु अल्प सौ प्रकाश भयो,
फेरि मैं वस्यो जिहानांवाद मध्य आयके ॥

इसके पश्चात् कवि फिर वापिस जयसिह पुरा चले गये। वहां सुखानन्द नाम के उत्तम वणिक थे। उन्हीं के घर में गोकुलचन्द श्रावक रहते थे; जिनको कवि शास्त्र सुनाया करते थे। उन्ही के आग्रह से कवि ने संवत् १७८० में हरिवंश पुराण की रचना की थी—

सरह मध्य इक वणिक वर, साह सुखानन्द जानि।
ताके गेह विषै रहै, गोकुलचंद सु जांनि ॥१०॥

तिन ढिग मैं जाऊं सदा, पढुं शास्त्र सुभाय।
तिनकौ वर उपदेश लै, मैं भाषा बनवाय ।।११।।

कवि ने अपनी रचनाओं में—महाराज जयसिंह, उनके प्रसिद्ध नगर सांगानेर एवं उसमें होने वाले धार्मिक उत्सवों का अच्छा वर्णन किया है। उस समय महाराजा विसनसिंह के सुत महाराजा जयसिंह द्वितीय का आमेर में शासन था।

देश ढुंढाहर जाणौं सार, तामैं धरम तणु अधिकार।
विसनसिंह सुत जैसिंह राय, राज करै सबकूं सुखदाय ।।

देश तनी महिमा अति बनी, जिन-गेहा करि अति ही बनी।
जिन मन्दिर भवि पूजा करै, केइक व्रत ले केइक धरै ।।

जिन मन्दिर करवाये नवा, सुरग विमान तनी कर धवा।
रथ जात्रादि होत बहु जहां, पुन्य उपावन भवियन तहां ।।

खुशालचन्द काला के अब तक जिन ग्रन्थों की उपलब्धि हो चुकी है—वे निम्न प्रकार हैं—

१. हरिवंश पुराण, २. यशोधर चरित, ३. पद्मपुराण, ४. व्रत कथाकोश, ५. जम्बूस्वामी चरित, ६. धन्यकुमार चरित, ७. सद्-भाषितावली, ८. उत्तर पुराण, ९. चौबीस महाराज पूजा, १०. शान्ति नाथ पुराण, ११. वर्द्धमान पुराण।

—ये सभी कृतियां हिन्दी भाषा की सुन्दर कृतियां हैं, जिनमें काव्य के सभी लक्षण उपलब्ध होते हैं। हरिवंश पुराण ३९ संधियों का महाकाव्य है, जिसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ एवं 'महाभारत की कथा का विस्तृत वर्णन है। पुराण में दोहा, चौपाई, अरिल्ल, सवैय्या, सोरठा आदि छन्दों का उपयोग हुआ है। इसका रचनाकाल संवत् १७८० वैशाख सुदी तीज है। इसी तरह उत्तर पुराण का रचना काल सं० १७९९ मंगसिर सुदी दशमी का है। यह भी संधियों में विभक्त है तथा इसकी वर्णन शैली आचार्य गुणभद्र के उत्तर पुराण के अनुसार ही मिलती है। इसकी भाषा में राजस्थानी एवं ब्रज का सम्मिश्रण है। वैसे यह पुराण दोहा चौपाई छन्द प्रधान है; किन्तु अडिल्ल, छप्पय जैसे छन्दों का प्रयोग भी हुआ है।

'व्रत कथाकोश' में कवि ने २३ व्रत कथाओं का संग्रह किया है। जिनकी रचना सं० १७८२ से १७८७ तक की गयी थी। कुछ कथाएं तो छोटे-२

काव्यों के बराबर हैं, जिनकी छन्द सं० ३०० से भी अधिक हो गई है। कथाओं में धार्मिक पुट है तथा उनमें नैतिकता के वर्णन की प्रमुखता है। मध्य युग में जन-साधारण में कथाओं के प्रति जो आकर्षण पैदा हुआ था उसके परिणाम स्वरूप कवि ने ऐसी रचनाओं को छन्दोबद्ध किया था।

खुशालचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से जन-साधारण में जो जागृति उत्पन्न की थी, उसने सारे राजस्थान को ही नहीं; किन्तु उत्तर भारत की जैन समाज में भावात्मक एकता स्थापित करने में अत्यधिक योग दिया था। खुशालचन्द समन्वयवादी कवि थे। इसलिये हिन्दी में रचना भी उसी दृष्टि से किया करते थे।

कविवर दौलतराम अथवा महापंडित टोडरमल्ल से कवि का साक्षात्कार कभी हुआ अथवा नहीं—इसके बारे में तीनों ही विद्वानों ने अपनी रचनाओं में कुछ उल्लेख नहीं किया। लेकिन खुशालचन्द भी महाराज जयसिंह के कृपा-पात्र थे, और दौलतराम उनके राजदूत थे, इसलिए दोनों में अवश्य ही मित्रता रही होगी। तीनों ही कवि समाज के अलग २ वर्ग का नेतृत्व करते थे; इसलिए यद्यपि वे परस्पर में अधिक सम्पर्क में रहे भी नहीं हों, तो भी एक दूसरे के मध्य साहित्यिक परिचय तो रहा ही होगा।

टोडरमल :

महापंडित टोडरमल कविवर दौलतराम के समकालीन विद्वान् ही नहीं थे, किन्तु वे उनके घनिष्ट मित्र भी थे। महाकवि द्वारा पुराण ग्रंथों की भाषा टीका टोडरमल की विशेष प्रेरणा के कारण ही सफल हो सकी थी। जिस मनोयोग से टोडरमल ने गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की हिन्दी में भाषा टीका की थी, उससे भी अधिक मनोयोग से कवि ने पद्मपुराण, आदिपुराण एवं हरिवंश पुराण की भाषा की थी। टोडरमल के ग्रंथ अत्यधिक गम्भीर एवं गूढ़ शैली में लिखे गये हैं, तथा साधारण पाठक के लिए सहज गम्य नहीं है; जबकि दौलतराम ने अपने सभी ग्रंथ साधरण पाठकों के लिए निबद्ध किये। इसलिए जितना जबरदस्त प्रचार दौलतराम के ग्रन्थों का हो सका, उतना टोडरमलजी के ग्रन्थों का नहीं हो सका।

टोडरमल जी की आयु एवं जन्म संवत् दोनों के बारे में विद्वानों की धारणाएं बदल रही हैं। पहिले उनकी आयु २६–२७ वर्ष की ही मानी जाती थी; लेकिन राजस्थान के अजमेर के भण्डार में "सामुद्रिक सुरुप लक्षण"[१]

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची–पंचम भाग–पृष्ठ संख्या १२०५

की संवत् १७९३ की एक प्रति मिली है, उसमें पं० टोडरमल जी के पठनार्थ प्रतिलिपि की गई—ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यदि उस समय कवि की आयु १५ वर्ष की भी मान ली जावे तो भी उनकी आयु ४७ वर्ष की होनी चाहिये।

टोडरमल ने सर्वप्रथम रहस्यपूर्ण चिट्ठी लिखी। इस अकेली चिट्ठी से ही पता चलता है कि उनकी ख्याति राजस्थान को पार करके पंजाब तक पहुंच गई थी। उन्होंने गोम्मटसार, त्रिलोकसार, क्षपणासार एवं लब्धिसार जैसे सैद्धान्तिक ग्रंथों की भाषा टीका करके जैन समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। यह प्रथम अवसर था जबकि हिन्दी में किसी विद्वान् ने प्राकृत भाषा के ऐसे महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय ग्रन्थों पर हिन्दी टीका लिखी हो। इसलिए इन ग्रन्थों के निर्माण के पश्चात् उनकी कीर्ति पताका चारों ओर लहराने लगी। विद्वत्ता के साथ ही उनकी वक्तृत्व शक्ति भी विलक्षण थी एवं समाज को रूढ़ियों एवं अन्ध विश्वासों से निकाल कर सम्यक् मार्ग पर लाने की उनकी जबरदस्त भावना थी। इसलिये अपने जीवन में उन्हें अनेक संघर्षों से जूझना पड़ा और इन्हीं संघर्षों से अन्त में जूझते २ पंडित जी ने अपना जीवन भी समर्पण कर दिया। वे शहीद हुए थे तथा तत्कालीन समाज की साम्प्रदायिकता की अग्नि में उन्होंने अपने आपको होम दिया। उनका 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' यद्यपि पूर्णतः धार्मिक ग्रंथ हैं; किन्तु वह आकर्षक शैली एवं विद्रोहात्मक पद्धत्ति में लिखा गया है; जिसका एक-एक वाक्य रहस्यपूर्ण एवं धार्मिक अर्थ को लिये है।

टोडरमल के पश्चात् होने वाले सभी परवर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में टोडरमल का सादर उल्लेख किया है तथा उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा की है। स्वयं महाकवि दौलतराम ने "पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय" टीका में टोडरमल जी की विद्वत्ता का निम्न प्रकार उल्लेख किया हैं—

भाषा टीका ता ऊपर कीनी टोडरमल्ल।
मुनिवर कृत बाकी रही तांके मांहि अचल्ल ॥
वे तो परभव कूं गये, जयपुर नगर मझार।
सम साधर्मी तब कियो मन में यह विचार ॥

बखतराम साह :

कविवर बखतराम महाकवि दौलतराम के समय प्रसिद्ध कवि थे। ये इतिहास, सिद्धान्त एवं दर्शन के महान् पण्डित थे। भट्टारकों में इनका पूर्ण

विश्वास था और ये बीस पंथ आम्नाय वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वालों में से प्रमुख थे। इन्होंने 'मिथ्यात्व खण्डन' लिखकर महा पं० टोडरमल जी के विचारों का विरोध किया और भट्टारकों का खुलकर समर्थन किया। जयपुर में लश्कर का दि० जैन मन्दिर इनका साहित्यिक केन्द्र था और यहीं बैठकर इन्होंने साहित्य सर्जन किया था। बुद्धि विलास[1] इनकी महत्वपूर्ण कृति है; जिसका इतिहास से पूर्ण सम्बन्ध है। कवि ने इसमें तत्कालीन समाज, राज व्यवस्था, जयपुर नगर निर्माण आदि का अच्छा वर्णन किया है। यह उनकी सं० १८२७ मंगसिर सुदी १२ की रचना है।

वख्तराम चाकसू के निवासी थे। चाकसू जयपुर से करीब २४ मील दक्षिण पूर्व में बसा हुआ एक प्राचीन नगर है। जिसका जैन कवियों ने काफी अच्छा वर्णन किया है। इनके पिता पेमराज साह थे जो चाकसू में ही रहते थे। कवि चाकसू से जयपुर स्थानान्तरित हो गये थे और यहीं पर विद्वानों के सम्पर्क में रहकर साहित्य सेवा किया करते थे। मिथ्यात्व खण्डन नाटक में कवि ने अपना वर्णन निम्न प्रकार किया है—

ग्रन्थ अनेक रहस्य लखि, जो कछु पायौ थाह।
वख्तराम वरननु कियो, पेमराज सुत साह ।।१४४।।
आदि चाटसू नगर के, वासी तिनि कौ जांनि।
हाल सवाई जैनगर, माँहि वसे हैं आंनि ।।१४५।।
तहाँ लसकरी देहुरें, राजत श्री प्रेभु नेम।
तिनको दरसण करत ही, उपजत है अति प्रेम ।।१४१६।।

कवि की एक लघु रचना "धर्मबुद्धि कथा" एवं कुछ पद भी मिलते हैं। बुद्धि विलास में अपने प्रवल विरोधी महा पं० टोडरमल की मृत्यु पर जो पंक्तियाँ लिखीं, वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं—

यक तेरह पंथिनु में ध्रमी, टोडरमल्ल नाम सांहिमी।
कहे खलनि कै नृप रिसि तांहि, हति कै धरचौ असुचि थल नाहि।

उक्त घटना के अतिरिक्त कवि ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन विद्वानों के सम्बन्ध में मौन ही रहना उचित समझा।

---

१ राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जोधपुर में प्रकाशित। सम्पादक श्री पद्मधर पाठक।

जयचन्द छावड़ा :

महा पंडित टोडरमल एवं दौलतराम के पश्चात् जिन विद्वानों को समाज द्वारा सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ; उनमें जयचन्द छावड़ा प्रमुख विद्वान हैं। इनका भी समूचा जीवन ही साहित्य-देवता को समर्पित था और साहित्य एवं समाज की सेवा ही इनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। महाकवि दौलतराम एवं महा पंडित टोडरमल दोनों का ही इनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा और साहित्यिक क्षेत्र में इन्हीं का उन्होंने अनुसरण किया।

जयचन्द छावड़ा का जन्म जयपुर से ३० मील दक्षिण की ओर जयपुर मालपुरा रोड़ पर स्थित फागी ग्राम में हुआ था। यह समय ऐसा था जब दौलतराम की गौरव गाथा चारों ओर फैल चुकी थी और टोडरमल के साहित्यिक के क्षेत्र में पदार्पण की भूमिका बन रही थी। इनके पिता का नाम मोतीराम था। गोत्र छावड़ा एवं जाति खण्डेलवाल थी। ११ वर्ष की अवस्था में ही ये अपने ग्राम के मन्दिर में जाने लगे और तत्वचर्चा में रूचि लेने लगे। कुछ समय पश्चात् वे जयपुर में आगये और यहां आने के पश्चात् तो उन्हें ऐसा लगने लगा कि मानों उन्हें अपनी अभीष्ट वस्तु मिल गई हो। जब वे जयपुर आये तो उन्हें अपने आपको विद्वानों की गोद में पाया। पं० वंशीधर, टोडरमल, दौलतराम, भाई रायमल्ल, बखतराम आदि सभी शास्त्रज्ञ एवं तत्वोपदेशी थे। फिर क्या था जयचन्द ने भी अपने–आपको इन्हीं विद्वानों के समर्पित कर दिया। सर्व प्रथम इन्होंने तत्वार्थ सूत्र पर संवत् १८५९ में वचनिका लिखी और फिर इसके दो वर्ष पश्चात् सर्वार्थसिद्धि पर विस्तृत वचनिका लिखी जो अर्थ प्रकाशिका के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। फिर तो वे एक के पश्चात् दूसरे ग्रन्थ की भाषा टीका लिखने लगे और अपने १२–१३ वर्ष के साहित्यिक काल में १५ ग्रन्थों पर भाषा टीकायें लिख दी। ऐसा मालूम होता है कि उनका मस्तिष्क सैद्धान्तिक ज्ञान से भर चुका था और अब तो केवल निकलने की देरी थी। अब तक उनके निम्न ग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं—

रचनाकाल

१. तत्वार्थ सूत्र वचनिका, सं० १८५९
२. सर्वार्थसिद्धि वचनिका, चैत्र शुक्ला पंचमी १८६१
३. प्रमेयरत्नमाला वचनिका, आषाढ़ शुक्ला ४ सं० १८६३
४. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा, श्रावण कृष्णा ३ सं० १८६३

५. द्रव्यसंग्रह वचनिका, श्रावण कृष्णा १४ सं० १८६३
६. समयसार वचनिका, कार्तिक कृष्णा १० सं० १८६४
७. देवागम स्तोत्र (आप्त मीमांसा), चैत्र कृष्णा १४ सं० १८६६
८. अष्टपाहुड़ वचनिका, भाद्रपद शुक्ला १२ सं० १८६७
९. ज्ञानार्णव वचनिका, माघ कृष्णा ५ सं० १८६९
१०. भक्तामर स्तोत्र वचनिका, कार्तिक कृष्णा १० सं० १८७०
११. पद संग्रह,
१२. सामायिक पाठ वचनिका,
१३. पत्रपरीक्षा वचनिका
१४. चन्द्रप्रभ चरित द्वि० सर्ग,
१५. धन्यकुमार वचनिका,

उक्त ग्रन्थों की नामावली के आधार पर कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का स्वतः ही आभास मिल जाता है। उन्होंने सैद्धान्तिक, तात्विक, आध्यात्मिक स्तुति परक, दार्शनिक एवं चरित-प्रधान सभी ग्रन्थों की राजस्थानी भाषा में वचनिकाएं लिखीं और उनके पठन-पाठन का सर्वत्र प्रचार किया। इनके ग्रन्थों की भाषा अत्यधिक सरल, सरस एवं सुगम्य है।

तत्कालीन जयपुर दरबार से उनका मधुर सम्बन्ध था। अपनी एक कृति में उन्होंने महाराजा सवाई जगतसिंह के शासन की अच्छी प्रशंसा की है। कवि के अनुसार राज्य में सर्वत्र अमन चैन था तथा सभी धर्मावलम्बियों को अपने २ धर्म पालन की पूरी छूट थी। राजा के कितने ही मंत्री थे और उनमें परस्पर में मैत्री भावना थी। संवत् १८६१ में जयपुर में जो प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था, उसमें कवि का विशेष योग था।

करी प्रतिष्ठा मन्दिर नयौ, चन्द्रप्रभ जिन थापन थयौ।
ताकरि पुण्य बढ़ौ यश भयौ, सर्व जैनिन को मन हरयो ॥

दीवान रायचन्द से भी कवि का विशेष सम्बन्ध था इन्होंने कवि को सभी चिन्ताओं से मुक्त कर दिया और साहित्य निर्माण पर विशेष जोर दिया।

ताके ढिग हम थिरता पाय।
करी वचनिका यह मन लाय ॥

जयचन्द का पुत्र नन्दलाल छाबड़ा भी अपने पिता के समान ही साहित्य प्रेमी था। वह अनेक शास्त्रों का ज्ञाता था तथा अपने पिता को साहित्य रचना में योग दिया करता था। जयचन्द जी ने एक स्थान पर अपने पुत्र की निम्न प्रकार प्रशंसा की—

नन्दलाल मेरा सुत गुनी, बालपनैं तै विद्या गुनी।
पंडित भयौ वडौ परवीन, ताहूनै यह प्रेरणा कीन।।

जयचन्द जी के पश्चात् होने वाले सभी कवियों ने इनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

थानसिंह :

थानसिंह महाकवि दौलतराम के उत्तरकालीन कवि थे। इनके द्वारा रचित "सुबुद्धि प्रकाश" एवं "थान विलास" उल्लेखनीय रचनाएं है। 'सुबुद्धि प्रकाश' सुभाषित रचना है, जिसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। रचना काफी अच्छी है। तथा उसमें १४६ पत्र हैं। इसका रचनाकाल संवत् १८४७ है। इसी तरह 'थान विलास' कवि की रचनाओं की संग्रहात्मक कृति है। कवि बहुत ही स्पष्टवादी एवं निडर थे तथा तथ्यों को रखने में कभी भी नहीं हिचकते थे। जयपुर में महाराजा माधोसिंह के समय में जो साम्प्रदायिक उपद्रव हुये थे, उनका सुबुद्धि प्रकाश की प्रशस्ति में जो वर्णन किया है, वह उनकी निर्भयता का सूचक है—

माधव आगै सिव धरमी मुखियौ भयो।
जैन्यासों करि द्रोह वच में लै लियो।।
देव धर्म गुरु श्रुत कौ विनय विगारियौ।
कीयो नांहि विचारि पाप विस्तारियौ।।६२।।

दोहा

भूप अरथ समझ्यो नहीं, मंत्री के वसी होय।
डंड सहर मैं नाखियौ, दुखी भये सब लोय।।६३।।
विविध भांति धन घटि गयो, पायौ बहुत्त कलेस।
दुखी होय पुर कौ तजो, तव ताको परदेस।।६४।।

कवि खण्डेलवाल जाति में ठोल्या गोत्र के थे। हेमराज इनके दादा थे। हेमराज के बड़े पुत्र मलूकचन्द, द्वितीय मोहनराम, तृतीय लूणकरण तथा

चतुर्थ साहिबराम थे। इन चारों ही पुत्रों के भी अच्छी संख्या में संतान थी। थानसिंह मोहनराम के पुत्र थे। इनका जन्म सांगानेर में हुआ था। जयपुर एवं सांगानेर में जब साम्प्रदायिक उपद्रव हुये तब कवि भरतपुर चले गये थे। लेकिन वहां कुछ समय तक रहने के बाद वे फिर महाराजा माधवसिंह के दरबार में आगये और वहीं पर व्यापार करने लगे। यहां रहते हुये उन्होंने सुबुद्धि प्रकाश की रचना की। परन्तु इनके पिता वापिस जयपुर नहीं आये और करौली में रहकर ही व्यापार आदि करने लगे। थानसिंह अपने समय के प्रगतिशील कवि थे तथा साहित्य सेवा में सदैव संलग्न रहते थे।

राजनैतिक स्थिति

दौलतराम अपने ८० वर्ष के जीवन में बसवा, आगरा, उदयपुर एवं जयपुर रहे। आगरा के अतिरिक्त इनका अधिक सम्पर्क जयपुर के महाराजाओं से रहा लेकिन कवि ने अपनी रचनाओं में जयपुर के महाराजाओं एवं उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नामोल्लेख के अतिरिक्त तत्कालीन राजनैतिक स्थिति अथवा शासन का कोई वर्णन नहीं किया। कवि आगरा भी काफी समय तक रहे लेकिन मुगल शासन के बारे में भी वे मौन ही रहे। इससे पता चलता है कि कवि की राजनीति अथवा तत्कालीन शासन के बारे में लिखने में कोई रुचि नहीं थी। इसके अतिरिक्त जयपुर महाराजा के उच्च पदाधिकारी होने के कारण उन्होंने अपने जीवन को साहित्य रचना तक ही सीमित रखा और अन्य प्रपञ्चों से दूर रहे।

कवि ने जब युवावस्था में पदार्पण किया था उस समय देहली पर मुगल बादशाहों का शासन था जो अपने ह्रास की ओर तीव्र गति से बढ़ रहा था। सम्राट औरंजेब के पश्चात् भारतीय शासन की बागडोर मजबूत हाथों में नहीं रही थी। उसके उत्तराधिकारियों को आपस में लड़ने से ही अवकाश नहीं मिलता था, इसके अतिरिक्त वे अत्यधिक विलासी, आलसी एवं अयोग्य भी थे। ना उनमें अकबर जैसी दूरदर्शिता थी और न औरंगजेब जैसी राजनैतिक चतुरता। फर्रुखसियर एवं मुहम्मदशाह जैसे मुगल सम्राटों का शासन एकदम ढीला तथा निकम्मा था तथा केन्द्रीय शासन नाम मात्र का रह गया था। कवि ने मुगल साम्राज्य का पूरा पतन अपनी आंखों से देखा होगा।

लेकिन कवि के समय में राजस्थान के शासकगण सशक्त बन गये थे। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (सन् १६९९-१७४३) जैसे योग्य एवं दूरदर्शी

शासकों के कारण संवत् १८०० तक राज्य में शान्ति रही और राज्य की सभी तरह से उन्नति होती रही। महाराजा सवाई जयसिंह के पश्चात् जयपुर की गद्दी पर महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह (सन् १७४३–१७५०) सवाई माधोसिंह (सन् १७५०–६८) एवं सवाई पृथ्वीसिंह (सन् १७६८–१७७८) बैठे। इन तीनों ही राजाओं के शासनकाल में चारों ओर अशान्ति रही। तथा इन तीनों ही शासकों को लड़ाइयों से कभी अवकाश नहीं मिला। यहां पर सुरक्षा के नाम जैसी कोई चीज ही नहीं रही। मराठों के अतिरिक्त स्वयं मुगल बादशाह भी इनके विरुद्ध हो गये थे और उन पर सदैव युद्ध की तलवार टंगी रहती थी। महाराजा ईश्वरीसिंह ने केवल सात वर्ष तक शासन किया और अन्त में मराठों के आक्रमण से भयभीत होकर जहर का प्याला पी लिया। इसके पश्चात् सवाई माधोसिंह गद्दी पर बैठे लेकिन सतरह वर्ष के शासन में उसे कितनी ही लड़ाइयां लडनी पड़ी। मरहाठाओं के बार बार के आक्रमणों से शासन व्यवस्था एक दम ढीली पड़ गयी थी और राज्य की सारी आमदनी फौजों पर ही खर्च करनी पड़ती थी। इसलिये उस समय कला एवं साहित्य को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। इनके पश्चात् सवाई पृथ्वीसिंह शासन पर बैठे। लेकिन उस समय वे केवल पांच वर्ष के थे और ग्यारह वर्ष के पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया। इसलिये वे भी शासन को सशक्त बनाने की दिशा में कोई कार्य नहीं कर सके।

महाराजा माधोसिंह एवं पृथ्वीसिंह के शासनकाल में शासन पर मंत्रियों एवं पुरोहितों का अधिक प्रभुत्व रहा। संवत् १८१८ से १८२६ तक सारे राज्य में शैवों एवं जैनों में साम्प्रदायिक झगड़े होते रहे। राज्य में शैवों का प्रभुत्व होने के कारण बहुत से जैन मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया तथा कितने ही मन्दिरों को शैव मन्दिरों में परिवर्तित कर दिया गया। केवल ८–९ वर्ष में ही इस प्रकार के तीन बार उपद्रव हुए जिसमें धन सम्पत्ति की अपार क्षति हुई। इस सम्बन्ध में तत्कालीन कवि बखतराम साह ने अपने बुद्धि विलास (संवत् १८२७) में इन घटनाओं का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

संवत् १८१८ में एक श्याम तिवाड़ी हुआ जिसने किसी प्रयोग से महाराजा माधोसिंह को अपने वश में कर लिया। महाराजा ने श्याम तिवाड़ी को सभी धर्म गुरुओं का प्रधान बना दिया और आचमन (संकल्प) करके राज्य का पूरा भार ही उसे सौंप दिया। गलता के बालानन्द आदि जो धर्मगुरु थे वे सभी देखते रहे। इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् ही सारे राज्य में उत्पात होने लगे। महाराजा से मनमाना आदेश लेकर जैनों को रात्रि भोजन

करने पर मजबूर किया जाने लगा तथा उनके मन्दिरों को तोड़ फोड़ दिया गया। राज्य के समस्त जैनों को इतना आतंकित कर दिया गया कि उनका दर्शन, स्वाध्याय एवं पूजापाठ भी बन्द हो गया। किसी मन्दिर को आधा और किसी को पूरा ही नष्ट कर दिया गया। या तो केवल आमेर का सांवलां जी का मन्दिर सुरक्षित रहा अथवा वे ही मन्दिर बच सके जिनकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध था। किसी में जबरन शिव मूर्ति स्थापित कर दी गयी। इस प्रकार चारों ओर श्याम तिवारी के अत्याचार होने लगे। किसी से कोई उपाय नहीं बन सका। और न किसी साधु महात्मा का जादू मंत्र ही काम कर सका। लेकिन जब श्याम तिवारी के अत्याचारों की वास्तविकता का महाराजा माधोसिंह को मालूम पड़ा तो उन्होंने उसे यथोचित दण्ड दिया और मध्याह्न में जयपुर नगर से निकलवा दिया। वह केवल धोवती एवं दुपट्टा साथ ले जा सका। उस समय वह केवल अकेला था और उसके पीछे से लड़के हुरिया देते जाते थे। महाराजा ने उसका गुरुपद छीन लिया और जैसा उसने कार्य किया था वैसा ही उसको दण्ड दिया गया।[1]

सोरठा

अंबावति मैं ऐक, स्यांम प्रभू कै देहुरै।
रही धर्म के टेक, बच्यौ सु जान्यौ चमतकृत ।।१२६४।।

चौपई

कोएं आधो कोऊ सारो, बच्यौ जहां छत्री रखवारो।
काहूं मै सिवमूरति धरि दी, ऐसी मची स्याम की गरदी ।।१२६५।।

---

१ संवत अट्ठारहसै गये, ऊपरि जकैं अठारह भये।
तब इक भयो तिवाड़ी स्यांम, डिंभी अति पाखंड को धांम ।।१२८६।।
स्वछ अधिक द्विज सबतैं घाटि, दौरत ही साहन की हाटि।
करि प्रयोग राजा वसि कियौ, माधवेस नृप गुर पद दियौ ।।१२६०।।
गलता बालानंद दै आदि, रहे झांकते बैठ बादि।
सबकौ ताहि सिरोमनि कियौ, फुनि वैसनू राज पद दियौ ।।१२६१।।
लियौ आचमन पाव पखार, सौप्यौं ताहि राज सब भार।
दिन कितेक बीते हैं जबैं, महा उपद्रव कीनौं तबै ।।१२६१।।
हुक्म भूप कौ लेकै चाहि, निस जिमाय देवल दिय ढाहि।
अमल राज कौ जैंनी जहां, नांव न ले जिनमत को तहां ।।१२६२।।

इस घटना के १½ वर्ष तक राज्य में पूर्ण शान्ति रही। जैन धर्मावलम्बियों ने पुनः अपने मन्दिरों का निर्माण करा लिया। रथयात्रा होने लगी तथा मन्दिरों में ठाट बाट से पूजा एवं उत्सव होने लगे। संवत् १८२१ में जयपुर नगर में इन्द्रध्वज पूजन का विशाल आयोजन किया गया जिसमें देश के विभिन्न स्थानों से हजारों स्त्री पुरुषों ने भाग लिया। इस आयोजन में जैनों ने अपने वैभव का खूब प्रदर्शन किया। जयपुर के महाराजा ने भी एक आदेश जारी किया था कि "पूजा के अर्थि जो वस्तु चाहिये सो ही दरबार सूं ले जावो"। लेकिन इस विशाल आयोजन का एक वर्ग विशेष पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने कुछ समय पश्चात् ही एक शिव मूर्ति तोड़ने का जैनों पर आरोप लगाया। महाराजा ने भी अपनी व्यस्तता के कारण घटना की विशेष जांच नहीं की। अनेक श्रावकों को कैद कर लिया गया। अन्त में तत्कालिन महापंडित टोडरमल के ऊपर सारा दोषारोपण लगाया गया तथा महाराजा के आदेश से उन्हें मृत्यु दण्ड दिया गया और मारने के पश्चात् उनकी लाश को गन्दगी के ढेर में डाल दिया गया। टोडरमल उस समय क्रान्तिकारी समाज सुधारक एवं प्रबल पंडित थे। समाज के ऊपर उनका पूर्ण प्रभाव था। महाराजा के आतंक के कारण सारा जैन समाज कोई विरोध नहीं कर सका।

× × × × ×

फुनि मत बरस ड्यौढ मै थप्यो, मिलि सवही फिरि अरहंत जप्यो।
लिये देहुरा फेरि चिनाय, दै अकोड प्रतिमां पधराय ।।१३०१।।

नाच कूदन फिरि वहु लगे, धर्म मांझि फिरि अधिके पगे।
पूजत फुनि हाथी सुखपाल, प्रभु चढाय रथ नचत विसाल ।।१३०२।।

तब व्रांह्मनु मतौ यह कियौ, सिव उठांन कौ टौंना दियौ।
तामै सवै श्रावकी कैद, करिके डंड किये नृप कैद ।।१३०३।।

यक तेरह पंथिनु मैं ध्रमी, हो तौ महा जोग्य सांहिमी।
कहे खलनि कै नृप रिसि ताहि, हति कैं धरचो असुचि थल वाहि।१३०४।

टोडरमल जी के वलिदान के पश्चात् राज्य में फिर शान्ति ही स्थापित हो गयी और फिर पूर्ववत मन्दिरों में पूजा पाठ, रथयात्रा उत्सव विधान होने

लगे। चारों ओर अमन चैन व्याप्त हो गया। लेकिन यह शान्ति अधिक समय तक नहीं रह सकी और संवत् १८२६ में एक वर्ग ने धार्मिक विद्वेषता की फिर आग फैला दी। चारों ओर मन्दिरों को लूटा जाने लगा और मूर्तियों को तोड़ डाला गया। इन लोगों ने किसी की बात नहीं सुनी और कहने लगे कि उन्हें राजा का यही आदेश है। जयपुर, आमेर, सवाईमाधोपुर एवं खण्डार के मन्दिरों को उसी समय लूटा गया। लेकिन महाराजा जयपुर की फिर सारे राज्य में दुहाई फिरी जिससे लूट खसोट होना बन्द हो गया और राज्य में फिर साम्प्रदायिक सद्भावना स्थापित हो गयी।

फुनि भई छब्बीसा के साल, मिले सकल द्विज लघु र विसाल।
सबनि मतौ यक पक्को कियौ, सिव उठांन फुनि दूसन दियो ॥१३०७॥

द्विजन आदि बहु मेल हजार, धिनां हुकम पायें दरबार।
दौरि देहुरा जिन लिय लूटि, मूरति विघन करी बहु फूटि ॥१३०८॥

काहू की मांनी नही कांनि, कही हुकम हमकौं है जांनि।
अैसो म्लेछन हूं नही करी, बहुरि दुहाई नृप की फिरी ॥१३०९॥

दोहा

लूटि फूटि सबह्वै चुकैं, फिरी दुहाई बोस।
कहनावति भई लुटि गए, भाग्यौ बारह कोस ॥१३१०॥

कवि बखतराम के अतिरिक्त तत्कालीन कवि थानसिंह ने भी अपने 'सुबुद्धिप्रकाश' में उस समय की राजनैतिक सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का अच्छा वर्णन किया है। सर्व प्रथम कवि ने महाराजा जयसिंह के शासन का, जयपुर नगर की स्थापना की, एवं वहां व्यापार की बड़ी प्रशंसा की है। कवि ने लिखा है कि महाराजा जयसिंह ने आमेर और सांगानेर के मध्य में जयपुर नगर बसाया तथा सूत बांधकर नगर के बाजार, दरवाजे आदि बनाये अपने लिये सात मंजिल वाला महल बनवाया तथा राज्य के बाहर से बड़े २ सेठ साहूकारों को बुलाकर नगर में बसाया। न्यायसंगत टैक्स लगाये जिससे नगर का व्यापार खूब बढ़ गया और सांगानेर एवं आमेर उजड़ने लगे। राज्य के शासन की बागडोर जैनों के हाथों में थी। राजा शैव धर्मानुयायी था। नगर में शैव एवं जैनों के अनेक शिखर बंध मन्दिर थे जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् ईश्वरीसिंह ने शासन की बागडोर सम्हाली और राज्य में शान्ति रही तथा प्रजा भी आनन्द से रहती रही। ईश्वरीसिंह के पश्चात् महाराजा सवाई

माधोसिंह जयपुर के शासक बने। उनके शासन में शैव धर्मावलम्बी शासन में प्रधान बन गये और जैनों से विरोध करने का महाराजा से आदेश ले लिये। इसके पश्चात् वेद, धर्म, गुरु, एवं शास्त्रों का अपमान किया गया। महाराजा मंत्रियों के रहस्य को समझ नहीं सके और उनके कहने में आकर नगर के निवासियों से डंड वसूल किया गया। इससे नगर के निवासी अत्यधिक दुखी हो गये। बहुत से लोग नगर छोड़कर चले गये। स्वयं कवि को जयपुर छोड़कर भरतपुर जाना पड़ा। सवाई माधोसिंह के पश्चात् सवाई प्रतापसिंह जयपुर के महाराजा बने। वे भी अत्यधिक लोभी थे और सभी धर्मावलम्वियों के मन्दिरों का, ब्राह्मणों का एवं अतिथियों के धन को भी जबरन ले लिया था इससे नगर में लोग और भी दुखी हो गये और उदास होकर नगर छोड़ने लगे।

उक्त दोनों वर्णनों से ज्ञात होता है कि संवत् १८१८ में लेकर संवत् १८२६ तक जयपुर राज्य का धार्मिक वातावरण काफी उत्तेजनापूर्ण रहा। तथा शासन में जो शैव धर्मावलम्बी थे उन्होंने शासन का फायदा उठाकर दूसरे वर्ग को अधिक से अधिक नुकसान पहुंचाने का प्रयास किया। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही और जयपुर निवासी एक दूसरे के प्रति गहरी सद्भावना के साथ रहने लगे। इसके अतिरिक्त जयपुर के तत्कालीन शासकों ने कभी सम्प्रदाय विशेष का पक्ष नहीं लिया और राज्य में जैनों को शासन के उच्चस्थ पद पर नियुक्त किया जाता रहा। राव कृपाराम, रामचन्द्र छावड़ा, बालचन्द छावड़ा, रतनचन्द जैसे व्यक्ति दीवान के पद पर कार्य करते रहे। और धर्म विशेष का शासन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

माधव आगै सिव धरमी मुखियौ भयो।
जैन्यासों करि द्रोह वच मैं लै लियो।
देव धर्म गुरु श्रुत कौ विनय विगरियौ।
कीयौ नांहि विचारि पाप विस्तारियौ ।।

भूप अरथ समझ्यो नहीं मंत्री के वसि होय।
डंड सहर मैं नाखियौ दुखी भये सब लोय।
विविध भांति धन घटि गयौ पायौ बहुत क्लेस।
दुखी होय पुर को तजो तव ताकौ परदेस ।।

सुबुद्धिप्रकाश

जयपुर नगर की स्थापना

महाराजा सवाई जयसिंह केवल योद्धा एवं राजनीतिज्ञ ही नहीं थे किन्तु नगर निर्माता भी थे। सन् १७२५ में उन्होंने 'जयनिवास' नामक महल की नीव रखी और नवम्बर १७२७ में महल के चारों ओर एक नवीन नगर का निर्माण प्रारम्भ करा दिया। पहिले इस नगर का नाम जयनगर रखा गया। बाद में सवाई जयपुर के नाम से प्रसिद्ध हो गया और अब केवल जयपुर के नाम से विख्यात है। इस नगर के निर्माण का सबसे अधिक श्रेय विद्याधर नाम के व्यक्ति को है, जिसे टाड ने जैन लिखा था लेकिन अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार वह बंगाली था। नगर निर्माण के पश्चात् उसका महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा खूब सम्मानित किया गया। उसे रेवन्यू मिनिस्टर बनाया गया। उसके नाम से एक विद्याधर का रास्ता एवं विद्याधर का बाग बनाया गया तथा इसके अतिरिक्त पांच हजार की जागीर भी उसे दी गयी।

जयपुर नगर तीन ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर की ओर आमेर है जो पहिले राज्य की राजधानी था। तथा दक्षिण की ओर सांगानेर है जो जयपुर बसने से पूर्व एक वैभवशाली नगर था। नगर के चारों ओर परकोटा बनाया गया था। उसके नीचे एक गहरी खाई थी जो नदी के समान लगती थी। ऊंचे ऊंचे दरवाजे थे। चौपड़ के समान बाजार थे तथा जिनके बीच बीच में चौक बनाये गये थे। बाजार की सड़क के एक ओर नहर थी जिसे चौपड़ पर बने हुए कुण्डों को पानी मिलता था और जयपुर के नागरिक इनका पानी पीते थे। बाजार एवं गलियों को एकदम सीधा बनाया गया था और फिर उसी के अनुसार महल एवं मकान बनाये गये थे। जयपुर बसने के पश्चात् नगर में बसने के लिये राज्य के बाहर से भी धनाढ्य व्यापारियों को बुलाया गया था, जिससे नगर का व्यापार खूब बढ़ गया था। कविवर बखतराम ने अपने बुद्धि विलास में जयपुर नगर की उत्पत्ति का बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया है। वर्णन का प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है—

> सोहै अंबावति की दक्षिण दिसि सांगानेरि,
> दोऊ बीचि सहर अनोपम बसायो है।
> नांम ताको धर्यौ हैं स्वाई जयपुर,
> मानौं सुरनि हीं मिलि सुरपुर सौं रचायौं है ॥९८॥

चारयौ दिसी रच्यौ उतंग कोट,
ता परि कंगुरनि की वनी जोट।
तिह तलि चौडी खाई बनाय
औडी मनु सरिता चली जाय ॥९९॥

दरवाजे ऊंचे बनें गोख
पौरिया बैठि तिंह करत जौख।
चौपरि के कीन्हे हैं वाजार
विचि वीचि वनाए चौक चार ॥१००॥

ल्याऐ नहैरि वाजार मांहि।
विचि मैं वंवे गहरे रखांहि।
चौकनि मैं कुंड रचे गंभीर।
जग पीवत तिनकौं मिष्ट नीर ॥१०१॥

हाटिन कै विचि रस्ता रखाय।
दीन्हें, ते सूधे चले जाय।
वहु वने हवैली कूप वाग।
सुंदर तिनु लखि मन लगत लाग ॥१०२॥

धनवांन जु व्यौपारी कितेक
वहु देस सुदेसनि तैं आऐ अनेक
ते करत विणज अति निसंक होय
परदेस सुदेसहि जात कोय ॥१०३॥

नगर में ज्योतिष यंत्रालय का निर्माण कराया गया जिससे ग्रहों की चाल का अच्छी तरह से पता लगने लगा और उसी के आधार पर 'जयविनोद' नाम से तिथि पत्र निकलने लगा। देश के कोने-कोने से पंडित आने लगे और साहित्य, तर्क एवं न्याय पर विविध चर्चायें होने लगी। कारीगरों को वसाया गया जिससे नगर का व्यापार वढ़ने लगा। बाजार में समुदायों में दुकानें थी जिसमें ग्राहकों को ठीक भावों पर वस्तुयें मिलती रहती थी। पहाड़ों के नीचे ही तालकटोरा था जिसका दूसरा नाम जयसागर भी था। इसमें

विविध प्रकार के पक्षीगण बैठे रहते थे। महाराजा ने अपने निवास के लिए सात मंजिल वाला चन्द्रमहल बनाया जिसकी शोभा अवर्णनीय है। नगर के तीन ओर पर्वत मालाओं पर अनेक गढ़ बनवाये गये इनमें रघुनाथगढ़, शंकरगढ़, हथरोई, सुदर्शनगढ़ एवं जयगढ़, के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराजा सवाई जयसिंह ने जयपुर नगर में अश्वमेध यज्ञ भी किया था। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए जितने ब्राह्मण पंडित आये थे उनको महाराजा ने विशेष रूप से ब्रह्मपुरी में बसा दिया।

जयपुर नगर की सुन्दरता के बारे में पाश्चात्य कलाविदों ने बहुत प्रशंसा की है। फादर तीफेन्थलर ने जयपुर नगर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "यह नगर जबकि एकदम नवीन नगर है फिर भी देश के पुराने नगरों से भी सुन्दर है क्योंकि प्राचीन नगरों में बाजार एवं गलियां अत्यधिक सकड़े हैं जबकि जयपुर नगर की प्रत्येक गली एवं बाजार समान रूपसे लम्बे चौड़े हैं। मुख्य सड़क जो सांगानेरी गेट से आरम्भ होती है तथा उत्तरी गेट तक जाती है इतनी चौड़ी है कि छह सात गाड़ियां आसानी से एक साथ निकल सकती हैं। नगर में अनेक सुन्दर मन्दिर है जो शिव अथवा विष्णु के हैं।" इसी तरह सन् १८२० में जब किसी ब्रिटिश मिलिटरी अधिकारी ने जयपुर नगर को देखा तब उसने निम्न शब्द कहे थे[1]

"जयपुर नगर के प्रमुख सड़कें इंगलैण्ड की बहुत सी सड़कों से उत्तम है। यह इण्डिया का सर्वोत्तम नगर है।" इसी तरह और भी पाश्चात्य एवं भारतीय कला विशारदों ने जयपुर नगर के निर्माण की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

जयपुर नगर को गुलाबी नगर कहा जाता है। और इसी नाम से यह सारे देश में विख्यात है। गत २०० वर्षों में इसकी सुन्दरता में परिवर्द्धन होता रहा है, तथा सरगासूली, हवामहल, म्यूजियम, एवं रामनिवास बाग से नगर की सुन्दरता में अभिवृद्धि हुई है।

१८वीं शताब्दी के एक हिन्दी विद्वान् भाई रायमल्ल ने संवत् १८२१ में लिखी एक पत्रिका में इसे जैन नगरी के रूप में लिखा हैं। यहां जितनी संख्या में दि० जैन मन्दिर हैं उतने देश के किसी नगर में नहीं है तथा संवत् १७८४ से लेकर संवत् १९५० तक जितने अधिक जैन विद्वान् हुए उतने अन्यत्र किसी

1. History of Jaipur State by Dr, M. L. Sharma.

नगर में नहीं हो सके। नगर में हस्तलिखित शास्त्र भण्डारों की संख्या भी काफी अच्छी है जिनमें २५ हजार से भी अधिक ग्रन्थों का संग्रह मिलता है।[1]

विशाल मन्दिरों का नगर

महाकवि दौलतराम ने जयपुर का निर्माण अपनी आंखों से देखा होगा। तथा उसके निर्माण की योजना को कार्यान्वित करने में सरकार की ओर से अवश्य ही भाग लिया होगा। जयपुर नगर विशाल मन्दिरों का नगर है। यहां जितनी संख्या में शैव, वैष्णव एवं जैन मन्दिर हैं उतनी संख्या में देश में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलते। यहीं नहीं सभी मन्दिर विशाल हैं और कलापूर्ण भी हैं जिनमें वर्तमान समय में भी दर्शनार्थियों की अपार भीड़ लगी रहती है। प्रमुख बाजारों में, चौपड़ के चारों ओर एवं गलियों में एक के बाद दूसरा मन्दिर देखने को मिलेगा, जिसकी सीढ़ियां बाजार की प्रमुख सड़क की पटरी को छूती हुई होती हैं। नगर के परकोटे में इतने अधिक मन्दिरों का निर्माण तत्कालीन जनता की धार्मिक प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत है। चौड़ा रास्ता में स्थित ताड़केश्वरजी का मन्दिर शैव मन्दिरों में सबसे प्रसिद्ध एवं प्राचीनतम मन्दिर है, इसी तरह गोविन्ददेवजी का मन्दिर एवं रामचन्द्रजी का मन्दिर यहां के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय मन्दिरों में से हैं।

वैष्णव एवं शैव मन्दिरों के समान नगर में जैन मन्दिरों की संख्या भी कम नहीं है। जयपुर नगर एवं उसके उपनगरों से स्थित जैन मन्दिरों एवं चैत्यालयों की संख्या पहिले १७५ मानी जाती थी लेकिन वर्तमान में कुछ नये मन्दिर बन गये हैं और कुछ चैत्यालय कम हो गये हैं। नगर के अधिकांश मन्दिर विशाल एवं कलापूर्ण हैं। जिनमें अत्यधिक मनोज्ञ एवं प्राचीन मूर्तियां विराजमान हैं। दि० जैन मन्दिर पाटोदी एवं दि० जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर यहां के प्राचीनतम मन्दिर हैं। कहते हैं इनका निर्माण जयपुर के निर्माण के साथ हुआ था। पंचायती मन्दिरों के अतिरिक्त अधिकांश मन्दिर विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा निर्मित है। विशाल मन्दिरों में जैन मन्दिर बड़ा दीवानजी दि० जैन मन्दिर छोटा दीवानजी, सिरमोरियों का मन्दिर, संघी जी का मन्दिर, खिन्दूकों का मन्दिर, ठोलियों का मन्दिर, महावीर स्वामी का मन्दिर, दारोगाजी का मन्दिर, वधीचन्द जी का मन्दिर, चाकसू का मन्दिर, चौबीस

---

१. देखिये श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीर जी से प्रकाशित राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग १ से ४ तक।

महाराज का मन्दिर, खानियों का राणाजी का मन्दिर आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इनमें कितने ही मन्दिरों में विशाल शास्त्र भण्डार हैं जिनमें प्राकृत, अपभ्रंश संस्कृत एवं हिन्दी की प्राचीनतम पाण्डुलिपियां हैं जिनकी सख्या २५ हजार से कम नहीं है और जो राष्ट्र के अमूल्य संपत्ति है तथा समूचे राजस्थान को जिन पर गर्व है।

सामाजिक स्थिति

महाकवि दौलतराम के समय में राजनैतिक अस्थिरता के समान देश की सामाजिक स्थिति भी डांवाडोल हो थी। मुगल सम्राट् औरंगजेब के अत्याचारों के कारण समस्त हिन्दू समाज त्रस्त, पीड़ित एवं भयभीत था। जैन समाज भी मुगलों के उत्पीड़न से बच नहीं सका था। मध्यप्रदेश में सेकड़ों जैन मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था और संस्कृति एवं साहित्य की रक्षा कैसे हो यह प्रमुख समस्या सबके सामने बनी हुई थी। जैन समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित था। १८वीं शताब्दी तक भट्टारकों का जबरदस्त प्रभाव था। शासन एवं जनता दोनों में ही उनका पूर्ण प्रभाव था। देहली पट्ट के भट्टारकों का जिनमें भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एवं प्रभाचंद्र के नाम उल्लेखनीय हैं, उत्तरी भारत में अपना जबरदस्त प्रभाव स्थापित कर रखा था। इनकी विद्वत्ता एवं त्याग ने जनता पर जादू जैसा कार्य किया था। इनके प्रभाव के कारण अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ एवं बड़ी-बड़ी प्रतिष्ठायें हुई। लेकिन फिर भी देहली के बादशाह सिकन्दर लोदी (१३८९-१४१७ ई०) की कट्टरता एवं असहिष्णुता के कारण देहली से भट्टारक पट्ट चित्तौड़ स्थानान्तरित किया गया और मंडलाचार्य धर्मचन्द्र (सन् १५२४) चित्तौड़ पट्ट पर आसीन हुए। इनके कुछ वर्षों पश्चात् ही भट्टारक रत्नकीर्ति ने नागौर में भट्टारक गादी स्थापित की। मुगलों के चित्तौड़ पर भी बराबर आक्रमण होते रहने के कारण धर्मचन्द्र के शिष्य ललितकीर्ति ने (संवत् १६०३) चित्तौड़ में अपनी गादी स्थानान्तरित की और राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र में अपना जबरदस्त प्रभाव स्थापित किया।

भट्टारक ललितकीर्ति द्वारा भट्टारक गादी स्थानान्तरित किये जाने के पश्चात् राजस्थान के इस क्षेत्र में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागरण पुनः प्रारंभ हुआ। इस समय आमेर के राज्य में प्रायः शान्ति थी और मुगलों के आक्रमण का कोई डर नहीं था। भट्टारक ललितकीर्ति के पश्चात् भट्टारक चन्द्रकीर्ति एवं भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति हुए जिन्होंने अपनी विद्वता तथा त्याग के बल पर सारे राजस्थान में अपना प्रभाव स्थापित किया। संवत् १६९१ में

सांगानेर में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पट्ट पर बैठे। कवि वखतराम साह ने अपने "बुद्धिविलास" में इसका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

नरेंद्रकीरति नाम, पट इक सांगानेरि मैं।
भये महागुन-धाम, सोलहसै इक्यारावै ।। ६६६ ।।

भ० नरेन्द्रकीर्ति का देश के विभिन्न भागों में वड़ा भारी प्रभाव था। राजस्थान, मालवा, मेवाड़, महाराष्ट्र एवं देहली आदि में इनके कितने ही भक्त रहते थे और जब वे जाते तो उनका खूब स्वागत होता था। तत्कालीन कितने ही विद्वान इनके शिष्य एवं प्रशंसक थे। अनेक स्तोत्रों की हिन्दी गद्य में टीका करने वाले अखयराज इन्हीं के शिष्य थे। संवत् १७१७ में इन्होंने अपनी संस्कृत मंजरी की प्रति भेट की थी। इसी तरह टोडारायसिंह के प्रसिद्ध कवि पंडित जगन्नाथ इन्हीं के शिष्य थे। इनके समय में टोडारायसिंह में संस्कृत ग्रन्थों के पठन पाठन का अच्छा प्रचार था। अष्टसहस्री एवं प्रमाणनिर्णय जैसे न्याय ग्रन्थों का लेखन, प्रवचन एवं पाठन होता था।

लेकिन इन्हीं भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के समय में दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध तेरापंथ का प्रभाव बढ़ने लगा जिससे तत्कालीन समाज में व्याप्त शिथिलाचार का विरोध होने लगा। बखतराम साह ने अपने मिथ्यात्वखंडन (सं० १८२१) में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया हैं—

भट्टारक आंवैरि के नरेन्द्रकीरति नाम।
यह कुपंथ तिनकै समैं नयो चल्यो अघ धाम ।।

लेकिन संवत् १८२७ में समाप्त होने वाले बुद्धि विलास में इन्होंने तेरहपंथ का उदय संवत् १६८३ में माना है।

इनही गछ मैं नीकस्यौ, नूतन तेरह पंथ।
सौलह सै तीयासिये सो सब जग जानंत ।। ६२७ ।।

इस प्रकार लगता है बखतराम स्वयं भी इस पंथ के उदय के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। लेकिन कुछ भी हो भ० नरेन्द्रकीर्ति के समय में तेरहपंथ ने काफी जोर पकड़ लिया था। इन्हीं के समय संगानेर में अमरा भौसा हुए जो अपार सम्पत्ति के स्वामी थे। जिन्हें अपनी सम्पत्ति पर काफी गर्व था। एक बार जिनवानी का अविनय करने के कारण इन्हें मन्दिर से निकाल दिया गया

था। इससे क्रोधित होकर ये भट्टारकों के विरोधी बन गये और तेरहपंथ के प्रचार प्रसार में पूर्ण योग देने लगे। इसका पुत्र जोधराज भी इन्हीं के विचारों का था। वह संस्कृत एवं हिन्दी का बड़ा भारी विद्वान था। इन्होंने सम्यक्त्व कौमुदी भाषा (संवत् १७२४) प्रवचनसार भाषा (संवत् १७२६) पद्मनंदिपंच-विंशति (सं० १७२४) ज्ञानसमुद्र एवं प्रीतिकर चरित जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं का निर्माण करके हिन्दी साहित्य की बड़ी भारी सेवा की थी।

तेरहपंथियों के विरोध के बावजूद भट्टारकों के प्रभाव में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। भट्टारक नरेंद्रकीर्ति के पश्चात् भ० सुरेन्द्रकीर्ति (संवत्-१७२२) जगत्कीर्त्ति (संवत् १७३३) भट्टारक गद्दी पर बैठे। संवत् १७४६ में भट्टारक जगत्कीर्त्ति ने चांदखेड़ी में एक विशाल प्रतिष्ठा समारोह का संचालन किया जिससे उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव में और भी वृद्धि हुई। समाज में इन भट्टारकों ने पूजा पाठ, विधान आदि में इतना बाह्याडम्बर ला दिया था, जिसने समाज के प्रबुद्ध वर्ग के चिन्तन पर गहरी चोट की। समाज में अध्यात्म शैली के नाम से जो गोष्ठियां चलती थीं उन्होंने तेरहपंथ के प्रचार में पर्याप्त सहायता दी और आगे चलकर ये ही गोष्ठियाँ तेरहपंथ की गोष्ठियों में परिवर्तित हो गयी। महाकवि दौलतराम जब आगरा गये थे तो वहाँ अध्यात्मसैली पहिले से ही चलती थी और जब उन्होंने उदयपुर में शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया तो उसे भी इसी सैली के नाम से प्रसिद्ध किया।

१६ वीं शताब्दी के आरम्भ में जयपुर में महापंडित टोडरमल का उदय हुआ। टोडरमल जी महान् विद्वान् थे, शास्त्रों के ज्ञाता थे वक्तृत्व कला में अत्यधिक प्रवीण थे और इन सबके अतिरिक्त समाज सुधार में अग्रसर थे। वे भट्टारक परम्परा के पूर्ण विरोधी थे और तेरहपंथ के कट्टर समर्थक थे। इन्होंने इस युग में तेरहपंथ के प्रचार में सबसे अधिक योग दिया। तेरहपंथ के प्रचार में पं० टोडरमल जी के अतिरिक्त भाई रायमल्ल, दीवान रतनचन्द्र, दीवान बालचन्द आदि विशेष सहायक बने। इन्होंने ज्ञान के प्रसार के लिए विशेष प्रयत्न किये और बालक बालिकाओं को धार्मिक ज्ञान प्रदान करने के लिए कुछ विद्वानों को नियुक्त किया। भाई रायमल्ल ने अपनी एक पत्रिका में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"और यहां देश बारा लेखक सदैव सासते जिनवाणी लिखते हैं। वा सोधते हैं। और एक ब्राह्मण महैंनदार चाकर रख्या है सो बीस तीस

लड़के बालकन कूं न्याय व्याकरण गणित शास्त्र पढ़ाते हैं । और सौ-पचास भाई वा बायां चर्चा व्याकरण का अध्ययन करे है ।"

संवत् १८२१ में जयपुर में 'इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव' का आयोजन विशाल रूप में हुआ था । भाई रायमल्ल ने अपनी पत्रिका में इनका जिस सुन्दर ढंग से वर्णन किया है उससे पता चलता है कि इस महोत्सव में देश के विभिन्न भागों से हजारों की संख्या में स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए थे । जयपुर दरबार की ओर से इस आयोजन को सफल बनाने के लिए पूरी सुविधाएं प्रदान की गयी थी । भाई रायमल्ल ने लिखा है कि "ए उछव फेरि ईं पर्याय मैं देखणा दुर्लभ है । ए कार्य दरबार की आज्ञा सूं हुवा है और ए हुकम हुवा है जो थाकै पूजाजी कै अर्थि जो वस्तु चाहिजे सो ही दरवार सूं ले जावो । ....अर दोन्यू दिवान रतनचन्द वा बालचन्द या कार्य विषै अग्रेश्वरी है" ।

लेकिन इतना होने पर भी बीस पंथ आम्नाय वालों का प्रभाव कम नहीं हुआ था । महापंडित टोडरमल जी के समय में भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति एवं भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पट्ट पर विराजमान थे । पं० टोडरमलजी के होते हुए इन दोनों भट्टारकों का संवत् १८१५ एवं संवत् १८२२ में जयपुर में ही पट्टाभिषेक किया गया और जयपुर नगर को इन्होंने अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया । एक ओर संवत् १८२१ में जयपुर नगर में टोडरमल जी के समर्थकों की ओर से विशाल इन्द्रध्वज पूजन का आयोजन हुआ तो दूसरी ओर से संवत् १८२६ में सवाई माधोपुर में विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह हुआ जिसका भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने संचालन किया था । इस विशाल आयोजन में हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गयी और उन्हें राजस्थान के प्रायः प्रत्येक गांव के जैन मन्दिर में स्थापित की गयी । यह प्रतिष्ठा संगही नन्दलाल ने करायी थी और इसमें लाखों रुपया व्यय करके भट्टारकों के प्रभाव को पुनः स्थापित किया गया । महापंडित टोडरमल जी के बलिदान के कुछ समय पश्चात् ही उनके विरोधियों की ओर से ऐसा विशाल आयोजन से ऐसा लगने लगा जैसे मानों कोई विशेष घटना ही नहीं घटी हो । जिस प्रकार महापंडित टोडरमल ने सिद्धान्त ग्रन्थों की भाषानुवाद करके अपनी विचार धारा के प्रचार में वृद्धि की उसी प्रकार बीस पंथ के कट्टर समर्थक एवं भट्टारक परम्परा के प्रशंसक पंडित बखतराम साह ने संवत् १८२१ में अपने "मिथ्यात्व खंडन" ग्रन्थ में तेरहपंथ की कडी आलोचना की तथा संवत् १८२७ में बुद्धि विलास

को लिख कर जैन इतिहास पर विशेष प्रकाश डाला। वखतराम का "मिथ्यात्व खंडन" महापंडित टोडरमल के सुधारवादी विचारों का जवाव था।

समाज में पंचायत प्रथा का जोर था। पंचायत की आज्ञा विना कोई भी सामाजिक एवं धार्मिक कार्य नहीं होते थे। समाज एव जाति से वहिष्कृत करना इनका साधारण कार्य था। जयपुर में ऐसी ही चार पंचायतें थी जिनमें दो पंचायत तेरहपंथ तथा दो वीसपंथ ग्रम्नाय वाले श्रावकों की थी। जयपुर मे पाटोदी का मन्दिर, चाकसू का मन्दिर, वड़ा मन्दिर एवं वधीचन्द जी मन्दिर क्रमशः वीस एवं तेरहपंथ ग्राम्नाय के पंचायती मन्दिर कहलाते हैं।

जयपुर नगर में जैन समाज का ग्रत्यधिक प्रभाव था। शासन में उनका पूरा जोर था ग्रौर ग्रधिकांश दीवान जैन ही हुग्रा करते थे। यदि हम संवत् १८१८ से १८२६ तक के समय को इतिहास में से निकाल दें तो फिर शेष समय में जयपुर के शासन में सदैव जैनों का जोर रहा ग्रौर यही कारण है कि देश में किसी भी नगर में इतने जैन मन्दिर एवं चैत्यालय नहीं हैं जितने जयपुर में मिलते हैं। संवत् १८२१ में लिखी एक पत्रिका में जयपुर नगर का जो वर्णन किया गया है वह इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—

ग्रौर ईं नग्र विषै सात विषन का ग्रभाव हैं। भावार्थ ईं नग्र विषै कलाल कसाई वेश्या न पाइए है ग्रौर जीव हिंसा की भी मनाई है। राजा का नाम माधवसिंह है ताकै राज विषै वर्तमान (इस समय) एते कुविसन दरवार की ग्राज्ञातैं न पाईए हैं। ग्रर जैनी लोग का समूह वसै है। दरवार के मतसद्दी सर्वं जैनी हैं ग्रौर साहूकार लोग सर्व जैनो हैं जद्यपि ग्रौर भी हैं परि गौणता रूप है मुख्यता रूप नांही। छह सात वा ग्राठ वा दस हजार जैनी महाजनां का घर पाईए है। ऐसा जैनी लोगां का समूह ग्रौर नग्रविषै नाहीं ग्रौर इहां के देश विषै सर्वत्र मुख्यपणैं श्रावगी लोग वसै है तातैं एह नग्र व देश वहोत निर्मल पवित्र है। तातैं धर्मात्मा पुरुष वसनें का स्थानक है। ग्रवार तौ ए साक्षात् धर्मपुरी है।"

महापंडित टोडरमल जी के पश्चात् जयपुर नगर में जितने भी पंडित एवं शास्त्रों के ज्ञाता हुए उनमें प्रमुख तेरहपंथ ग्राम्नाय वाले थे तथा टोडरमल के गहरे प्रशंसक थे। इन विद्वानों में पंडित जयचन्द जी छावड़ा, पं० गुमानीराम भावसा एवं पं० सदासुख कासलीवाल के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। लेकिन धीरे-धीरे तेरह ग्रौर वीस पंथों का वैमनस्य समाप्त होने लगा ग्रौर इच्छानुसार पंथों को मानने की स्वतन्त्रता दे दी गयी। यही कारण है

कि संवत् १८६१ में जयपुर नगर में जो विशाल प्रतिष्ठा समारोह हुआ था वह भट्टारक सुखेन्द्रकीर्ति के निर्देशन में सम्पन्न हुआ तथा इस समारोह की प्रतिष्ठा कराने वाले थे। दीवान बालचन्द के सुपुत्र संघही रायचन्द। दीवान बालचन्द टोडरमल जी के प्रशंसकों में से थे एवं तेरहपंथ की ओर उनका विशेष झुकाव था।

महाकवि की अब तक १८ रचनाओं की खोज की जा चुकी है। इन रचनाओं को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१. मौलिक रचनायें
२. अनूदित रचनायें
३. टब्बा टीकायें

मौलिक रचनाओं में हमने उन रचनाओं को लिया है जिन्हें कवि ने पूर्व आचार्यों के ग्रन्थों पर आधारित होने पर भी स्वतन्त्र रूप से निबद्ध किया है तथा जिनमें अपना मौलिक चिन्तन दिया है। इसके अतिरिक्त इस श्रेणी में वे रचनायें भी सम्मिलित हैं जिनमें कवि ने अपने सर्वथा मौलिक विचार लिखे हैं। विवेक विलास एवं अध्यात्म बारहखडी ऐसी ही कृतियों में है। कवि की मौलिक रचनायें निम्न प्रकार हैं—

१. त्रेपनक्रियाकोश
२. जीवंधर चरित
३. अध्यात्मबारहखडी
४. विवेक विलास
५. श्रेणिक चरित
६. श्रीपाल चरित
७. चौवीस दण्डक
८. सिद्ध पूजाष्टक

इसके पश्चात् वे रचनायें रखी गयी हैं जो भाषा वचनिका के रूप में लिखी गयी हैं जिनमें कवि ने पूर्वाचार्यों की रचनाओं का हिन्दी गद्य में वचनिका के रूप में अर्थ किया है और अपनी ओर से विशेष घटाया बढ़ाया नहीं है। लेकिन कवि ने जिस कला के साथ उनकी भाषा टीका लिखी है वे ऐसी लगने लगी है जैसे वे मानों कवि की पूर्णतः मौलिक रचनायें हैं। कवि ने इनको जिस धारा प्रवाह में लिखा है वही उसकी स्वयं की कला है। ऐसी रचनाओं में निम्न रचनायें आती हैं—

१. पुण्यास्रवकथाकोश

२. पद्मपुराण
३. आदिपुराण
४. पुरुषार्थ सिद्धच्युपाय
५. हरिवंशपुराण
६. परमात्मप्रकाश
७. सार समुच्चय

इसके अतिरिक्त तीन ऐसी रचनायें हैं जिनकी टीकाओं को कवि ने टब्बा टीका का नाम दिया है। टब्बा टीका का अर्थ उस टीका से है जिसमें कवि ने किसी कृति का हिन्दी में पूरा अर्थ नहीं लिखा हो किन्तु पाठकों को उनका अर्थ समझाने के लिए संकेत के रूप मे कठिन शब्दों का उनके ऊपर ही अर्थ लिख दिया हो। ऐसी रचनाओं में निम्न रचनाओं को लिया गया है—

१ तत्वार्थसूत्र टब्बा टीका
२ वसुनन्दि श्रावकाचार टब्बा टीका
३ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टब्बा टीका

इन सभी १८ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय विषय के वर्गीकृतानुसार यहाँ दिया जा रहा है—

१ त्रेपनक्रियाकोश :

"त्रेपनक्रियाकोश" का नाम यद्यपि "पुण्यास्रवकथाकोश" से अन्तिम दो शब्दों में साम्यता रखता है; लेकिन यह कथा प्रधान न होकर आचार प्रधान रचना है; जैसा कि इसके नाम से ही रचना के विषय का बोध होता है। इसमें श्रावकों द्वारा पालने योग्य ५३ क्रियाओं का अति सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन किया गया है। इन ५३ क्रियाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

८. मूलगुण—पांच उदम्बर एवं तीन मकार (मद्य, मांस एवं मधु)
१२ व्रत—पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत
१२. तप—छह वाह्य तप—अनशन, अवमोदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन एवं कायक्लेश।

छह आभ्यंतर तप—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान।

१. सम्यक्त्व
११. प्रतिमा
४. दान
१. जलगालरण
१. रात्रि भोजन त्याग
३. रत्नत्रय

---

५३. योग

मानव मात्र के जीवन को शुद्ध, सात्विक एवं आचारवान बनाने के लिये इन क्रियाओं का पालन आवश्यक है। कवि ने अपने रचना चातुर्य से इन सबका इतना सुन्दर वर्णन किया है कि सारा क्रियाकोश ही एक धारा-वाहिक उपन्यास सा मालूम देता हैं। गृहस्थों के जीवन-विकास एवं सुधार की ऐसी परिष्कृत कृति भारतीय साहित्य की सुन्दरतम कृति है।

"क्रियाकोश" यद्यपि पूर्णतः धार्मिक रचना है। श्रावकों की क्रियाओं से इसका सम्वन्ध है लेकिन फिर भी कवि ने इसे पूर्णतः रुचिकर, आकर्षक तथा सरस बनाने का प्रयास किया है। जिस समय यह रचना निबद्ध की गयी थी उस समय कवि अपनी पूर्ण यौवनावस्था में था। जगत का वैभव उनके लिए सुलभ था। एक ओर शासन का उच्चपद उन्हें प्राप्त था तो दूसरी ओर उनकी विद्वत्ता, साहित्यिक रूचि एवं लोकप्रियता की कहानी चारों ओर फैल चुकी थी। आगरा एवं जयपुर में उन्होंने जो ख्याति प्राप्त की थी उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। ऐसे समय में 'त्रेपनक्रियाकोश' की रचना इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि तत्कालीन जैन समाज में जो आचार हीनता एवं क्रियाओं के पालन में ढिलाई व्याप्त हो गयी थी, उससे कवि स्वयं खिन्न थे। उन्हें शिथिलता जरा भी पसन्द नहीं थी। इसलिये उदयपुर जाने के पश्चात् ही उन्होंने 'त्रेपनक्रियाकोश' को रचना निबद्ध किया। जिसके महत्व के सम्वन्ध में उन्होंने निम्न शब्दों का प्रयोग किया है—

सव ग्रंथनि में त्रेपन किरिया, इन करि इन विन भव वन फिरिया।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपनो कारिज सारै ।।२१३३।।

सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञान स्वरूपा अति प्रति बुद्धा ।।२१३४।।

हैं अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा।
ठौर ठौर इनको जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ।।२१३५।।

—रचना के अन्त में कवि ने हिन्दी भाषा में रचना का औचित्य-वर्णन करते हुए लिखा है कि गणधरों एवं आचार्यों ने प्राकृत में इन क्रियाओं का वर्णन किया है तथा संस्कृत भाषा को इस पंचमकाल में बहुत कम व्यक्ति समझते हैं; इसलिए संस्कृत कृतियों के आधार पर ही यह कृति उन्हें नर भाषा अर्थात् हिन्दी में लिखी है। उस समय हिन्दी को 'नर भाषा' से सम्बोधन किया जाता था, ऐसा संकेत कवि की एक प्रशस्ति से मिलता है—

गणधर गावै मुनिवर गावैं, देवभाष मैं शबद सुनावै।
पंचमकाल मांहि सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ।।२१३६।।
तातैं यह नर भाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारे लीनी।
जो नर नारि पढ़ै मन लाई, सो सुख पावै अति अधिकाई ।।२१३७।।

रचना काल :

त्रेपन क्रियाकोश की रचना उदयपुर में रहते हुये की गई थी। उस दिन संवत् १७९५ की भादवा सुदी १२ मंगलवार का शुभ दिन था। तथा कवि सवाई जयसिंह के पुत्र सवाई माधोसिंह के मंत्री एवं सवाई जयसिंह की ओर से उदयपुर दरबार में जयपुर का प्रतिनिधित्व करते थे—

संवत सत्रासै पच्चाणव, भादव सुदि बारस तिथि जाणव।
मंगलवार उदैपुर माहैं, पूरन कीनी संसै नाहै ।।२१३८।।
आनंद सुत जयसुत को मंत्री, जय कौ अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनिदासा, जिन मारग को शरण गहै ।।२१३९।।

विषय वर्णन :

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, त्रेपनक्रियाकोश में ५३ क्रियाओं का वर्णन किया गया है। क्रियाकोश अध्यायों अथवा भागों में विभक्त नहीं है; किन्तु नियमानुसार उसका नामोल्लेख कर दिया गया है। सर्व प्रथम ६९ पद्यों में मंगलाचरण किया गया है। जिसमें ६३ शलाका महापुरुषों को आचार्य कुन्द-कुन्द, दशलक्षण धर्म, षोड़शकारण भावना, रत्नत्रय एवं सब साधुओं को नमस्कार किया गया है। इसके पश्चात् त्रेपन क्रियाओं का वर्णन प्रारम्भ होता है। अष्ट मूलगुणों का त्याग करने के लिये कवि ने सोदाहरण

सर्क प्रस्तुत किया है। पंच उदम्बर–बड़फल, पीपल फल, पाकर, अमर एवं कटूमर फलों में असंख्य जीवों का निवास रहता है इसलिए मद्य, मांस एवं मधु के साथ ही इनका सेवन भी वर्जित है। इसी प्रसंग में २२ अभक्ष्यों का भी वर्णन आया है। इसके पश्चात् रसोई, जलगृह एवं हाथ चक्की की क्रियाओं में सावधानी बरतने के लिए कहा गया है। जिससे जीव हिंसा न हो। भोजन जितना सात्विक होगा उतना ही वह स्वास्थ्यप्रद होगा। भारतीय जीवन में खान-पान की शुद्धि को जो विशेष महत्व दिया गया है, इस दृष्टि से कवि ने इसका वर्णन किया है। जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है; इसलिये भोजन की सभी क्रियाओं में अहिंसा धर्म का परिपालन आवश्यक है। कविवर दौलतराम ने अपनी इस कृति में इन सब पर बड़ा ही सूक्ष्म वर्णन किया है—

अरा जाणू फल त्यागहु मित्र, अणछाण्यो जल ज्यों अपवित्र।
त्यागौ कंदमूल बुधिवंत, कंदमूलमें जीव अनन्त ॥११६॥

× × × × ×

दधि गुड़ खावौ कबहु न जोग, वरजें श्रीगुर वस्तु अजोग।

मूलगुणों का वर्णन करने के पश्चात् बारहव्रतों का विस्तृत वर्णन किया गया हैं। इन बारह व्रतों के नाम हैं—पंच अणुव्रत—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं परिग्रहपरिमाणुव्रत। तीन गुणव्रत—दिग्व्रत, देशव्रत, एवं अनर्थदण्डव्रत। चार शिक्षाव्रत—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाणव्रत एवं वैयावृत्य। इन १२ व्रतों का वर्णन ३८८ पद्य से प्रारम्भ होकर १३५० पद्य संख्या तक समाप्त होता है। इस प्रकार क्रियाकोश ग्रंथ का आधे से अधिक भाग इन व्रतों के वर्णन तक सीमित है। वास्तव में ये १२ व्रत ऐसे हैं जिनके पालने से मानव देवत्व सम बन सकता है। उसमें से बुराइयां समाप्त हो जाती हैं तथा अच्छाइयों की ओर उसकी जीवनचर्या बढ़ने लगती है। यदि इन व्रतों का अणु मात्र भी हमारे जीवन में उतर जावे तो हमारा देश सभी दृष्टियों से उन्नत हो सकता है।

व्रतों के वर्णन के पश्चात् १२ तपों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। आत्मा के विकारों पर विजय पाने के लिए तपों का परिपालन आवश्यक बतलाया गया है। इनमें ६ बाह्य तप हैं जिनका शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्ध है। उपवास करना, भूख से कम खाना, प्रतिदिन किसी एक रस

का परित्याग करना, शय्या छोड़कर सोना तथा शरीर को क्लेश देना ये सभी बाह्य तप है। इनके परि-पालन से साधुओं की तपश्चर्या में दृढ़ता आती है। इसी प्रकार छह अभ्यंतर तप भी हैं। जिन्हें साधक स्वयमेव करता है और जिनसे उदात्त भावों के शमन में शान्ति मिलती है।

इनके पश्चात् सम्यक्त्व, ग्यारह प्रतिमाएं, दान, जल छानने की विधि, रात्रि भोजनत्याग एवं रत्नत्रय के परिपालन के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। कवि ने इन सभी में अपनी अगाध ज्ञान की छाप छोड़ी है। साथ में ऐसी क्रियाओं के महत्व को पद्यों में लिखकर इसकी जनसाधारण को विस्तृत जानकारी भी दी है।

इस प्रकार 'त्रेपनक्रियाकोश' में यद्यपि जैनाचार का वर्णन है, लेकिन यह मानव मात्र के लिए नैतिक संहिता है। जिसने अहिंसा धर्म का परिपालन, सत्य व्यवहार को जीवन में उतारने पर जोर, चोरी, अनैतिक जीवन एवं अनावश्यक संग्रह आदि की बुराइयों की खुलकर निन्दा की गयी है। व्रतों से जीवन को अत्यधिक सयमित, नियंत्रित एवं विकसित करने की कला सिखायी गयी है। वास्तव में ऐसी पुस्तकों को धार्मिक आवरण में न रखकर सार्वजनिक उपयोग के लिए प्रस्तुत की जानी चाहिए।

भाषा:—

भाषा की दृष्टि से यह कवि की प्रथम छन्दोबद्ध रचना थी। इसलिए कवि इसमें किसी एक शैली पर स्थिर नहीं रह सका। कहीं पर यदि शुद्ध हिन्दी का प्रयोग हुआ है तो कहीं पर राजस्थानी का। ब्रज भाषा के शब्दों के प्रयोग से कवि बच नहीं सका है। इसी तरह अपने मन्तव्य के लिए कहीं प्राकृत पद्यों का उदाहरण दिया गया है तो कहीं संस्कृत छन्दों को भी उद्धृत किया गया है। यही नहीं एक दो स्थान पर तो अपने विषय का प्रतिपादन करने के लिए उसने गद्य का भी प्रयोग किया है।

जीवंधर चरित्र

'जीवंधर चरित' कवि की दूसरी काव्यात्मक कृति है। इसमें जीवंधर के जीवन का चित्रण किया गया है। जीवंधर का जीवन जैन समाज में अत्यधिक प्रिय रहा है। इसीलिए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि सभी भाषाओं में जीवंधर के जीवन पर अनेक रचनाएं मिलती है। हिन्दी भाषा में इस चरित को निबद्ध करने की प्रेरणा कवि को उदयपुर में स्वाध्याय प्रेमियों

द्वारा मिली थी। कवि ने इस कृति की प्रशस्ति में उनका साभार उल्लेख किया है। कवि धान मंढी उदयपुर में प्रतिदिन प्रवचन किया करते थे। एक वार उन्होंने महापुराण पर प्रवचन किया। इसी महापुराण में जीवंधर की भी एक सुन्दर कथा आती है। जब श्रोताओं ने उस कथा को सुना तो सभी श्रोताओं ने एवं विशेषतः कालाडेहरा के निवासी श्री चतुरभुज अग्रवाल ने कवि से निवेदन किया कि देव भाषा अर्थात् संस्कृत तो अत्यधिक कठिन है। उसका स्वाध्याय तो पडित लोग ही कर सकते हैं, लेकिन सामान्य श्रावकों के लिये शक्ति के बाहर की बात हैं। इसलिये यदि इस काव्य की हिन्दी में रचना हो जावे तो सभी सरलता से समझ सकेंगे। इसी प्रकार कवि के प्रमुख मित्र पृथ्वीराज का भी यही आग्रह था। सागवाड़ निवासी हुमड जातीय श्रावक सेठ वेलजी का आग्रह भी विशेष था। इन लोगों के आग्रह को टालना स्वयं कवि के लिए भी संभव नही था। अतएव कवि को अन्त में भाषा में जीवन्धर चरित को प्रारम्भ करना ही पड़ा और संवत् १८०५ की आषाढ़ शुक्ला द्वितीया की शुभवेला में इस गन्थ की समाप्ति कर दी गई।

'जीवंधर चरित' एक प्रबन्ध काव्य है। इसमें प्रवन्ध काव्योचित सभी गुण मिलते हैं। सारा काव्य अध्यायों में विभक्त है। जिनकी संख्या पांच है। इन अध्यायों में जिस प्रकार का वर्णन मिलता है, उसका संक्षिप्त परिचय अध्याय की पुष्पिका में दिया गया है जिससे इस अध्याय का पूरा चित्र सामने आ जाता है। इन अध्यायों में कवि ने जीवन्धर चरित को अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा सरस, सुवोध, एवं सरल बनाने का प्रयास किया है। कवि ने अपने काव्य के परम्परागत कथानक में यद्यपि कोई विशेप परिवर्तन नहीं किया हैं फिर भी कुछ नवीन उद्भावनाओं की सृष्टि अवश्य हुई है। समूचा काव्य एक इतिवृतसा लगता है। जिसमें जीवन्धर के विभिन्न पक्षो की उद्-भावना हुई है। कथावस्तु का पूर्णतः निर्वाह हुआ है। वह पाठकों को कभी रुलाती तो कभी हंसाती हुई आगे ले चलती है। वास्तव में जीवन्धर का चरित क्या है—मानों उस महापुरुष की कहानी है, जिसने जीवन में कभी हार नही मानी तथा जिसने कभी अन्यायी का पक्ष नही लिया। वह ऐसे मनुष्य की कहानी है; जिसे जीवन में कुछ कर दिखलाने की तीव्र इच्छा है। वह एक ऐसे पुण्यात्मा की कहानी है; जिसने जीवन में सव कुछ पाकर भी उसे निस्सार जानकर छोड़ दिया तथा अन्त में तपस्वी जीवन को अंगीकार करके निर्वाण की प्राप्ति की।

काव्य वर्णन

कवि के सभी वर्णन उच्चकोटि के हैं। एक बार जीवन्धर नगर के बाहर अपने साथियों के साथ गोली का खेल खेल रहे थे। इतने में एक तपस्वी ने जीवन्धर से नगर की दूरी के बारे में पूछ लिया—इसका जीवन्धर ने जो सुन्दर उत्तर दिया वह कितना सामयिक एवं आकर्षक है

बोले कंवर सवै यह जानैं, वालक चेलक पंथ पिछानै।
तू अति वृद्ध ज्ञान न तोकौं, किती दूर पुर पूछै मोकौं ॥६१॥
तरवर सरवर बाग विसाला, वहुरि देखिए खेलत वाला।
तहां क्यौं न लखिए पुर नीरा, संसै कहा राखिए बीरा ॥६२॥
ज्यौं लखि धूम अगनि हू जाने, त्यौं बालक लखि पुर परवानें।
जीवंधर के सुनिये वैनां, तापस कीये नीचे नैंनां ॥६३॥

एक बार जीवन्धर रोने लगे। जब तपस्वी ने जीवन्धर से नहीं रोने के लिए कहा तो जीवन्धर ने उसका जवाब कितने व्यंग्य से दिया, वह पढ़ने योग्य है—

रोवे के गुन तुम नहि जांनी, मेरी बात हियैं परवानी।
जाय सलेखम जो दुख दाई, नेत्र विमल ह्वै अति अधिकाई।१०५।
तितै अहार हु सीतल होई, यामैं तौ औगुन नहि कोई॥

आदि काल से ही लड़की के विवाह की चिन्ता माता-पिता को रही है। पुत्री के विवाह के पश्चात् उन्हें अपूर्व प्रसन्नता होती है। इसी तरह का एक प्रसंग जीवन्धर चरित में भी आया है; जिसमें इसी तरह की बात कही गयी है—

रहै कंवारी कन्यका, व्याह जोगि घर मांहि।
मात तात कौ दूसरी, ता सम चिंता नांहि ॥४७॥
पुत्री परणावन समा, नहि निचितता और॥

प्रस्तुत काव्य में नायक का चरित्र अलौकिक कार्यों से ही नहीं उभारा गया है; किन्तु वीणा-वादना प्रतियोगिता में जीवन्धर की विजय बतलाकर

नायक के ही चरित्र को समुन्नत बनाया गया है साथ ही अपने स्वयं की वीणा-वादन की कला पर भी प्रकाश डाला गया है—

सुनि करि चित्रत रहे भूचरा खेचरा।
मृग मोहित व्है महाराग मैं चित धरा।
या विद्या करि हुई कवंर की कीरती।
जांनी सब संसार राग मैं कीमती ॥३७॥२१

जीवन्धर सुगन्ध परीक्षा में भी प्रवीण थे, इसलिए कवि ने "गंध परखवा दूजो नाहिं, जीवन्धर सो धरणी मांहि"—७०/२४ के शब्दों में अपने नायक की प्रशंसा की है। जीवन्धर अत्यधिक दयालु थे। जब एक श्वान भयभीत होकर उल्टा तालाब में पड़ जाता है तो उसे वे अपने प्राणों की भी परवाह न करते हुए तालाब में कूद पड़ते हैं और मरते हुए कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाते हैं; जिससे वह मरकर यक्ष योनि को प्राप्त करता है—

प्राण छोडि वे सनमुख भयो, सुनिकैं कुमर कढाई हि लयो।
जान्यों इह जीवै नहिं कोइ, याकौ मरण अवारहि होय ॥७२॥२५
तव ताके कांननि मै आप, दियो मंत्र जो नासै पाप।
नमोकार सो मंत्र न और, इहै मंत्र सब श्रुत कौ मौर ॥७३॥२५

कवि ने व्यापारियों की मनोवृत्ति पर अच्छी चुटकी ली है और लिखा है—

वनियनि की इह रीति अनादि, हरडै सूंठि आवला आदि।
वेचै और मोलि ले सही, इन तौ रीति और ही गही ॥९६॥२७

जीवन्धर :

काव्य का नायक जीवन्धर हैं। उसके पिता राज नगर के राजा थे। लेकिन उसका जन्म शमशान में हुआ। जन्म लेते ही वह पितृ विहीन हो गया और अपनी माता विजया रानी के द्वारा पालन होने के स्थान पर गंधोत्कट सेठ के घर उसका लालन पालन हुआ। लेकिन जीवन्धर पुण्यात्मा था; इसलिए जहां भी गया वहीं पर उसे सव प्रकार की सुख सुविधा मिलती गयी। गंधोत्कट सेठ ने जीवन्धर का लालन-पालन अत्यधिक स्नेह के साथ किया। वह

प्रारम्भ से ही व्युत्पन्न मति था, साहसी था, निडर था तथा आपत्तियों से जूझने वाला था। बचपन में जब उसकी भेंट तपस्वी से हुई तो तपस्वी और उसके मध्य होने वाला वार्तालाप उसके व्युत्पन्न मति होने का स्पष्ट प्रमाण है। तपस्वी द्वारा नगर की दूरी पूछी जाने पर, जीवन्धर द्वारा दिया गया उत्तर उसकी उत्पन्न मति का द्योतक है।

जीवन्धर ने सर्व प्रथम भीलों का उत्पात शांत किया और उनसे गायों को छुड़ा कर काष्टांगार को सौंप दी। यह जीवन्धर की प्रथम सफलता थी। काष्टांगार जैसे धूर्त राजा भी उससे लड़ने का साहस नहीं कर सके। उसे जीवन्धर ने अपने भाइयों को साथ लेकर ऐसी शिकस्त दी, जिससे जीवन्धर की वीरता की चारों ओर प्रशंसा होने लगी। इसके पश्चात् जीवन्धर ने सुघोषा वीन बजाकर गंधर्वदत्ता के साथ विवाह किया—वह उसका संगीत प्रावीण्य था। काष्टांगार के बिगड़े हुए हाथी असनिवेग को सहज ही में वश में कर लिया जिसके उपलक्ष्य में उसे सुरमंजरी जैसी सुन्दर कन्या प्राप्त हुई। काष्टांगार के षडयन्त्र को विफल किया; पद्मोत्तमा का विष दूर कर उससे विवाह किया एवं आधा राज्य भी प्राप्त किया। सहस्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलकर क्षेमसुन्दरी को विवाह में प्राप्त किया। धनुष विद्या में प्रवीणता दिखला कर हेमाभा को परिणय संस्कार में बांध लिया तथा अपने ही नगर राजपुर में आकर उसने विमला एवं गुणमाला जैसी कन्याओं से विवाह किया। इनसे जीवन्धर की कीर्ति चारों ओर फैल गयी। यही नहीं रत्नावली को स्वयंवर में प्राप्त करके अपनी निशाने बाजी की कला में सफलता पाई और अपने पिता की जघन्य हत्या करने वाले तथा प्रबल शत्रु काष्टांगार को रण भूमि में मारकर अपना राज्य वापिस प्राप्त किया और एक लम्बे समय तक अपने कुटुम्बीजनों के साथ उसने जनता को स्वच्छ प्रशासन दिया। इस प्रकार काव्य के नायक जीवन्धर का चरित्र अन्त तक निखरता गया है।

काव्य कला:

प्रस्तुत 'चरित' में सभी काव्य गुण उपलब्ध होते हैं। पांच अध्यायों में विभक्त यह काव्य हिन्दी भाषा का प्रमुख काव्य है जो अभी तक विद्वानों की दृष्टि से ओझल रहा। दोहा, चौपई, सोरठा, बेसरी, अरिल्ल, बड़दोहा, चालि छन्द, भुजंगी प्रयात, छप्पय आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। कवि ने बीच-बीच में दोहा चौपई के अतिरिक्त अन्य छन्दों का प्रयोग करके काव्य की उपयोगिता में वृद्धि की है। इसी तरह अलंकारों का प्रयोग भी

यथेष्ट हुआ है। जिनमें उत्प्रेक्षा, उदाहरण, उपमा एवं अनुप्रास अलंकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

'जीवन्धर चरित' शान्त रस का काव्य है। इसका नायक अनेक साहस पूर्ण कार्यों को करने के पश्चात् एवं दीर्घ समय तक शासन सुख भोगने के उपरांत संसार से विरक्त हो जाता है और अन्त में घोर तपस्या करके मोक्ष को पाता हैं। अपने पूर्व भव में १६ दिन तक हंस के बच्चे को उसकी मां से विलग करने का फल जीवन्धर को इस भव में अपनी माता से १६ वर्ष तक विछोह मिलता है। क्योंकि सभी जीवों की समान आत्माएं होती हैं और उन्हें भीं सुख-दु:ख का अनुभव समान रूप से होता है। जन्म से पूर्व ही पिता की मृत्यु, श्मशान में जन्म, सेठ का श्मशान में मृत पुत्र को लाना और उसके स्थान पर जीवन्धर को पालना, यक्षिणी द्वारा उपकार, रक्षा करना और फिर यक्ष द्वारा विपत्तियों में सहायता ये सब कुछ ऐसी घटनाएं हैं, जो कर्म सिद्धान्त में अटूट विश्वास उत्पन्न करने वाली है।

भाषा :

'जीवन्धर चरित' की भाषा शुद्ध हिन्दी हैं। यद्यपि कवि ने उसे उदयपुर में रहते हुए छन्दोवद्ध किया था लेकिन मेवाती और गुजराती भाषा का इस काव्य पर प्रभाव नहीं है। किन्तु कवि के जयपुर निवासी होने के कारण कहीं-कहीं ढूंढारी शब्दों का प्रयोग अवश्य हो गया है।

३ अध्यात्मबारहखड़ी :

'अध्यात्म बारहखडी' कवि की अध्यात्मक कृतियों में सबसे बड़ी रचना है। इसमें स्वर एवं व्यंजन के माध्यम से अध्यात्म विषय का वर्णन किया गया है। स्वयं कवि ने इसका अध्यात्म बारहखडी नाम देकर इसके विषय को स्पष्ट किया है। एक प्रकार से वह अध्यात्म विषय का कोश ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक वर्णन भक्ति एवं अध्यात्म रस से ओत-प्रोत हैं। कवि ने इसमें अपने पूरे ज्ञान को ही जैसे उडेल कर रख दिया है। इस ग्रन्थ में तीर्थकरों की विविध रूप में स्तुति मिलेगी। सहस्रनाम, शतनाम जैसी अनेक रचनाएं इसमें समायी हुई हैं। इस कृति का दूसरा नाम "भवत्यक्षरमालिका बावनी स्तवन" भी दिया हुआ है। अध्यात्म बारहखडी इसका अलग नाम है—जैसा कि कवि ने कृति की प्रत्येक पुष्पिका में उल्लेख किया हैं।

कवि ने अपनी इस पूरी कृति को ८ परिच्छेदों में निम्न प्रकार विभक्त किया है—

प्रथम परिच्छेद में ओंकार प्रणव महिमा एवं अकाराक्षर से प्रारम्भ होने वाले पद्य हैं। सर्व प्रथम ५ संस्कृत पद्यों में मंगलाचरण किया गया है। इसके पश्चात् ६६ दूहा एवं नाराच छंदों में प्रणवमहिमा, २६ चौपई छन्दों में ओंकार महिमा एवं ११२, दोहा चोपई, छंद वेसरी में अकार का वर्णन किया गया है। प्रथम परिच्छेद की पुष्पिका निम्नप्रकार है—

"इति श्री भक्त्यक्षरमालिका वावनी स्तवन अध्यात्म वारहखड़ी नामध्येय उपासनातंत्रे जिनसहस्रनाम एकाक्षरीनांममालादि अनेक ग्रंथानुसारेण भगवद भजनानांधिकारे आनंदराम सुत दौलतरामेन अल्पबुद्धिना उपायनीकृते प्रथम स्तुति प्रारंभद्वारेण प्रणव महिमापूर्वक अकारमिश्राक्षर प्ररूपको नाम प्रथम-परिच्छेद ॥१॥

द्वितीय परिच्छेद में अकार से लेकर अ:कार के १६ स्वरान्त पद्यों में भगवद्भक्ति एवं अध्यात्म की गंगा वहायी है। इन स्वरान्त पद्यों की संख्या निम्न प्रकार है:—

अकारान्त पद्य	४४२
आकारान्त ,,	१३५
इकारान्त ,,	६६
ईकारान्त ,,	३५
उकारान्त ,,	१६०
ऊकारान्त ,,	४४
ऋकारान्त ,,	१४४
ॠकारान्त ,,	१५
ऌकारान्त ,,	१६
ॡकारान्त ,,	११
एकारान्त ,,	१६०
ऐकारान्त ,,	५०
ओकारान्त ,,	२४
औकारान्त ,,	२५
अंकारान्त ,,	७२
अ:कारान्त ,,	१२
	१४७१

जिन छन्दों का इस परिच्छेद में प्रयोग हुआ है, उनमें दोहा, चौपई, चौपया, सवैया, कवित्त, छन्द गीता, भुजंगीप्रयात, त्रोटक, सवैय्या इकतीसा, छन्द मोतीराम, पद्धड़ी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कवि ने कथाओं के माध्यम से भी जिन महिमा का वर्णन किया है। इकारान्त पद्यों के अन्त में कवि ने अपने पुत्रों के नाम गिनाये हैं। ऋकार से पहिले जिनवाणी का स्तवन और फिर षट्ऋतुओं का वर्णन मिलता है। सभी वर्णन विस्तृत एवं स्पष्ट हैं एवं कवि की विद्वत्ता के द्योतक हैं।

तृतीय परिच्छेद :

यह परिच्छेद कवर्ग का है। जिसमें ककार, खकार, गकार, घकार एवं ङकारान्त पद्यों को दिया गया है। इन परिच्छेदों में ककारान्त के २०५ पद्य हैं, खकारान्त के ८१ पद्य, गकारान्त के ११७ पद्य और घकारान्त के ५९ पद्य एवं ङकारान्त के २४ पद्य हैं। प्रारम्भ में वर्णन करने से पूर्व संस्कृत पद्य अलग से दिये गये हैं। गृद्ध के प्रसंग में सीताहरण की कथा दी हुई है।

चतुर्थ परिच्छेद :

इसमें चवर्ग के सभी पंचाक्षरान्त पद्य हैं इनमें चकारान्त के १९०, छकारान्त के ७४, जकारान्त के ३२, झकारान्त के ४२ एवं ञकारान्त के २० पद्य हैं। इस प्रकार यह परिच्छेद ३५८ पद्यों में पूर्ण होता है। इनमें झकारान्त में झूंठ की बुराइयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस परिच्छेद का प्रमुख छन्द सवैया एवं सोरठा है। वर्णन कुछ क्लिष्ट हो गया है।

पंचम परिच्छेद :

इसमें टवर्ग के सभी पंचाक्षरान्त पद्य हैं। इनमें टकारान्त के ३७ पद्य, ठकारान्त के ३५ पद्य, डकारान्त के ७६, ढकारान्त के २६ पद्य एवं णकारान्त के ४३ पद्य हैं। इस परिच्छेद में सब मिलाकर २१७ पद्य हैं। इस परिच्छेद का वर्णन सामान्य है।

षष्ठम परिच्छेद :

उसमें तवर्ग के पद्य दिये गये हैं। जिसमें तकारान्त के १७३ पद्य, थकारान्त १३९ पद्य, दकारान्त के ३४९ पद्य, धकारान्त के ७९ एवं नकारान्त के १२९ पद्य हैं। सब मिलाकर हिन्दी पद्यों की संख्या ६६९ है,

जो एक सतसई के रूप में हैं। इस परिच्छेद में त्रेपन क्रिया, अष्ट मूलगुण, द्वादश व्रत, निश्चय व्यवहार नय, गुणस्थान, पांच ज्ञान—आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस परिच्छेद का प्रमुख छन्द दोहा चौपई एवं सोरठा है।

सप्तम परिच्छेद :

इस वर्ग में पवर्ग पर आधारित पद्य हैं। इनमें पकारान्त के ३२८ पद्य, फकारान्त के ७०, बकारान्त के २७, भकारान्त के १३७ एवं मकारान्त के १८६ पद्य हैं तथा कुल पद्यों की संख्या ८५८ है। कुण्डलिया, छापय, सोरठा, शार्दूल विक्रीडित जैसे छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। सभी वर्णन सरस, सरल एवं प्रवाहमय हैं। अलंकारिक शब्दों का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है।

अष्टम परिच्छेद :

अध्यात्म वारहखडी का यह अन्तिम परिच्छेद है। जिसमें यकारान्त पद्यों की संख्या ११८, रकान्त ६२, लकारान्त ८६, वकारान्त ११३, शकारान्त १२२, षकारान्त १२६, सकारान्त ४५२, एवं हकारान्त ६३ तथा क्षकारान्त के ८१ पद्य हैं, इस प्रकार इस परिच्छेद की कुल संख्या १२६८ पद्य हैं जो सबसे अधिक है। इसमें आध्यात्मिक वर्णन अपेक्षाकृत अधिक है। दोहा चौपई जैसे छन्दों के अतिरिक्त उपेन्द्रवज्रा, सवैय्या, कुण्डलिया सोरठा आदि इस परिच्छेद के छन्द हैं।

अध्यात्म वारह खडी काव्यत्व की अपेक्षा से एक अच्छी कृति है। यह एक कोश ग्रन्थ है, जिसकी रचना जिनसहस्र नाम नाममाला आदि अनेक कोश ग्रन्थ एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों के आधार पर की गई है। हिन्दी भाषा में इस प्रकार की बहुत कम कृतियां देखने में आती हैं।

वर्णन :

शारदा—जिसका अपर नाम भारती, ईश्वरी एवं सरस्वती है, वह सर्वज्ञ प्रभु के मुख से निकली हुई है। कवि ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—

"सरवगि के मुखतैं भई, सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती, सुर नर मुनिजन सेव ॥२७॥

अकारान्त में श्रद्धा पर प्रकाश डालते हुये कवि ने लिखा है, कि श्रद्धा से भगवान जिनेन्द्र का नाम जपना चाहिए । श्रद्धा पूर्वक ही किसी को कुछ देना चाहिये । श्रद्धा से ही व्रत एवं तप की आराधना की जानी चाहिए ।

श्रद्धा करि जिन नांव जपि, श्रद्धा करि कछु देहु ।
श्रद्धा करि व्रत शील धरि, नर भव लाहौ लेहु ।।

कवि जिनेन्द्र की भक्ति में इतने सन्नद्ध थे कि इन्हें यह आश्चर्य लगने लगा था कि लोग उन्हें छोड़कर अन्य की कैसे आराधना करते हैं—

तें नर नीच शृगाल सम, जे नहिं ध्यावें तोहि ।
तोहि छोडि औरहि भजें, इह अचरजि अति मोहि ।।१०५।।

एक दूसरे प्रसंग में कवि ने फिर उनका स्तवन निम्न प्रकार किया है—

तेरौ निर्माता नहीं, रचिता जग मैं कोय ।
अनिर्मातृ भगवान तू, अनिर्वाच्य वो होय ।।३९१।।

जिनेन्द्र का वर्णन कर सकने में असमर्थ अपने आपको कवि निम्न प्रकार प्रस्तुत करता है—

ओजस्वी तुम वर्णना, कथि न सकै जनि कोय ।
मैं मति हीन अजांन जो, किम कहि सकि हौं तोय ।।३।।

'जिनेन्द्र' के स्तवन में कवि के कुछ अत्यधिक सुन्दर, सरल एवं भावपूर्ण पद्य देखिए—

'ख' कहिए आकास को, तू आकास स्वरूप ।
सद्ध चिदातम बोधमय, परम हंस जगभूप ।।२।।
ख कहिए इन्द्रीनि कौ, तुम इन्द्रीनि तैं दूर ।
मन अर बुधि हू कै परै, घटि घटि अन्तर पूर ।।३।।

× × ×

घर घर की सेवा करत, उपज्यौ अति गति खेद ।
अब तू अपनी टहल दे, ले निज मांहि अभेद ।।१।।
धर धरणी मै हम लगे, धन धरणी की चाहि ।
चाहि हमारी मेटि सब, वहु भरमावै काहि ।।२।।

४ विवेक विलास

'विवेक विलास' कवि की पद्यात्मक कृतियों में से सबसे महत्वपूर्ण कृति है। पूरी कृति रूपक काव्य है, जिसमें आदि से अन्त तक रूपकों की मालाएं ही मालाएं हैं। यह एक ऐसी कृति है, जो किसी भी कवि की काव्य प्रतिभा परखने के लिए पर्याप्त है। कवि ने कृति का नाम विवेक विलास' दिया है जो पूर्णतः सत्य है। इसमें जगत के प्राणियों को विवेकमय जीवन अपनाने की प्रेरणा दी गयी है। विभिन्न रूपकों से उसे सच्चरित्रता एवं सद्कार्य करने को कहा गया है। पूरा विलास दोहा छन्द में है। जो ९२४ दोहा छन्दों में समाप्त होता है। एक ही काव्य में दोहा छन्द का इतना वड़ा प्रयोग भी वहुत कम देखने को मिलता है। यह एक ही छन्द-कृति है। १८वीं शताब्दी में दोहा छन्द कवियों के लिए एवं जनता के लिए कितना लाडला छन्द था। इसकी इस कृति से जानकारी मिलती है।

कवि ने अपनी इस कृति का नाम 'विलास' दिया है। विलास संज्ञक रचनाएं वनारसीदास से ही लोकप्रिय रही हैं इसलिए प्रत्येक कवि की एक विलास संज्ञक कृति अवश्य मिलती है। इनमें वनारसी विलास, भूधर विलास, द्यानत विलास, दौलत विलास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन अन्य विलास, संज्ञक रचनाओं में एवं विवेक विलास में पर्याप्त अन्तर है। वनारसी विलास में जहां वनारसीदास की सभी लघु कृतियों का संकलन किया गया है। वहां दौलतराम ने अपने विवेक विलास में एक ही कृति को निवद्ध किया हैं।

विवेक विलास में निजधाम वर्णन, २. ठगग्राम वर्णन, ३. निज वन निरूपण, ४. निजभवन वर्णन, ५. भावसमुद्र वर्णन, ६. भवसमुद्र वर्णन, ७. ज्ञान निरूपण, ८. गर्वगिरि वर्णन, ९. निज गंगा वर्णन, १०. आशा वैतरणी विषनदी वर्णन, ११. भावसरोवर वर्णन, १२. विभाव सर वर्णन, १३. अध्यात्म वापिका वर्णन, १४ विषय वापी वर्णन. १५. रस कूप वर्णन, १६. भवक्रम वर्णन, १७. अन्तरात्मा ज्ञान राज वर्णन, १८. वहिरात्मा दशा वर्णन, १९. गुरु वचन—इस प्रकार 'विलास' का विषय वर्णन विभक्त किया हुआ है। यद्यपि विवेक विलास अध्यायों अथवा सर्गों में विभक्त नहीं हैं, लेकिन विभिन्न वर्णन ही इसके अध्याय हैं। ये सभी अध्याय ज्ञान रूपी महल से चढ़ने के लिए सीढ़ी का कार्य करते हैं। एक के पश्चात् एक वर्णन इस क्रम से हुआ है, जिससे विलास की एक भी कड़ी नहीं टूट सकी है। और विषय सहज ही खुलता चला गया है। समूचा

विलास रूपकों से ओत-प्रोत है तथा प्रत्येक दोहे में किसी न किसी रूपक का प्रयोग हुआ है। इनसे कवि के अगाध ज्ञान एवं विशाल काव्य-शक्ति का सहज ही पता लगाया जा सकता है।

रचना काल

कवि ने अपनी इस कृति को किस शुभवेला में प्रारम्भ किया था, और किस शुभवेला में समाप्त करके साहित्यिक जगत का महान् उपकार किया, इसके बारे में अपनी अन्य कृतियों के समान समय देना उचित नहीं समझा। यही नहीं इस महत्वपूर्ण कृति की पूरे राजस्थान के जैन ग्रन्थगारों में अभी तक एक ही पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है जो जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। यह पाण्डुलिपि सं० १८२७ पौष सुदी ३ वृहस्पतिवार की लिखी हुई है। जयपुर में आने के पश्चात् कवि ने एक ही पद्यात्मक रचना 'श्रीपाल चरित' को छन्दोबद्ध किया था, जिसमें भी स्पष्ट रूप से रचना काल दिया हुआ है। यह कृति संभवतः 'अध्यात्मबारहखडी' के पश्चात् लिखी गयी थी। वह कवि की काव्यशक्ति का सर्वोच्च समय था। और इसीलिए कवि की लेखनी से ऐसी उत्कृष्ट कृति का सर्जन हो सका। इसलिए इसका रचना काल सं० १७९८ से १८०० तक का माना जा सकता है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से विवेक-विलास एक परिमार्जित हिन्दी कृति है। कवि ने शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करके तत्कालीन समय में प्रचलित हिन्दी शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि कवि राजस्थानी थे। उदयपुर में उस समय रहते थे, लेकिन विवेक-विलास की भाषा पर ढूंढारी एवं मेवाड़ी भाषा का सबसे कम प्रभाव पड़ा है। कवि ने शुद्ध हिन्दी में अपनी इस कृति को प्रस्तुत किया है।

विषय वर्णन

विवेक-विलास 'निजधाम वर्णन' से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की महिमा एवं उससे ब्रह्म पद प्राप्ति का कथन मिलता है। इसके पश्चात् कवि ने जगत में अध्यात्म चर्चा एवं भगवद्भक्ति को ही आत्म-साधना के प्रमुख उपाय बताये हैं। यह आत्मा अपने आत्म प्रदेश में निवास करता है, वही उसका अभैपुर है। जहां उसे जरा भी काल का भय नहीं है।

अभैपुर नगर का राजा आत्मा ही है। समरस भाव उसके मित्र हैं। सम्यक् ज्ञान ही उसका प्रधान अमात्य है। अनन्तवीर्य आत्मा का सेनापति है। भाव उसका दुर्ग है। उसका गम्भीर स्वभाव ही उसके यहां खाई है। आत्म ध्यान ही द्वार हैं और यही अध्यात्म का सार है। अनन्त चतुष्टय भाव ही चार सुभट है। इस प्रकार रूपकों की प्रत्येक पद्य में छटा दिखलायी देती है।

प्रथम अध्याय में इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि आत्मा राजा है तथा गुण इसकी प्रजा है। शुद्ध भाव ही उसके शस्त्र हैं जिनसे उसकी जीत होती है। उस पुर में कोई चोर नहीं है। वह आत्मा स्वयं मालिक है। उसके पास महासुखों की सभी सामग्री उपस्थित रहती है। शुद्ध पारिणामिक भाव ही राजसभा के पार्षद हैं। जो सदैव आत्मा की सेवा में उपस्थित रहते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व उसके महा-भट हैं जिसके बल पर यह आत्मा निष्कलंक राज्य करता है। निज स्वभाव ही उसका सिंहासन है। उस पर वह बैठकर सब पर शासन करता है। दुःखों को हरण करने वाला स्वभाव ही उसका छत्र हैं तथा निर्भय भावों की तरंग चमर है। इसके आगे कवि ने आत्मा के विभिन्न गुणों को रूपकों द्वारा समझाया है।

ऐसी आत्मा परमानन्द दशा में विराजती हैं, वहां उसे इन्द्रिय-भोगों की जरा भी चिन्ता नहीं हैं। आत्मानुभव ही अमृत है जिसका वह सदा पान किया करता है। उसे भूख एवं प्यास की बाधा नहीं होती। जन्म, जरा एवं मृत्यु का भय नहीं तथा रात्रि एवं प्रातः उसके लिए समान हैं। रात्रि में विचरण करने वाले चोरों के समान रागादि भावों का वहां संचार नहीं और उसके आत्मपुर में रोग-शोक आदि पिशाच नहीं है। ठग के रूप में काम करने वाले काम एवं लोभ का वहां नाम भी नहीं है। ऐसे प्रदेश में वस्तु स्वभाव ही पुर है और वह धर्ममय है। जहां राजा और प्रजा दोनों धर्ममय है। वहां धर्म रहित होकर कोई नही रहता। ऐसे यह आत्मा जब अपने नगर में रहता है; तब चारों ओर महान् सुख बरसता है। वह उसका नन्दन वन है; लेकिन इस उपवन में न तो मायारूपी बेलि है और न विकल्पों का जाल है। क्रोधादि पंखों का यहां पूर्णतः अभाव है। उस वन में शुभाशुभ कर्म वृक्ष नहीं है। वहां सुख रूपी सरोवर है। जिसमें सहज नीर भरा हुआ है। वहां अपने भाव वाले तरुवर हैं। इस प्रकार यह पूर्ण वर्णन रूपकों से भरा हुआ है।

"विवेक-विलास" का दूसरा अध्याय 'ठग ग्राम वर्णन' है। इसमें कवि की भावाभिव्यक्ति है कि हे मनुष्य ! यह जगत ठगों का निवास-स्थान है। मोहादि वहां के अनन्त ठग हैं, जिनके नाम कहां तक लिए जावें। मोह इन सब ठगों का राजा है; क्योंकि मोह की फांसी के समान जगत में दसरी फांसी नहीं है। जीवों को यह फांसी देकर मान गुणों को हर लेता है। मोह निद्रा के समान दूसरी दीर्घ निद्रा नहीं है। यह जगत मोहवश ज्ञान चेतना खोकर सोता रहता है। ममता मोह की प्रिया है। जिसके समान अन्य कोई ठगिनी नहीं है। यह ममता सुरेन्द्र नरेन्द्र आदि सभी को ठग लेती हैं। सबसे बड़े ठग राग एवं द्वेष हैं, जिनकी भुजाओं के प्रताप से मोह जगत पर शासन करता है। राग की प्रिया सरागता है। विषयों में अनुरागता ही यहां अद्भुत ठगिनी हैं। द्वेष के समान कोई दुर्बुद्धि नहीं है। द्वेष की प्रिया दुर्जनता है, जिसने अभी सभी को ठगा है। इसी तरह इस नगर में काम के समान दूसरा कोई प्रवल ठग नहीं है, जो जगत का शील हरण करके वदफैल करता रहता है। काम की प्रिया रति है, जो जगत को भरमाती रहती है। इसी प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ, रोग, शोक असंयम आदि और भी ठगों के नाम गिनायें हैं।

'विलास' का तीसरा वर्णन 'निज वन निरूपण' के नाम से है। यह २५ दोहा छन्दों में पूर्ण होता है। इसमें कवि ने बतलाया है कि जब यह आत्मा अपने वन में क्रीड़ा करती है तो उसे मृत्यु का भी डर नहीं रहता। आत्म-वन अमर उद्यान है जिसमें परमानन्द प्राप्त होता है। यह वन आत्महंस के लिए केलि करने का स्थान है लेकिन यह हंस हिंसा से रहित है। तथा शान्त रस का धारण करने वाला है। इस वन में आत्मकला के समान कोई कोयल नहीं है। वह आत्म-वेलि ही रसिया है। यहां सरवर सम भाव के रूप में है। चपल स्वभाव वाले मृग नहीं है तथा दुष्ट भाव वाले दुष्ट पशु भी नहीं है। इस आत्मवन में न तो मोह रूपी दैत्य का निवास है और न कषाय रूपी किरात ही निवास करता है। इसी तरह से वन में मिलने वाली सामग्री को आत्मवन के रूप में चित्रित किया है। वहां न तो कांटे हैं और न विकल्पों का जाल है और न माया रूपी विष वेलि ही है। इस वन में रागादिक के रूप में रजनीचर नहीं विचरते हैं। आत्म ज्ञान के रूप में घने वृक्ष हैं। वहां तो स्वभावरुपी अमृत वृक्ष है जो सदा अमर फल देते हैं। यह एक ऐसा रमणीक वन है, जहां आत्म राजा विचरण करता हैं।

चतुर्थ अध्याय 'निज भवन वर्णन' के रूप में है। यह विस्तृत वर्णन है, जो ७७ दोहा छन्दों में पूर्ण होता है। 'भव वन' अत्यधिक विरूप है। इसलिए

यह आत्मा उसमें जरा भी विचरण नहीं करती। इस भव वन में दुष्ट स्वभाव के रूप में दैत्य विचरते हैं। मोह दैत्य शिरोमणि है। राग एवं द्वेष रजनी चर हैं, पाप के रूप में पिशाच हैं। सात व्यसनों की सेना में महाहिंसक पुरोहित हैं; जिसमें दया का कण भी नहीं है। ऐसे भव वन में मोह राजा है। ममता उसकी पटरानी है। आठ कर्मों के रूप में विष वृक्ष हैं; जो कांटों से युक्त है तथा छाया रहित है। वह मृत्यु के रूप में उपहार देता रहता है। शुद्धात्म अनुभूति के समान अमृत लता नहीं है। शुद्ध भावों के रूप में अमृत वृक्ष नहीं है। इसके आगे कवि ने और भी भय वन के डरावने रूप का विस्तार से वर्णन किया है।

भव वन के समान ही भाव समुद्र का रूपात्मक वर्णन किया गया है। इसमें सागर में मिलने वाले जड़ स्वभाव के रूप में जलचर, मोह भाव, माया एवं लोभ के रूप में मगर, लोलपी जिह्वा के रूप में मछलियां, निष्ठुर कछुवा, वृथा विवाद करने वालों के रूप में मींडके, तुच्छ स्वभाव के रूप में भींगर आदि का वर्णन किया गया है।

आगे भव समुद्र वर्णन, गर्व गिरि वर्णन, निज गंगा वर्णन, आशा-वैतरणी विष नदी वर्णन, भाव सरोवर वर्णन, विभाव सर वर्णन, अध्यात्म वापिका वर्णन, विषय वापी वर्णन, आदि वर्णनों के रूपकों में काफी साम्यता है। समुद्र में पाने वाले मगर, मछली, जलचर, मच्छर, कछुवा आदि के रूपकों का समावेश किया गया है। सभी वर्णन भावमय है। इसी तरह विलास के सभी वर्णनों में रूपकों के अम्बार लगे हुए हैं।

'विवेक विलास' की भाषा प्रौढ़ है तथा वर्णन रुचिकर है। बड़ी ही प्रभावक रीति से कवि ने अध्यात्म की गंगा बहायी है, जिसमें आत्मतत्व की प्रधानता है। कवि ने आत्मा के विविध गुणों का विभिन्न रूपकों के माध्यम से सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। यह आत्मा स्वभावतः शुद्ध है। निजानन्द रसलीन है। आत्मा ही नगर है और आत्म भाव ही सागर है तथा आत्मा ही स्वयं का राजा है जो स्वयं के पास है।

आतम भावहि नगर है, आतम भाव पयोधि।
आतम राम ही एक है, यह निज घर में सोधि ।।३०८।।

'आत्म तत्व' की पहिचान जिसे भी हो गई, वही भवसागर से तिर गया तथा जिसने इसकी सिद्धि करली, उसे जन्म मृत्यु के जाल से छुटकारा मिल गया। कवि ने अपनी इस कृति में आत्मा को कलुषित करने वाले, शुद्ध

चैतन्य दशा से दूर रखने वाले, संसार में रुलाने वाले अवगुणों का, बुराइयों का एवं दुस्साधनों का जिस स्पष्टता से उल्लेख किया है, वे कवि के गम्भीर चिन्तन की ओर संकेत करते हैं। वास्तव में यह विलास एक ऐसी कृति है। जिसका धर्म एवं सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं। वह केवल अपने ही में निवास करने वाले आत्म तत्त्व तथा उसमें निहित परम शक्तियों का दर्शन कराना चाहता है। वह मनुष्य मात्र को बार-बार चेतावनी देता है कि—

निज गुर अंबुधि मैं बसै, ताहि न पावो ताप।
तातैं सकल विलास तजि, सेवो आपनि आप॥
विषै पंच इन्द्रीनि के, कालकूट विष तेहि।
विष कौ मूल भयंकरा, भव कानन है एहि॥

५ श्रेणिक चरित :

यह कवि की प्राथमिक रचनाओं में से हैं। 'पुण्यास्रवकथाकोश' की भाषा—टीका के पश्चात् उन्होंने इस काव्य की रचना की थी। यह एक प्रबन्ध काव्य हैं जिसमें महाराजा श्रेणिक का जीवन चरित निबद्ध है इसमें ५०१ छन्द हैं तथा बिना किसी सर्ग अथवा अध्याय-भेद के कवि ने एक ही प्रवाह में श्रेणिक की जीवन-कथा को छन्दोबद्ध किया है। कवि की यह रचना अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी; क्योंकि अभी तक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों में इसकी केवल दो ही पाण्डुलिपियां मिली हैं—

१. एक पाण्डुलिपि भरतपुर के पंचायती मन्दिर में हैं, जिसकी पत्र सं० २५६, तथा लेखनकाल संवत् १८८८ है।

२. दूसरी पाण्डुलिपि 'यशःकीर्ति सरस्वती भवन, ऋषभ देव' में सग्रहीत है। इसमें ४६ पत्र हैं तथा लेखनकाल संवत् १८०७ कार्तिक सुदी ८ है।

प्रस्तुत परिचय दूसरी पाण्डुलिपि के आधार पर है। पर यह पाण्डुलिपि भी अशुद्ध लिखी हुई है तथा उसकी लिपि भी अच्छी नहीं हैं।

कवि ने 'श्रेणिक चरित' की रचना संवत् १७८२ चैत्र शुक्ला ५ के दिन पूर्ण की थी। इस दिन चन्द्रवार था।

संमत सतरेसै बीआसी औ चैत्र सुकल तिथि जान।
पंचमी दिने पूरण करी, बार चन्द्र पहचान॥५०१॥

चरित की भाषा हिन्दी है। इसमें कवि का काव्य कला की ओर अधिक ध्यान न होकर काव्य के नायक की कथा का वर्णन करने का रहा हैं।

इक दिन भूप गयो वन मांही, मारग जती जसोधर पांही।
आतापन तप तपीये कोही देखी श्रेणिक इम कही ।।६२।।
मुनि पे कुक्कर दीयें छुडाय, तव उन दीन दक्षणा जाय ।।६३।।
नमस्कार करी बैठे स्नान, भूपती लखी रांणी गुर जांन ।।६४।।
मरत साप मुनि गल धरो, नरक सातमी को वंध पड़ो।
चौथे दिरा रेनकी वार, कही भूप राणी सव छार ।।६५।।

कवि यह काव्य रावचन्द्र के काव्यानुसार लिखा है, ऐसा उन्होंने ग्रन्थ की प्रसारित में उल्लेख किया हैं।

सिवानन्द मुनि राम सीष्यो, रामचन्द्र रिषी नाम।
तिन अनुसार वनाय के, रची सो दौलतराम ।।५००।।

६ श्रीपाल चरित :

'श्रीपालचरित' कवि का प्रवन्धकाव्य है जिसमें कोटिभट श्रीपाल का जीवन चरित निवद्ध है। श्रीपाल के जीवन पर जैनाचार्यों ने सभी भाषाओं में काव्य लिखे हैं। हिन्दी में कवि के पूर्व ब्रह्म रायमल ने 'श्रीपाल रास' (सं० १६३०) तथा परिमल कवि ने श्रीपाल चरित (सं० १६५१) की रचनाएं लिखकर काव्य रचना के मार्ग को प्रशस्त कर दिया था। श्रीपाल एवं मैना सुन्दरी का जीवन अत्यधिक लोकप्रिय रहा है और इसी कारण इनके जीवन पर विविध रचनाएं उपलब्ध होती हैं।

महाकवि दौलतराम ने श्रीपाल के जीवन की कथा की लोकप्रियता को देखकर ही संवत् १८२२ फागुण सुदी ११ को चरित काव्य के रूप में उसे छन्दोवद्ध किया। कवि ने इस काव्य को सोमसेन भट्टारक के श्रीपाल चरित के आधार पर वनाया है; जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने इस प्रकार किया है—

संवत् अष्टादस तसु जांन, ऊपर वीस दोय फिर आन।
फागुण सुद इग्यार निस मांहि, कियो समापत उर हुलसाय ।।७५४।।
सोमसेन अनुसार ले, दौलतराम सुखदाय।
एह भाषा पूरन करी, सकल संघ सुखदाय ।।७५५।।

श्रीपाल चरित सतसई के रूप में है; जिसमें ७५५ दोहा चौपई हैं। कवि ने इस काव्य में भी कथा का धारावाहिक ही वर्णन किया है। बीच २ में सर्ग एवं अध्यायों में उसे विभक्त नहीं किया। काव्य की भाषा सीधी एवं सरल है। कवि ने उसमें काव्यत्व लाने का संभवतः कोई प्रयास नहीं किया फिर भी रचना में काव्यत्व स्थान २ पर उपलब्ध होता है।

सुनि श्रीपाल निसंकित होय, मन मांही इम चिंतित सोय।
देखे कहा कर्म करेय, मोनधारी तिनमें संचरेय ।।१८४।।
इनकू पट भूषण पहराय, कियो तिलक पूजे इन पाय।
फेरि चले मारन के काज, ल्याए जिहाज पासी सेठराज ।।१८५।।
कोटी भट अर रूप अपार, फिरि फहरे पट भूषण सार।
सीस तिलक सोभे इमराय, मानू जस लछमी वर आय ।।१८६।।

इस प्रकार समूचा ही काव्य सरल भाषा में निवद्ध है। काव्य की वर्णन शैली एवं भाषा दोनों ही उत्तम हैं।

'श्रीपाल चरित' में भाग्य एवं पुरुषार्थ की लड़ाई में भाग्य की विजय हुई है। श्रीपाल की रानी मैना सुन्दरी भाग्य पर प्रबल विश्वास रखती थी; जबकि उसका पिता पुरुषार्थ का समर्थक था। भाग्य को नीचा दिखाने के लिए उसने अपनी सुन्दर एवं यौवनपूर्णा पुत्री 'मैना' का विवाह एक कोढ़ी राजा के साथ कर दिया। पर भाग्य से उसका कुष्ठ रोग दूर होगया और उसे पति के रूप में कोटिभट राजा प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् भी श्रीपाल के जीवन में कितनी ही विपत्तियां आयीं; लेकिन उन सभी विपत्तियों में वह स्वर्ण के समान तप करके निकला। उसे अपना राज्य एवं अन्य सभी सम्पदाएं यथावत् मिल गयीं। लेकिन कुछ समय वाद श्रीपाल को संसार से उदासीनता हो गई और उसने सपरिवार वैराग्यमय तपःसाधना करके निर्वाण को प्राप्त किया।

७ चौवीस दण्डक भाषा :

यह महाकवि की लघु कृति[1] है। इसमें ५७ दोहा एवं चौपई छन्द हैं। प्रस्तुत कृति में एक गति वाला जीव अन्य किस किस गति में जा सकता है—

---

[1] महावीर भवन, जयपुर के संग्रह में वेष्टन सं० १६६६ के गुटके में संग्रहीत।

इसका वर्णन किया गया है। कवि ने अपने वर्ण्य-विषय को निम्नप्रकार प्रस्तुत किया है—

पहलौ दंडक नारक तनौ, भवनपति दस दंडक भनौ।
जौतिग विंतर सुरग निवास, थावर पंच महादुखरास ॥७॥

विकलत्रय अरु नर तिरजंच, पंचेंद्री धारक परपंच।
एहे चौवीसौ दंडक कहे, अब सुनि इनमैं भेद जु लहै॥

'तीर्थंकर' के माता-पिता मर कर किस गति में जाते हैं इसका कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

तीर्थंकर के पिता प्रसिद्ध, सुरग जाय कै होहै सिद्ध।
माता सुरग लोक ही जाइ, आखरि सिवपुर वेग लहाय॥

कवि ने पहिले सात नरकों में पैदा होने वाले जीवों का, फिर स्वर्गगति में जाने वाले देवों का, इसके पश्चात् पशु गति और फिर मनुष्य गति में उत्पन्न होने वाला जीव कम से कम किस गति में एवं अधिक से अधिक किस गति में (नरक, स्वर्ग एवं मोक्ष) जा सकता है—इसका वर्णन किया गया है—

ए चौवीसौं दंडक कहै, इनकु त्यागि परम पद लहे।
इनमैं रुलै सजग कौ जीव, इनतैं रहै तसु त्रिभुवन पीव ॥५२॥

कवि ने इस कृति के रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल अन्त में अपना नामोल्लेख करके ही कृति को समाप्त कर दिया है—

अंतैकरन जो सुधि होय, जिन धरमी अभिराम।
थोरी बुद्धिप्रकास तैं, भाषी दौलतराम॥

८ सिद्ध पूजाष्टक :

यह कवि की पूजा विषयक कृति है; जिसमें सिद्ध परमेष्ठियों की पूजा लिखी गयी है। इसमें १२ पद्य हैं। यह पूजाष्टक बिना आह्वानन के है तथा प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् जल चढ़ाने का पद्य है, इसी तरह अन्त में अर्घ के पश्चात् जयमाला नहीं दी गयी है। अन्तिम दो पद्य

---

१. महावीर भवन, जयपुर के संग्रह में गुटका। सं० १०८१ वे. सं. १५५० में संग्रहीत।

निम्न प्रकार है—

> अरघ करौ उछाह सौं, नमौं आठौं अंग निवाय ।
> आनन्द दौलतराम कौ, प्रभु भौ भौ होइ सहाय ।।११।।
>
> च्यार ग्यान धर नहि देखै, हम देखै सरधावंत ।
> जांनै मांनै अनुभवै, तुम राखौ पास महंत ।। अर्धम् ।।

९ पुण्यास्त्रव कथाकोश :

कथाओं के माध्यम से जन सामान्य में नैतिकता एवं सदाचार को प्रोत्साहन देना देश की प्राचीन परम्परा रही है । इस दृष्टि से लिखा हुआ कथा–सहित्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि सभी भाषाओं में मिलता है । जैनाचार्यों ने अपने कथा साहित्य में नैतिकता एवं सदाचार के प्रयास को सर्वाधिक प्रमुखता दी और देश की प्राय: सभी भाषाओं में विशाल कथा साहित्य का निर्माण किया । पुण्यास्त्रव कथाकोश, व्रतकथाकोश, आराधना कथाकोश, कथाकोश आदि नामों से उन्होंने सैंकडों कथाएं लिखी और बालकों, युवकों एवं पाठकों में स्वाध्याय के प्रति गहरी रूचि पैदा की तथा बुराइयों से बचते हुये शिष्ट जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी ।

'पुण्यास्त्रव कथाकोश' को सर्व प्रथम मुमुक्षु रामचन्द्र ने संस्कृत भाषा में लिखा था । इसकी कथाएं जैन समाज में काफी लोकप्रिय है । कविवर दौलतराम ने इन्हीं कथाओं को हिन्दी भाषा में निबद्ध करके हिन्दी भाषा भाषी पाठकों के लिए एक महान् अवसर उपस्थित किया । कथाकोश में ५६ कथाएं हैं । मुमुक्षु रामचन्द्र के कथाकोश की प्रशंसा कवि ने निम्न प्रकार है—

> पुण्यास्त्रव की कथा रसाल, पूजादिक अधिकार विसाल ।
> षट् अधिकार परम उतकिष्ट, छप्पन कथा मध्य है मिष्ट ।।१।।
>
> आदिपुराणादिक जे कह्या, अभिप्राय तसु यामै लह्या ।
> आचारिज जिम करि अभिलाष, लिखी कथा संस्कृत भाष ।।२।।
>
> × × ×
>
> रामचन्द्र मुनि अति परवीन, कथा कोश पुण्यास्त्रव कीन ।
> तिनकी कहा बडाई करौ, वंदन करि निज उर में धरौ ।।१०।।

दौलतराम युवावस्था में पदार्पण करते ही किसी कार्य वश जब आगरा गये, तब उन्होंने वहां पुण्यास्त्रव कथाकोश सुना। सुनकर उन्हें अत्यधिक आनन्द आया और अत्यधिक रुचि के साथ उन्होंने इसकी भाषा टीका लिखी। काव्य-रचना में पांव रखने का उनका यह प्रथम अवसर था। इसलिए उन्होंने अत्यधिक ध्यान पूर्वक इसकी भाषा टीका लिखी और संवत् १७७७ भादवा सुदी पंचमी शुक्रवार के शुभ मुहूर्त में उन्होंने इसे पूर्ण करके हिन्दी भाषा भाषी पाठकों को भेंट किया।

संवत् सत्रहसै विख्यात, ता परि धरि सत्तरि अरु सात।
भादव मास कृष्ण पक्ष जांनि, तिथि पांचै परवो परवांनि ।।२८।।

रवि सुत कौ पहिलौ दिन जोय, अर सुर गुरु के पीछे होय।
बारैह गनि लीज्यो सही, ता दिन समापत लहौ ।।२९।।

रचना का प्रमुख कारण :

कवि के आगरा जाने पर उन्हें वहां संचालित अध्यात्म शैली में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस शैली के जिन प्रमुख सदस्यों के नाम दौलतराम ने गिनाये हैं; उसमें सर्व प्रथम कविवर भूधरदास का उल्लेख आता है, जिनके लिए लिखा गया है कि वे स्याहगंज में रहते थे तथा जो जिन स्मरण एवं पूजन में लगे रहते थे और अपने अशुभ कर्मों को नष्ट किया करते थे। ये कवि भूधरदास वे ही है जिन्होंने संवत् १७८९ में आगरा में 'पार्श्वपुराण' की रचना की थी और जिन्होंने अपने आपका "आगरे में बाल बुद्धि भूधर खण्डेलवाल" पंक्तियों से परिचय दिया था। इनके अतिरिक्त सदानन्द, अमरपाल, बिहारीलाल, फतेचन्द, चतुर्भुज आदि उस शैली के प्रमुख सदस्य थे, जो वहां आकर परस्पर चरचा किया करते थे।

भूधरदास जिनधर्मी ठीक, रहै स्याहगंज मैं तहकीक।
जिन सुमरिन पूजा परवीन, दिन प्रति करै असुभ कौ छीन ।।१५।।

हेमराज साधर्मी भलै, जिन वच मांनि असुभ दल मलै।
अध्यातम चरचा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै ।।१६।।

सदानन्द है आनन्द मई, जिन मत की आज्ञा तिह लही।
अमरपाल भी यामै लिख्यो, परमागम को रस तिन चख्यो ।।१७।।

लाल विहारी हूँ नित सुनै, जिन आगम कौ नीकै मुनै ।
फतेचंद है रोचक जीके, चरचा करै हरष धरि जीकैं ॥१८॥

चत्रभुज साधरमी जोर, धुकी भकति जसु प्रभु की वोर ।
मिलै आगरै कारन पाय, चरचा करै परस्पर आय ॥१९॥

दौलतराम को मुख्य प्रेरणा ऋषभदास से प्राप्त हुई थी और उनके उपदेशों से धर्म के प्रति श्रद्धा एवं साहित्य निर्माण के प्रति रूचि पैदा हुई थी ।

रिषभदास उपदेस सौ, हमैं भई परतीति ।
मिथ्यातम को त्यागि कै, लगी धर्म सौं प्रीति ॥२१॥

पुण्यास्त्रव कथाकोश में जिन कथाओं का वर्णन है, जो सभी मुमुक्षु रामचन्द्र के पुण्यास्त्रव, कथाकोश के आधार पर है । सभी कथाओं को सरस एवं रोचक शैली में लिखा गया है । कथाओं की तालिका निम्न प्रकार है:—

१. जिनपूजाव्रतकथा, २. महाराक्षस विद्याधर कथा, ३. मेंढ़क की कथा, ४. भरत कथा, ५. रत्नशेखर चक्रवर्ती कथा, ६. करकण्डु कथा, ७. वज्रदन्त चक्रवर्ती कथा, ८. श्रेणिक कथा, ९. पंच नमस्कार मंत्र कथा, १०. महावली कथा, ११. भामण्डल कथा, १२. यजराजा की कथा, १३. सुकुमाल मुनि कथा, १४. भीम केवली कथा, १५. चाण्डाल कूकरी कथा, १६. सुकौशल मुनि कथा, १७. कुवेरू प्रियाश्रेष्ठी कथा, १८. मेघकुमार कथा, १९. सीता जी की कथा, २०. रानी प्रभावती कथा २१. राजा वज्रकरण कथा, २२. वाई नीली कथा, २३. चाण्डाल कथा, २४. नागकुमार कथा, २५. भविष्यदत्त कथा, २६. अशोक रोहिणी कथा, २७. नन्दिमित्र कथा, २८. जामवन्ती कथा, २९. ललितघण्टा कथा, ३०. अर्जुन चाण्डाल कथा, ३१. दान कथा (महाराज श्रेणिक सम्वन्धी), ३२. जयकुमार सुलोचना कथा, ३३. वज्रजंघ कथा, ३४. सुकेत श्रेष्ठी कथा, ३५ सागर चक्रवर्ती कथा, ३६. नलनील कथा, ३७. लवकुश कथा, ३८. दशरथ कथा, ३९. भामण्डल कथा, ४०. सुषीमा कथा, ४१. गंधारी कथा, ४२. गौरी कथा, ४३. पद्मावती कथा, ४४. धन्यकुमार कथा, ४५. अंग नीला ब्राह्मण कथा, ४६. पात्र केसरी कथा, ४७. अकलंक देव कथा, ४८ समन्तभद्र कथा, ४९. संतकुमार चक्रवर्ती कथा, ५०. संजय

मुनि कथा, ५१. मधुपिंगल कथा, ५२. नागव्रत कथा, ५३. ब्राह्मण चक्रवर्ती कथा, ५४. अंजन चोर कथा, ५५. अनन्तमती कथा, ५६. उदयन कथा, ५७. रेवती रानी कथा, ५८. सेठ सुदर्शन कथा, ५९. वारिषेण मुनि कथा, ६०. विष्णुकुमार मुनि कथा, ६१. वज्रकुमार कथा, ६२. प्रीतिंकर कथा, ६३. सत्यभामा पूर्वभव कथा, ६४. श्रीपाल चरित्र कथा, ६५. जम्बू स्वामी कथा।

उक्त ५६ कथाओं के अतिरिक्त ९ लघु कथाएं प्रमुख कथाओं में आ गयी हैं जिससे उनकी संख्या ६५ हो गयी हैं। इस प्रकार पुण्यास्रव कथाकोश—कथाओं का वास्तव में कोश ग्रन्थ है। जिनसे जीवन निर्माण की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक कथा कहने का मुख्य उद्देश्य कथा नायक के जीवन का वर्णन करने के अतिरिक्त नैतिकता, सदाचार और अच्छे कार्यों को करने की परम्परा को जन्म देना है। साथ ही ये कथाएं कर्म सिद्धान्त का भी मुख्य रूप से प्रतिपादन करती हैं। जैसा हम करेंगे—उसी के अनुसार हमें परिणाम भुगतना पड़ेगा। इन सभी कथाओं के नायक भारतीय संस्कृति के महापुरुष हैं और इन्हीं महापुरुषों की जीवन गाथा से ये कथाएं अधिक निखर पड़ी हैं। कुछ कथाएं ऐसी भी हैं, जिन पर कितने ही काव्य, चरित एवं रास लिखे गये हैं और उन्हीं को कवि ने संक्षिप्त रूप में इस कृति में प्रस्तुत किया है। ऐसी कथाओं में—नागकुमार, भविष्यदत्त, श्रेणिक, जयकुमार सुलोचना, धन्यकुमार, प्रीतिंकर, श्रीपाल एवं जम्बूस्वामी की कथाओं के नाम लिये जा सकते हैं।

लोकप्रियता

पुण्यास्रव कथाकोश समस्त जैन समाज में अत्यधिक प्रिय कृति के रूप में समादृत है। ऐसा कोई शास्त्र भण्डार नहीं जिसमें इस कथाकोश की दो चार प्रतियां नहीं मिलती हो। स्वाध्याय प्रेमियों के लिए इस कथाकोश का स्वाध्याय आवश्यक माना जाता है। हिन्दी में इससे पूर्व इतनी बड़ी कृति किसी भी विद्वान् के द्वारा नहीं लिखी गयी थी। इसलिए देश के अहिन्दी भाषा भाषी प्रदेशों में भी इस कथाकोश का स्वाध्याय करने के लिए सैकड़ों हजारों व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी। कवि की इस कृति का चारों ओर जोरदार स्वागत हुआ और देश के कोने-कोने में इसका स्वाध्याय होने लगा। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में इसकी एक प्रति संवत् १७८८ मंगसिर बुदी १३ रविवार के दिन की लिखी हुई है। जिसकी प्रतिलिपि अहमदाबाद में हुई थी। इस पाण्डुलिपि से स्पष्ट है कि गुजरात में भी इसकी प्रतियां लिखी जाती थी और उनको अन्यत्र भेजा जाता था।

भाषा :

कवि द्वारा पुण्यास्रव कथाकोश की रचना करीब २५० वर्ष पूर्व आगरा में की गयी थी। उस समय आगरा जिला ब्रज भाषा का केन्द्र था लेकिन वहां खड़ी बोली का प्रचलन एवं लेखन भी प्रारम्भ हो गया था। इस कथा कोश की भाषा खड़ी बोली के अधिक निकट है। यहां इस कथाकोश में से चार उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे पाठकगण इस कृति की भाषा का अच्छी तरह पता लगा सकेंगे।

एक दिन राजा सिकार जाय छौ। राह में आताप नाम जोग धरयां जिसोधर मुनिराज देख्या। कोप करि राणी का गुर जाणि कुकरा छोड्या। वै स्थान नमस्कार करि जाय बैठ्या। जब देखि मुनि का गला मै मुवो सांप नाख्यो तीहीं विरियां सातवां नरक की आय बांधी। चौथे दिन राति नै रांणी नै कहीं। तब चेलना कही महा पाप कीयौ। आतमां नै नरक में बोयौ। या कहि महा दुःख कीयौ। राजा कहीं रांणी वै कांई दूरि करिवा सकै न छै चेलणां कही महामुनि मौन करै। अर यौ वे करै तौ ये मुनि नहीं। पत्र सं० २१

× × ×

नागकुमार जी पंचमी कौ उपवास लीयौ। अर विधि पूछी सो साधक कहे छै। फागुण कै महीनै तथा आषाढ़ काती कै महीनै सुदी ४ नै पवित्र होय पूजाकरि शास्त्र सुणि। साधु नै विधिपूर्वक आहार के पाछै आप एकाभुक्त कीजै। ठामि भात पाणि ले सकल संसारी धन्धो छोडि धरम कथा करि दिन पूरो कीजै। रात्रि जागरण कीज्ये। प्रभु का चरणां चित लगाजै। पाछै उपवास कै दिन च्यार प्रकार आहार कषाय कौ त्याग करि विषय स्यौं पाइ सुख होय। पत्र सं० ६५

× × ×

जंबूद्वीप पूर्व विदेह पुष्कालवती देस। पुंडरीकणी नगरी विषै राजा वसुपाल श्रीपाल। तिह नगरी बाहरी सिवंकर उद्यान विषै भीम केवली कौ समोसरण आयौ। तैठै खचरवती सुभगा रतिसेना सुसीमा ए चारि वितरी आप केवली नै पूछती हुई। हे प्रभु म्हां की पति कौण हवेसी।

पत्र सं० ११८

× × ×

"मालव देस उजेणी नगरी विषैं राजा अपराजित रांणी विजयां त्यांकै विनयश्री नाम पुत्री हुई। हस्तिशीर्षपुर कै राजा हरिषेण परणीं। एक दिन दंपति वरदत्त मुनि नैं आहारदान देता हूवा। पाछै वहुत कालतांइ राज्य कीयौ। एक रात सज्याग्रह विषै विनयश्री पति सहित सूती थी। अगर का धूप का धूम करि राजा रांणी मृत्यु प्राप्ति हूवा। मध्य भोगभूमि विषैं उपज्या। तहां सौ विनयश्री कौ जीव चंद्रमा कै देवी हुई।" पत्र सं० १५७

इन उदाहरणों को पढ़ने से ज्ञात होगा कि कवि की भाषा कितनी निखरी हुई है। यद्यपि कवि के राजस्थान निवासी होने से इस पर ढूंढारी भाषा का भी कुछ प्रभाव है तथा कहीं-कहीं ब्रज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है लेकिन फिर भी कथाकोश को हम खड़ी बोली की ही कृति कहेंगे। इसमें विभिन्न नामों का पूर्णतः शुद्ध रूप में व्यवहार किया गया है। इनका तद्भव रूपान्तर नहीं किया गया है। ऐसे सभी शब्द तत्सम हैं—वर्द्धमान स्वामी, वारिषेण, चम्पापुरी, भरतक्षेत्र, रामदत्ता जम्बूद्वीप मान्यखेट, पात्रकेसरी, अकलंक, निःकलंक। भाषा टीका में 'में" के स्थान पर "विषैं" शब्द का प्रयोग हुआ है। ज्यांकै (१३५) उतरचा (१३४) देवालागो (१३३)। लेकिन निम्न उद्धारणों से ज्ञात होगा कि कवि ने कथा कोश को कितनी परिष्कृत भाषा में निबद्ध किया था।

(क) "पीतकर जी स्त्री सहित नाव में वैठा तव क्यौं वस्तु भूलि आया था। सो वै कलेवा निमित्त नगर में आया तव नागदत्त पापी जिहाज चलाय दीनी।"
पृ० सं० २०७

(ख) एक दिन रात्रिवंत सिद्धकूट चैताले वंदवानैं गयो थो सो हरिचन्द मुनिकनैं धर्म श्रवण करि दिगम्बर हुवो। सो एक दिन वन विषै गुफा में कायोत्सर्ग तिष्टै थो। दुर्धर तप करि अत्यन्त खीण सरीर देख्यो॥
पृ० सं० १६०

(ग) "अर सातसैं अंग रक्षक जो कोढ़ पीडित छा सो निरोग हुआ। अहो सिद्धचक्र की पूजा करिवा थकी उत्कृष्ट फल नैं कल्पवृक्ष की वेलि की नांई ई भव में दे छै।"
पृ० सं० २१७

अभी तक 'पुण्यास्रव कथाकोश का' भाषा की दृष्टि से अध्ययन नहीं हुआ है जिसकी अत्यधिक आवश्यकता है। हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास में इस कृति का पर्याप्त महत्व है। दि० जैन साहित्य में इससे पूर्व इतनी

बड़ी भाषा टीका किसी विद्वान् द्वारा नहीं लिखी गई थी। इसलिए कवि के इस प्रथम प्रयास का सब ओर से मर्मस्पर्शी स्वागत हुआ और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इसका स्वाध्याय होने लगा। यहां तक यह ग्रन्थ गुजरात एवं महाराष्ट्र में भी लोकप्रिय बन गया। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र-भण्डार में इसकी एक प्रति संवत् १७८८ मंगसिर सुदी १३ रविवार के दिन की लिखी हुई है, जिसकी प्रतिलिपि अहमदाबाद में हुई थी। इसलिए इस ग्रन्थ की भाषा ऐसी है जो तत्कालीन ·माज में अत्यधिक लोकप्रिय रही।

१० पद्म पुराण :

पुण्यास्रव कथा कोश की रचना के पश्चात् कवि की यह दूसरी विशाल गद्य कृति है; जिसने अपने युग में तुलसीदास की रामायण के समान समाज में जैन रामायण के रूप में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी। इसका घर-घर एवं मन्दिर-मन्दिर में स्वाध्याय होने लगा था और जिसकी लोकप्रियता ने उस समय के सभी रिकार्ड तोड़ दिये थे। जयपुर आने के पश्चात् कवि ने इसकी रचना कब से प्रारम्भ की इसका तो इसमें कोई उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन इसकी रचना समाप्ति काल सं. १८२३ है। उस समय महा पं० टोडरमल की गद्यात्मक कृतियों की ख्याति उच्च स्तर तक पहुंच चुकी थी तथा जनता की इच्छा भी पद्यात्मक कृति की अपेक्षा गद्यात्मक कृति को अधिक मनोयोग से पढ़ने की थी। इसलिए दौलराम ने भी गद्यात्मक कृतियों की ओर विशेष ध्यान दिया।

'पद्म पुराण' कवि की मूल कृति नहीं है। किन्तु १०-११वीं शताब्दी के महाकवि रविषेणाचार्य की संस्कृत कृति का हिन्दी भाषानुवाद है। लेकिन कवि का लेखन शैली एवं भाषा पर पूर्ण अधिकार होने से यह मानों उसकी स्वयं की मूल रचना के समान लगती है। इसमें १२३ पर्व हैं जिनमें जैन धर्म के अनुसार "रामकथा" का विस्तार से वर्णन हुआ है। भगवान महावीर के समवसरण में जाने के पश्चात् राजा श्रेणिक राम कथा को सुनने की इच्छा करते हैं और तब भगवान महावीर रामकथा पर विशद व्याख्यान करते हैं। राम कथा के साथ में राक्षस वंशी एवं वानर वंशी विद्याधरों का, रावण का जन्म, अंजना सुन्दरी और पवनंजय का विवाह वर्णन, हनुमान जन्म कथा, रावण को चक्र प्राप्ति एवं राज्याभिषेक और इसके पश्चात् रामकथा की पुनः वर्णन किया गया है। जिसमें राम-लक्ष्मण को ऋद्धि-प्राप्त, राम को लोकापवाद की चिन्ता, सीता का वन में विलाप, सीता को लव-कुश की

प्राप्ति, एवं उनका लक्ष्मण के साथ युद्ध, सीता की अग्नि परीक्षा आदि विविध वर्णनों के पश्चात् राम निर्वाण प्राप्त करते हैं और इस प्रकार अत्यधिक सुन्दर ढंग से तथा भक्ति पूर्वक राम कथा की समाप्ति होती है। इस कथा के प्रारम्भ में कवि ने निम्न शब्दों में राम के जीवन की प्रशंसा की है—

'कैसे हैं श्रीराम, लक्ष्मी कर अलिंगित है हृदय जिनका और प्रफुल्लित है मुख रूपी कमल जिनका, महापुण्याधिकारी हैं, महाबुद्धिमान हैं गुणन के मन्दिर और उदार हैं चरित्र जिनका, केवल ज्ञान के ही गम्य है।"

महाकवि दौलतराम ने "पद्म पुराण" को हिन्दी गद्य में लिख कर के स्वाध्याय प्रेमियों के लिए महान् अवसर प्रदान किया। यही नहीं हिन्दी के पाठकों को गद्य में राम कथा देकर एक नवीन परम्परा को जन्म दिया। अब तक जितनी भी रामायण लिखी गयी थीं वे सब पद्य में ही थीं। महाकवि विमलसूरि ने प्राकृत में, महाकवि स्वयंभू ने अपभ्रंश में, महाकवि वाल्मीकि ने संस्कृत में, रविषेणाचार्य ने संस्कृत में जो रामकथाएं लिखी, वे सब पद्य में ही थी; लेकिन दौलतराम ने इसे गद्य में निबद्ध कर उसकी लोकप्रियता में वृद्धि की तथा उसे जैन समाज के घर-घर में पढ़ी जाने वाली कथा बना दी।

"पद्म पुराण" की भाषा खड़ी बोली के रूप में है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसे ढूंढारी भाषा के रूप में स्वीकार किया है लेकिन वास्तव में कवि ने ब्रजभाषा प्रभावित खड़ी बोली के रूप में इसे प्रस्तुत किया है। जो अत्यधिक मनोरम एवं हृदयग्राही बन गई है। कहीं तो इसकी भाषा इतनी आलंकारिक बन पड़ी है, मानों वह हिन्दी की कादम्बरी हो। कवि ने इसे विभिन्न उपमानों से संवारा है।

"पद्म पुराण" की रचना में साधर्मी भाई रायमल्ल का अनुरोध विशेष रूप से उल्लेखनीय है; जिसका स्वयं कवि ने निम्न प्रकार से उल्लेख किया है—

रायमल साधर्मी एक, जाके घर में स्वपर विवेक।
दयावंत गुणवंत सुजान, पर उपकारी परम निधान॥
दौलतराम सु ताको मित्र, तासों भाख्यो वचन पवित्र।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ, तामें लोक शिखर को पंथ॥
भाषा रूप होय जो येह, बहुजन वांच करैं अति नेह।
ताके वचन हिये में धार, भाषा कीनी मति अनुसार॥

११. आदिपुराण :

'आदि पुराण' संस्कृत में आचार्य जिनसेन की रचना है। काव्य, भाषा एवं वर्णन की दृष्टि से यह रचना संस्कृत भाषा की अनूठी कृति है। इसमें ४७ पर्व हैं तथा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र सम्राट भरत तथा महायोगी बाहुबलि आदि का जीवन विस्तृत रूप से वर्णित है। जैन समाज का यह एक अत्यधिक प्रिय ग्रन्थ है; जिसका स्वाध्याय करना प्रत्येक श्रावक एवं श्राविक के लिए आवश्यक माना है। त्रेसठ शलाका महापुरुषों का जीवन जानने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कृति है। ऐसे पुराण की भाषा टीका का कार्य महाकवि दौलतराम ने अपने हाथ में लेकर हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए महान् उपकार का कार्य किया। कवि ने जब संस्कृत में रचित आदि-पुराण का स्वाध्याय एवं प्रवचन किया तो सभी श्रोताओं ने विशेषतः दीवान रतनचन्द ने उनसे इस पुराण की भाषा-टीका करने का अनुरोध किया। कुछ अन्य श्रोताओं एवं स्वाध्याय प्रेमियों ने भी इसके लिए आग्रह किया। उस समय जयपुर में स्वाध्याय का अत्यधिक प्रभाव था। महाविद्वान टोडरमल का प्रभाव चरमोत्कर्ष पर था। इसलिए कवि को तत्कालीन स्वाध्याय प्रेमियों के आग्रह को मानना ही पड़ा और उन्होंने इसकी भाषा-टीका प्रारम्भ करदी। संवत् १८२३ में पद्मपुराण की रचना के ठीक ७ मास पश्चात् ही उन्होंने यह एक और विशाल गद्य कृति पूर्ण की।

> अठारह सै सम्वता ता ऊपर चौवीस।
> कृष्ण पक्ष आसोज कौ पुष्य नक्षत्र वरीश।
> शुक्रवार एदादशी पूरण भयो ये ग्रंथ।।

इस ग्रन्थ के निर्माण की प्रेरणा में पं० टोडरमल के दोनों पुत्र हरिचन्द एवं गुमानीराम तथा देवीदास गोधा का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। कवि ने भाषा टीका के प्रारम्भ में अपनी जिस रूप में लघुता प्रगट की है। वह उल्लेखनीय है।

> ता परि भाषा वचनिका, भाषूं मैं मति मन्द।
> लेहु सुधारि सुपंडिता, ज्ञान रूप निर्द्वन्द।।
> महिमा महापुराण की, मो पै कही न जाय।
> जानें श्री जिन केवली, तीन भुवन के राय।
> निज मति माफिक कछू मैं, भाषूं भाषा रूप।
> सुनहु भव्यजन भावधरि, भजहु भजहु जिन रूप।।

आदि पुराण विशाल काव्य ग्रन्थ है लेकिन कवि ने भाषा टीका की एक ही शैली को अपनाया है। आचार्य जिनसेन के क्लिष्ट शब्दों का अर्थ जितने सरल, बोधगम्य शब्दों में किया है; वह कवि के संस्कृत एवं हिन्दी के अगाध ज्ञान का द्योतक है। पुराण की सरस शैली होने के कारण इसका शीघ्र ही सारे देश में प्रचार हो गया और सैंकड़ों स्वाध्याय प्रेमियों ने इस ग्रन्थ के स्वाध्याय करने के लिए ही हिन्दी भाषा सीखी।

१२ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय :

यह आचार्य अमृतचन्द्र की कृति है जो संस्कृत भाषा में निबद्ध है। यह ग्रन्थ लघुकाय होने पर भी गागर में सागर का कार्य करता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने इसमें जैन धर्म की तात्विक गम्भीरता का वर्णन किया है। जो उनके महापाण्डित्य का दिग्दर्शन कराता है। इसकी हिन्दी टीका जयपुर के ही महापण्डित टोडरमल ने प्रारम्भ की थी, जो महाकवि दौलतराम के समकालीन विद्वान थे। लेकिन उनका असमय में ही स्वर्गवास होने के कारण वे इसे पूरी नहीं कर पाये। तब तत्कालीन जयपुर समाज के प्रमुख दीवान रतनचन्द्र ने दौलतराम से उसे पूर्ण करने का अनुरोध किया। दौलतराम ने संवत १८२७ में मंगसिर सुदी २ के पावन दिन इस ग्रन्थ की भाषा टीका पूर्ण की—

तांसु रतन दीवान ने, कही प्रीत कर एह
करिये टीका पूरण; उरधर धर्म सनेह।
तब टीका पूरण करी, भाषा रूप निधान।
कुशल होय चहु संघ को, लहे जीव निज ज्ञान।
सुखी होय राजा प्रजा, होय धर्म की वृद्धि।
मिटै दौष दुख जगत के, पावे भविजन सिद्धि।
अट्ठारहसै ऊपरे संवत सत्ताईस मास
मार्गशिर ऋतु शिशिर दोयज रजनीश ।।

इसके पहले कवि ने पं० टोडरमल्ल के नाम का उल्लेख किया है। जिन्होंने उक्त टीका का प्रारम्भ किया था और उसका कितना भाग शेष रह गया था, इसका भी उल्लेख किया है—

अमृतचन्द्र मुनीन्द्रकृत ग्रंथ श्रावकाचार,
अध्यात्म रूपी महा आर्या छन्द जु सार।
पुरुषारथ की सिद्धि को जामै परम उपाय।
जाहि सुनत भव भ्रम मिटै, आतम तत्व लखाय।

भाषा टीका ता ऊपर कीनी टोडरमल्ल
मुनिवर कृत बाकी रही ताके माहि अचल्ल।
ये तो परभव कूं गये जयपुर नगर मझार।
सब साधर्मी तव कियो मन मैं यह विचार।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में २२८ श्लोक हैं। इनमें अहिंसा धर्म पर विशेष जोर दिया है। इसके अतिरिक्त पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत के वर्णन के अतिरिक्त रात्रि भोजन का जबरदस्त निषेध किया गया है।

महाकवि दौलतराम ने ग्रन्थ के उत्तर भाग की भाषा टीका लिखी ! तथा अत्यधिक सरल शब्दों में उसे प्रस्तुत किया।

"विवेकी पुरुष जो हैं जो गृहस्थ अवस्था में भी संसार से विरक्त होकर सदा ही मोक्ष मार्ग में उद्यमी रहते हैं और वे ही अवसर पाकर शीघ्र ही मुनि पद को धारण करके सकल परिग्रह को त्याग कर निर्विकल्प ध्यान में आरूढ़ होकर पूर्ण रत्नत्रय को मानकर संसार के भ्रमण का उच्छेद कर शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति करते हैं"

महापंडित टोडरमल की भाषा ब्रज भाषा को लिए हुए हैं, जब कि दौलतराम की भाषा खडी बोली का रूप लिए हुए है। संस्कृत के दुरूह शब्दों को भी उन्होंने सरल हिन्दी शब्दों में समझा दिया है। कवि ने पहिले श्लोकों की टीका, विषय का स्पष्टीकरण के लिए अर्थ तथा फिर भावार्थ दिया है।

१३. हरिवंश पुराण :

हरिवंश पुराण 'पद्मपुराण' की राम कथा के समान ही कृष्ण कथा है; जिसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन–चरित के वर्णन के प्रसंग में पूरे महाभारत के पात्रों के जीवन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। जैनाचार्यों द्वारा पद्मपुराण के समान अपभ्रंश में स्वयंभू का रिट्ठणेमिचरिउ तथा संस्कृत में जिनसेनाचार्य का 'हरिवंश पुराण' इस विषय की प्रमुख रचनाएँ है। दौलतराम ने ऐसे विशाल पुराण की हिन्दी गद्य टीका करके हिन्दी की लोक प्रियता में श्रीवृद्धि का एक और प्रयास किया और उसमें वह पूर्णत: सफल भी रहा। 'हरिवंश पुराण' का स्वाध्याय घर–घर होने लगा और अहिन्दी क्षेत्रों में भी उसके स्वाध्याय का प्रचार हो गया। राजस्थान के कितने ही भण्डारों में हरिवंश पुराण की एक से अधिक प्रतियां उपलब्ध होती हैं जो उसके स्वाध्याय के प्रचार को द्योतित करती है।

इस कृति का रचनाकाल संवत् १८२६ चैत्र सुदी पूर्णिमा है। इसकी रचना जयपुर नगर में सम्पन्न हुई थी। यह कवि की अन्तिम कृति है। इसकी रचना की घटना भी बड़ी विचित्र हैं। कवि के परम मित्र भाई रायमल्ल जब मालवा गये, तब उन्होंने वहां की समाज को उनके द्वारा रचित आदिपुराण एवं पद्मपुराण की भाषा-टीका को पढ़कर सुनायी। एक तो भाई रायमल्ल की प्रवचन शैली, दूसरी इन कृतियों की सरसता—दोनों ने वहां के श्रावकगणों को आनन्दित कर दिया। उन्होंने इसे बार-बार सुनने की इच्छा प्रकट की। इसका फल हुआ कि इन दोनों ग्रन्थों का मालवा में. बराबर स्वाध्याय होने लगा। पर श्रावकों की प्यास और भी जागृत हुई। उन्होंने भाई रायमल्ल से पद्मपुराण के समान हरिवंश पुराण की भी भाषा टीका लिखवाने की प्रार्थना की क्योंकि वे श्रावक दौलतराम की विद्वत्ता से परिचित हो चुके थे। भाई रायमल्ल को उनकी बात माननी पड़ी। उन्होंने वहीं से दौलतराम को पत्र लिखा कि हरिवंश पुराण की भी ऐसी भाषा टीका लिखो, जो सब को अच्छी लगे। पत्र लेकर आने वाले साधर्मी भाईयों ने भी महाकवि से भाषा-टीका करने का अनुरोध किया और शीघ्र ही इस महान कार्य को पूरा करने की प्रार्थना की; क्योंकि शरीर का पता नही कि वह कब धोखा दे जावे। वैसे भी दौलतराम उस समय काफ़ी वृद्ध हो चुके थे। जयपुर के तत्कालीन दीवान रतनचन्द और उनके भाई बिरधीचन्द ने भी पंडितजी से आग्रह किया। फिर क्या था—महाकवि इस कार्य में जुट गये। उन्होंने दो शीघ्रलिपि लेखक सीताराम एवं सवाईराम को अपने साथ लिया। और शीघ्र ही संवत् १८२६ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन इस महान ग्रन्थ की भाषा को पूर्ण कर दिया इस ग्रन्थ के समापन के साथ ही मानों कविकी साहित्य—साधना सफल हो गयी। यह उनके जीवन की अन्तिम कृति थी। इसे प्राप्त कर समूचा साहित्यिक जगत निहाल हो गया। १६ हजार श्लोक प्रमाण गद्य कृति लिखना कितनी असाधारण साहित्यिक उपलब्धिथी! इसका अनुमान भी करना आसान कार्य नहीं है।[1]

भयो कौन विधि ग्रन्थ यह, भाषा रूप विशाल।
सो तुम सुनहु महामती, जिन आज्ञा प्रतिपाल ॥१॥
जम्बूद्वीप मंझार यह, भरतक्षेत्र शुभ थान।
ताके आरिज खंड में, मध्य देश परवान ॥२॥

अस्तुत: हरिवंश पुराण हिन्दी भाषा की महान निधि है। कवि ने जिस तरह आलंकारिक भाषा में कथा का वर्णन किया है, वह आज से २०० वर्ष पूर्व किसी विद्वान के सामर्थ्य के बाहर था। पद्यकार तो बहुत थे; पर गद्य में और वह भी ललित भाषा में कथा का वर्णन प्रत्येक के वश की बात नहीं थी।

नगर सवाई जयपुरा, जहां वसे बहु न्यात।
राजा पृथिवींसिह है, जो कछुवाहा जाति ॥३॥

शिरोभाग राजन में, ढूंडाहड पति सोय।
ताके मंत्री श्रावका, और न्यातहु होय ॥४॥

बहुत वसैं जैनी जहां, जीव दया व्रत पाल।
पूजा करे जिनेंद्र की, आगम सुने रसाल ॥५॥
बहुत जीव श्रद्धावती, चरचा मांहि सुजान।
ग्रन्थ अध्यातम आगमा, सुने बहुत धर कान ॥६॥

संस्कृत भाषामई, भये जु आदि पुराण।
पद्मपुराणादिक बहुरि, भाषा भये निधान ॥७॥

रायमल्ल के रुचि बहुत, व्रत क्रिया परवीन।
गये देश मालव विषै, जिन शासन लवलीन ॥८॥
तहां सुनाये ग्रन्थ उन, भाषा आदिपुराण।
पद्मपुराणादिक तथा, तिन को कियो बखान ॥९॥

सव भाई राजी भये, सुनकर भाषा रूप।
तिनके रुचि अति ही बढी, धारी कथा अनूप ॥१०॥

रायमल्ल से सवन ने, करी प्रार्थना येह।

करवाओ हरिवंश की, भाषा बहु गुण गेह ११
आगे दौलतराम ने, टीका भाषा मांहि।
करी सो ही यह अब करे, यामें संशय नांहि ॥१२॥

तव भेजी पत्री यहां, रायमल्ल धर भाव।
लिखो जु साधर्मीन को, करण धर्म प्रभाव ॥१३॥

तथा जु दौलतराम को, मल्ल लिखी वह वात ।
करहु भाषा हरिवंश की, सबके चित्त सुहात ॥१४॥

सव साधर्मिन मिले जव, श्री चैत्याल्य मांहि ।
भाषी दौलतराम से, जिन श्रु तसे ग्रथ जांहि ॥१५॥

जिनवानी रस अमृता, जा सम सुधा न और ।
जाकर भव भरमरण मिटे, पावे निश्चल ठौर ॥१६॥
यामैं विलम्ब न कीजिये, करो शीघ्र ही येह ।
सफल होहि जाकर सही, उत्तम मिनख्या देह ॥१७॥

रत्नचंद दीवान एक, भूपत के परधान ।
तिन के भाई शुभ मती, विधीचंद परवान ॥१८॥
सो दौलत के मित्र अति, भये जु उद्यम रूप ।
तिन के आग्रहते यह, टीका भई अनूप ॥१९॥

दौलत ने अति भाव धर, भाषा कीनौ ग्रन्थ ।
महा शान्त रस को भरो, सुगम मुक्ति को पंथ ॥२०॥

सीताराम जो लेखका, और सवाईराम ।
तिन पर लिखवायो जु यह, बहुत कथा को धाम ॥२१॥

ताकर सुधरे भव यह, अरु पावे शुभ लोक ।
होये अति आनन्द अरु, कवहु न उपजे शोक ॥२२॥
सुखी होह राजा प्रजा, होहु सकल दुःख दूर ।
बढौ धर्म जिनदेव को, जाहि बखाने सूर ॥२३॥

न्याति खंडेल जु वाल है, गोत्र कासलीवाल ।
सुत है आनन्द राम को, वसवे वास विशाल ॥२४॥
सेवक नरपति को सहो नामसु दौलतराम ।
ताने यह भाषा करी, जपकर जिनवर नाम ॥२५॥

अट्ठारह सौ संवता, तापर धर गुरणतीस ।
वार शुक्र पून्यो तिथी, चैत मास रति ईस ॥२६॥

पुराण के कितने ही प्रसंग है; जिनमें महाकवि ने अपनी सारी लेखनी को उंडेल कर रख दिया है। वर्णन शैली सरस एवं आकर्षक है। कवि ने प्रारम्भ में ग्रन्थ की उत्पत्ति तथा उसके पश्चात अनुक्रमणिका दी है जो हरिवंश पुराण का संक्षिप्त सार है। मात्र इस सार को ही पढ़कर कोई भी इस महान् कृति के विषय वर्णन से परिचित हो सकता है। अन्त में स्वयं महाकवि ने भी "यह हरिवंश पुराण का विभाग संक्षेप कर रहा है।"—लिख कर अपने प्रतिपादित ग्रन्थ के विषय में जानकारी दे दी है। यहाँ एक गद्यांश प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे हरिवंश -पुराण की गद्य शैली का अनुमान हो सकेगा—

भावार्थ:—माता ही स्वामिनी है अर निद्रा ही सखी है सो इस निद्रा सखी ने ऐसी जानी जो मोह कर मेरी स्वामिनी आनन्द रूप शुभ स्वप्न के दर्शन को प्राप्त भई मो मैं कृतार्थ भई। सेवक का यही धर्म है जो स्वामी को आनन्द उपजावे इसी कर सेवक को कृतार्थता है ॥७६॥ माता तो आप ही जाग्रतरूप है परन्तु दिक्कुमारी जगाने के अर्थ माता को ऐसे शुभ शब्द कहती भई सो वे शब्द केवल मंगल ही के अर्थ है। अर माता तो जाग्रतरूप है देवी कहा शब्द कहे सो सुनो। हे विवुधार्थ कहिये माता ? तू कैसी है जाना है पदार्थों का रहस्य जिसने सो तू विवुध्यास्व कहिये जाग। हे विवर्धने! कहिये वृद्धि रूपिणी अब तू सबको आनन्द बढा। अर हे देवी! विजय लक्ष्मी की स्वामिनी देवी पूर्ण हैं मनोरथ जिसके सो तू विजय के भाव को प्राप्त हो ॥१७॥ हे माता! अब यह चन्द्रमा तुम्हारे मुखरूप चन्द्र को देख कर लज्जावंत होय प्रभा रहित होय गया है तुम्हारा मुख निष्कलंक अर गुण कर कहिये गुणों की खान अर चन्द्रमा दोषी कहिये रात्रि उसका करणहारा है उससे दोषकर अर कलंकी है ॥७९॥ अर दीपों की ज्योति मंद भासे है सो मानों ये दीपक अपने प्रकाश को हंसे हैं जो यह जिनेन्द्र के माता पिता का गृह नखों के उद्योत समान चांद सूर्य का प्रकाश नही यहां हम प्रकाश करें इस

ता दिन यह पूरण भया, श्री हरिवंश पुराण।
पढो सुनो अरु सरदहो, पडित करो वखान ॥२७॥
श्री हरिवंश पुराण की, भाषा सुनहु सुजान।
सकल ग्रन्थ संख्या भई, उन्नीस सहस प्रमाण ॥२८॥
दो हजार अरु चार सौ, ता ऊपर पंचास।
संवत वीर जिनेशका, कियो ग्रन्थ परकास ॥२९॥

समान मूढता कहां ।।८०।। अब संध्या दुष्ट की मित्रता समान निष्फल डिगती भासे है कैसी है दुष्ट की मित्रता अत्यन्त सुख विषै है राग जिसका अर क्षण मात्र में राग मिट जाय है अर यह सांझ भी प्रथम तो राग कहिये आरक्तरूप भासे है। अर क्षण मात्र में आरक्तता मिट जाय है ।। भावार्थ—अब संध्या की भी ललाई मिटे है ।।८१।। अब सूर्य की प्रभा सज्जन की मित्रता समान बढ़े है कैसी है मित्रता अवन्ध्य कहिये सफल है अर्थ जिस विषे अर कैसी है सूर्य की प्रभा सफल है सकल कार्य जिस विषे ।।८२।।

१४ परमात्म प्रकाश भाषा—

"परमात्म प्रकाश" आचार्य योगीन्दु की (६-७वीं शतीं) कृति है जिसकी रचना का प्रमुख उद्देश्य प्रभाकर भट्ट के उद्बोधन के लिए रहा था। अपभ्रंश भाषा में निबद्ध यह ग्रंथ अध्यात्म विषय का प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। यह दोहा छन्द में लिखा गया है, जिसकी संख्या ३४५ है। इसके दो अधिकार है; जिनमें बहिरात्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह जैन साहित्य की एक लोकप्रिय कृति रही है।

महाकवि दौलतराम कासलीवाल ने इस पर हिन्दी में विस्तृत टीका लिखी; जो ६८९० श्लोक प्रमाण है; जैसा कि स्वयं कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

'यह परमात्म प्रकाश ग्रन्थ का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट के संबोधने अर्थि श्री योगिन्द्र देव नें कीया था ता परि श्री ब्रह्मदेव नै संस्कृत टीका करी। श्री योगीन्द्राचार्य नैं प्रभाकर भट्ट संबोधिवे कै अर्थि दोहा तीनसैं तीयालीस कीए ता परि ब्रह्मदेव नै संस्कृत टीका हजार पांच च्यारि ५००४ कीए ता परि दौलत-राम नै भाषा वचनिका का श्लोक अडसठिसैंनिवे ६८९० संख्या प्रमाण कीए। श्री योगीन्द्राचार्य कृत मूल दोहा ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका दौलतिराम कृत भाषा वचनिका पूर्ण भई ।।'

कवि ने अपनी भाषा टीका में विषय का प्रतिपादन अत्यधिक बुद्धिमत्ता पूर्ण किया हैं; जिससे प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी के वह समझ में आ सके। कवि ने इसकी भाषा कब लिखी इसका इसमें कोई उल्लेख नहीं किया किन्तु इस कृति को भी कवि ने उदयपुर रहते हुए ही लिखी थी ऐसा मालूम होता है। क्योंकि जयपुर आने के वे तो उन्होंने आदिपुराण पद्मपुराण एवं हरिवंश पुराण जैसे विशालकाय ग्रन्थों की रचना करने में संलग्न हो गये थे।

'परमात्म प्रकाश' कवि की उत्तम कृति है तथा तत्कालीन प्रचलित हिन्दी गद्य का सुन्दर रूप है।

१५ तत्वार्थ सूत्र टव्वा टीका—

'तत्वार्थ सूत्र' जैन सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाला सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। यह सूत्र रूप में है और आचार्य उमास्वामी विरचित है। इसका रचनाकाल दूसरी-तीसरी शताब्दी माना जाता है। यह ग्रन्थ दोनों ही सम्प्रदायों में समान रूप से समादृत हैं। इस पर संस्कृत में कितनी ही टीकाएं उपलब्ध हैं और उनमें पूज्यपाद की सवार्थसिद्धि (छठी शती) अकलंकदेव का तत्वार्थराजवार्तिक (७७७–८३७) एवं विद्यानन्द की श्लोकवार्त्तिक टीकाएं (सं० ८१०) सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हैं। हिन्दी में भी कितनी ही टीकाएं मिलती है।

कविवर दौलतराम ने इस पर टव्वा टीका लिखकर इसके स्वाध्याय के प्रचार में अपना योगदान दिया। कवि ने अध्यायों के अन्त में "इति तत्वार्थाधिगमें मोक्षशास्त्र ए दशमौ अध्याय अर्थ सहित पूरौ हुवौ और अन्त में इति उमास्वामि मुनि विरचितं तत्वार्थ सूत्र टव्वा सहित समाप्ति"—इस प्रकार अपनी टीका का परिचय दिया है। अर्थ सूत्रों पर दिया गया है तथा कहीं-२ तो पर्याप्त रूप से विस्तृत बन गया है। इसकी एक पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर पाण्डे लूणकरण जी, जयपुर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। ग्रंथ की टव्वा टीका का एक उदाहरण देखिये—

"अपना पर का उपकार कै अर्थि अपना चित का देना सो दान है। तहां अपना पर का उपकार सो अनुग्रह कहिए सो अपना उपकार तो पुण्य का संचय होना है और पर का उपकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र की वृद्धि होना है, सो इन अर्थनितैं स्व कहिता धन ताका अतिसर्ग कहिए त्याग सो दान है।"

१६ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टव्वा टीका[1]—

यह प्राकृत भाषा का अपूर्व ग्रन्थ है जिसमें बारह अनुप्रेक्षाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। दौलतराम ने इसी की हिन्दी में टव्वा टीका लिखकर इसके स्वाध्याय के प्रचार को प्रोत्साहन दिया। कवि ने इसकी प्रशस्ति में लिखा है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टव्वा टीका इन्द्रजीत के बोध कराने को लिए संवत् १८२६ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्ण की थी—

---

१. देखिये अनेकान्त,

सुखी होहु राजा प्रजा, सुखी होई चौसंग।
पावहु शिवपुर सज्जना, सो पद सदा अलंघ।
इन्द्रजीत के कारनें, टवाजु वालावोध।
भाष्यो दौलतराम ने, जाकर होय प्रवोध ।।

१७ वसुनन्दि श्रावकाचार भाषा—

आचार्य वसुनन्दि का श्रावकाचार प्राकृत भाषा का सुन्दर एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें श्रावकों के आचार धर्म का वर्णन किया गया है। महाकवि दौलतराम जब उदयपुर में थे, तभी उन्होने अपनी शास्त्र सभा में इस श्रावकाचार पर प्रवचन किया था। ग्रंथ प्राकृत में होने के कारण कवि के द्वारा समझाने पर एक बार तो समझ में आगया; लेकिन पुनः उसका स्वाध्याय कैसे किया जावे यह प्रश्न सभी के समक्ष आया। अन्त में शास्त्र सभा के प्रमुख श्रोताओं में सेठ वेलजी ने दौलतराम से निवेदन किया कि यदि इस ग्रंथ की टव्वा टीका हो जावे तो इसका स्वाध्याय करने में सभी को सुविधा होगी। वेलजी सेठ का अनुरोध सुनकर कवि इसकी टव्वा टीका करने को सहमत हो गये और उन्होंने शीघ्र ही अपने कार्य को समाप्त कर दिया।

अब तुम सुनहु भव्य इक वैंन, जा विधि टव्वा भयौ सुख दैंन
उदियापुर में कियो वखान, दौलतिराम आनन्द सुत जान।
वाच्यौ श्रावक व्रत विचार, वसुनन्दी गाथा अधिकार।
वोले सेठ वेलजी नाम, सुनि नृप मंत्री दौलतिराम।
टव्वा होय जौ गाथा तनौ, पुन्य उपजै जिसकौ घनौ।
सुनि के दौलति वेल सु वैन, मन धरि गायो मारग जैन।
नंदौ विरधौ जिन मत सार, सुख पावो चउसंघ अपार।
दौलति वेल कहो निज वोध, होहु होहु सवको प्रतिबोध।

टीका काफी विस्तृत हैं तथा भाषा एवं शैली की दृष्टि से वह काफी अच्छी है।

१८ सार चौवीसी

यह कवि को पद्यात्मक आध्यात्मिक कृति है जिसमें मानव जीवन का, जगत की गतिविधियों का, आत्म स्वभाव का एवं धार्मिक जीवन की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। इसी के साथ एक रूपात्मक कथा का भी वर्णन मिलता है। एक वार जीवात्मा ने भवसागर से पार उतरने का उपाय अपने

सद्गुरु ने पूछा। इसके उत्तर में इन्होंने बतलाया कि मोह की सुता मायानारी भव जाल से निकलने में सबसे बड़ी बाधा है। इसलिये अपने हृदय से मोह पर विजय प्राप्त करो। कुमित्रों की आज्ञा को मत मानो और ज्ञान को अपना प्रधान-मंत्री बनाओ। सुबुद्धि को अपनी स्त्री नियुक्त करो। विवेक को पुरोहित और अपनी आत्मशक्ति को ही सेनापति रखो। भगवद् भक्ति के सहारे मोह पर विजय प्राप्त करो तभी जाकर इस भव से मुक्ति मिल सकती है। इसके पश्चात् इस जगत में कौन कौन से पदार्थ सर्वोत्तम हैं उनका भी इसमें वर्णन मिलता है।

> धेनु नहीं सुर धेनु सी, रस अमृत सो नांहि
> उदधि न क्षीरोदधि जिसे, पंडित लोक कहांहि ।।८७।।
> ऐरावत से गज नहीं, सुरपुर से पुर नांहि।
> वन नहीं सुरवन सारिखो, क्रीडा रूप लखाहि ।।

७८ वें पद्य से १०३ पद्यों तक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। पूरी रचना १०४ पद्यों में समाप्त होती है। इसमें रचना काल नहीं दिया हुआ है किन्तु अन्तिम पद्य में अपने नामोल्लेख के साथ ही रचना समाप्त करदी गयी है।

> सार समुच्चै यह कह्यौ, गुर आज्ञा परवांन।
> आनंद सुत दोलति नैं, भजि करि श्रीभगवान ।।१०४।।

इस ग्रंथ की एक प्रतिलिपि जयपुर के वर्धाचन्द जी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में १०८२ संख्या वाले एक गुटके में संग्रहीत है।

कवि की विचारधारा

महाकवि दौलतराम साहित्य की किसी एक धारा में नहीं बहे ! और न वे किसी परम्परा से ही बधे रहे ! उन्होंने अपना जीवन कथाकोष लिखने से प्रारम्भ किया और अन्त हरिवंश पुराण से किया ! ५२ वर्ष के लम्बे साहित्यिक जीवन में कितने ही उतार चढ़ाव आये लेकिन उनकी साहित्यिक धारा अजस्र बहती रही। वे रीति कालीन कवि थे ! मुगल बादशाहों एवं राजा महाराजाओं की शान शौकत का युग था ! आमेर के दरबारी कवि बिहारी की सत्सई ने तत्कालीन जनता पर जादू जैसा कार्य किया था ! चारों ओर मस्ती थी ! रंगीन एवं शृगांर रस से ओत प्रोत कविताएं थी और उनमें डूबा हुआ था सारा हिन्दी समाज ! लेकिन दौलतराम राज दरबार में रहते हुए हुए भी इस क्षणिक मस्ती से दूर थे ! वे जानते थे कि यह जीवन निर्माण का मार्ग नहीं है ! सरागता जीवन की सच्चाई तक नहीं पहुँचने देती

जबकि वीतरागता उसके अन्तिम छोर तक पहुँचने में सहायक होती है ! इसलिए कवि ने "पुण्यास्रव कथाकोष" की रचना करके पाठकों को अध्ययन का एक नवीन मार्ग बतलाया ! ये सब ऐसी कथाएं हैं जिनमें जीवन निर्माण का मार्ग मिलता है ! सरसता, एवं धारा प्रवाहिकता में ये कथाएं किसी से कम नहीं ! भाव, भाषा एवं शैली सभी दृष्टियों से उत्तम ! आगरा की गलियों में अध्यात्म सैलियों में तथा मन्दिर एवं स्वाध्याय शालाओं में इन कथाओं को पढ़ा जाने लगा और इस एक ही कृति में दौलतराम लोकप्रियता के शिखर पर जा बैठे ।

उदयपुर में जब वे पहुँचे तो वहाँ भी राजाशाही थी । कामिनी एवं सुरा का दौर दौरा था ! और कवि को इन राजदरबारों में भी उपस्थित रहना पड़ता था ! जयपुर महाराजकुमार के संरक्षक जो ठहरे ! लेकिन यहाँ भी कवि ने अपने आपको कमल के समान निर्लिप्त रखा ?

उदयपुर जाने के पश्चात् उनका साहित्यिक जीवन निखर गया । आगरा में उन्हें वहाँ की अध्यात्मक शैली में रहने का अवसर मिला । और भूधरदास जैसे महाकवि से साहित्यिक विचार विमर्श करने का सौभाग्य मिला । आगरा से पुनः जयपुर आने के पश्चात् भट्टारकों एवं तत्कालीन विद्वानों के विचारों को जानने एवं समझने का समय प्राप्त हुआ । और जब उदयपुर पहुँचे तो उन्हें एकान्त में अपने विचारों का मन्थन करने का खूब समय मिला । वहाँ आगरा एवं जयपुर जैसा न तो साहित्यिक वातावरण था और न सामाजिक संगठन ही । यहाँ उन्होंने अपने योग्य वातावरण का स्वयं को निर्माण करना पड़ा । एवं शास्त्र प्रवचन के माध्यम से अपने विचारों को प्रसारित करने का सुन्दर अवसर भी मिला । इसलिये उदयपुर जाने के पश्चात् उन्होंने समाज को सर्वप्रथम "क्रियाकोश" दिया । इसके आधार पर हम कवि की विचार-धारा का अच्छी तरह अध्ययन कर सकते हैं । कवि ने इसमें गृहस्थों के लिए आवश्यक त्रेपन क्रियाओं का जिस सुन्दरता एवं विशदता से वर्णन किया हैं वह कवि के विचारों का द्योतक है । उसने सभी क्रियाओं को जीवन विकास के लिये आवश्यक माना है और उनके पालन करने के महत्त्व पर प्रकाश डाला है । आरम्भ में उसने इन कार्यों का नामोल्लेख किया है जिनके सम्पादन से मानव जीवन सामान्यतया प्रशस्त बनता है तथा जिन्हें हम श्रावक मात्र के लक्षण कह सकते हैं । ऐसे शुभ कार्यों के नाम निम्न प्रकार हैं—

मोक्ष मारगी मुनिवरा, जिनकी सेव करेय ।
सो श्रावक धनि धन्य है जिन मारग चित देय ।।६०।।

जिन मंदिर जो शुभ रचै, अरचै जिनवर देव।
जिन पूजा नित प्रति करै, धरै साधु की सेव ।।६१।।
करै प्रतिष्ठा परम जो, जान्या करै सुजान।
जिन सासन के ग्रन्थ शुभ, लिखवावै मतिवान ।।६३।।
चउ विधि संघ तणी सदा, सेवा धारै वीर।
पर उपगारी सर्व की, पीडा हरै जु वीर ।।६३।।

उक्त पंक्तियाँ श्रावक के लिए प्रशस्त मार्ग को निर्देशित करने वाली है। इससे यह स्पष्ट है कि वे इन सभी क्रियाओं के पालन करने के पक्ष में थे जिन्हें पूर्वाचार्यों ने प्रतिपादित की थी। उनकी दृष्टि से जीवन निर्माण के लिये आचार की प्रधानता है चारित्र की विशेषता है। और त्रेपन क्रियाओं के सम्बन्ध में उन्होंने इसी दृष्टि से विस्तृत प्रकाश डाला है। कवि ने अपनी इस कृति के माध्यम से उदयपुर के सामाजिक वातावरण को स्वच्छ बनाया और श्रावकों को इन क्रियाओं को जीवन में उतारने पर विशेष जोर दिया। कवि इससे पुरातन पंथी नहीं बना किन्तु उसने जीवन में चारित्र की, संयम की, अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रहपरिमाण आदि व्रतों की पुनः प्रतिष्ठापना की। षट् कर्मों के परिपालन को जीवन का आवश्यक अंग बतलाया तथा मद्य मांस एवं मधु को मानव मात्र के लिये त्याज्य बतलाया। कवि के इन विचारों से समाज में नव चेतना का संचार हुआ। इसके लिये उन्होंने शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया और उसे अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाने का माध्यम बनाया।

भक्त कवि के रूप में

उदयपुर में रहते हुए कवि ने अध्यात्म बारहखडी की रचना की। यह कवि की सबसे विशाल पद्यात्मक काव्य कृति है जिसे हम अध्यात्म एवं भक्ति का महाकाव्य भी कह सकते हैं। इस कृति में वे भक्त कवि के रूप में हमारे सामने उपस्थित हुए हैं। बारहखडो के रूप में उन्होंने जिस रूप में भक्ति एवं अध्यात्म की गंगा बहायी है वह हिन्दी काव्य जगत् में अनोखी है। उसने सर्व प्रथम निम्न शब्दों में निर्ग्रन्थ जिनवर का स्तवन किया है—

और न दूजो देवता और न दूजो पंथ।
शिव विरंचि जगनाथ है, जो जिनवर निग्रंथ ।।१०।।

१. अध्यात्म बारहखडी पद्य संख्या ४८

सब वामें वह सबनि में, वह हैं सब ते भिन्न।
वा तैं सब ही भिन्न है वह भिन्नो च अभिन्न ॥

कवि के शब्दों में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश जिन स्वरूप है इसलिये उसने परमात्मा की निम्न शब्दों में भक्ति की है—

तुही जिनेश संकरो, सुखंकरो प्रजापती।
तुही हिरण्य गर्भ को, अगर्भ को धरापती ॥

वह परमात्मा अनन्त गुणात्मक है। अनंत सुख एवं वीर्य का धारी है। उसके समान वही है और दूसरा कोइ भी नहीं है। तेरी समता तू ही सामी, तो सौ और न अन्तरयामी" कह कर वह प्रभु का स्तवन करता है और अपने "संकल्पा अर सकल विकल्पा, मेरे मेटि जु देव अकल्पा" की याचना की है। कवि का प्रभु अमरेश्वर द्वारा पूजित है। सूर्य एवं चन्द्रमा जिनकी सेवा करते हैं। चारों निकायों के देवों द्वारा पूजित है। जिन सहस्रनाम में जिस प्रकार भगवान -जिन देव के १००८ नामों का गुणानुवाद किया है उसी प्रकार इस बारहखडी में उसने उसी रूप में जिनदेव का स्तवन किया है। उसने भगवान से कर्म रूपी कलंक को हटाने की प्रार्थना की है। वास्तव में तो जो अरहंत सिद्ध आदि पंच परमेष्ठियों का स्तवन करता है उसके स्वतः ही माया एवं मोह दूर हो जाते हैं। एक स्थान पर उसने कहा है जब किसी भक्त को भव सागर से तारा है तो इन पंच परमेष्ठियों की भक्ति ने ही उसे तारा है अन्य ने किसी ने नहीं। क्योंकि वह सब देवों का भी देव है—

जब तारै जब तू ही तारै, तो विनु और न कर्म निवारै।
सब देवनि कौ तू ही देवा, सब करि पूजति एक अभेवा।

कवि ने उन सभी महापुरुषों का, भक्तों का, आचार्यों एव साधुओं का नामोल्लेख किया है जिन्होंने जिनेन्द्र भक्ति से भव संकटों से मुक्ति प्राप्त की है क्योंकि जिनेश्वर सब के रक्षक हैं और सब भेदाभेद से विमुख हैं।[१] णमोकार मंत्र की महिमा का भी कवि ने वर्णन किया हैं। इस मंत्र की महिमा से मरणासन्न श्वान ने भी देवगति प्राप्त की दी।

मरत सुन्यौ स्वाने चितधारी, अघते रहित भयो शुभकारी।

लेकिन कवि की भक्ति एवं भक्त की कामना दोनों ही उल्लेखनीय है। वह प्रभु

---

१. अध्यात्म बारहखडी—पृष्ठ संख्या १६२ पद्य संख्या १६६

से सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये निवेदन नहीं करता। स्त्री, सन्तान, स्वास्थ्य एवं सुन्दर शरीर की वह अपने प्रभु से वांछा नहीं करता और न वह कोट्याधीश बनने की याचना करता। वह तो उनसे स्वयं परमात्मा स्वरूप को प्राप्त करने की प्रार्थना करता है क्योंकि उसने इन्हीं के जाल में पड़ कर जन्म जन्मन्तरों में महान दुःख पाये हैं जिनका वर्णन करना भी कठिन है।[1] वह स्वयं तीर्थंकर बनने की कामना करता है इसलिये वह निम्न शब्दों में स्तवन करता है—

अतिसै जग के दासन मांगे, दे अतिशय चउतीस जु मोहि
अष्ट जु प्रातिहारहू देहौ, केवल दै विनऊं कह तोहि।
देहु अनंत चतुष्टय निश्चै, तू अतिशय तन चिदघन होहि।
अतिशय प्रातिहार नहि देतो, अनंत चुतुष्टय दे प्रभु सोहि ॥४०६॥

भगवान जिनेन्द्र देव जहां विराजते हैं उसका वर्णन भी कवि ने भक्ति वश किया है। वहाँ केवल आत्म सुख ही आत्म सुख है। जगत् का अन्य कोई व्यापार नही। न असि का व्यापार है और न वहाँ मसि का कार्य है। व्यापार एवं वणिज वहाँ नहीं होता। निर्वाण होने के पश्चात उस लोक में न पठन पाठन की आवश्यकता है और न गुरू शिष्य का भेद है वहाँ यह आत्मा शुद्ध स्वरूप में निवास करती हैं। मोह द्रोह एवं अन्य वैभाविक क्रियाओं को वहाँ कोई स्थान नहीं है और ऐसे ही स्थान प्राप्ति के लिये वह अपने प्रभु से प्रार्थना करता है।[2]

इस प्रकार सम्पूर्ण अध्यातम बारहखडी भक्ति भावना से ओत प्रोत है। कवि ने इसमें अपना हृदय खोल कर रख दिया है और जितना भी उसे शाब्दिक ज्ञान था उसे उसने अपने भावों में उतारा है। भक्ति एवं स्तवन में कवि ने जैन सिद्धान्त का भी अच्छा वर्णन किया है क्योंकि जिन भगवान भी उन्हीं सिद्धान्त मय हैं। यही नहीं वर्ष भर के प्रमुख पर्वों के महात्म्य का भी इसी प्रसंग में वर्णन कर दिया है। क्योंकि इन पर्वों का महात्म्य भी तो इनके जीवन की किसी घटना का कारण है। और उनके जीवन की घटनाओं का सांगोपांग

---

१. सो मेरी मेटो जगनाथा, निज परणति की देहु साथा।
पर परणति तें मैं दुख पायो, आप विसारि जु जन्म गवायो ॥२४०॥

२. अध्यातम बारहखडी—पद्य संख्या ४३० पृष्ठ संख्या २४१.

वर्णन भी भक्ति का एक अंग है। अक्षय तृतीया पर्व के महात्म्य को कवि ने निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है—

वैशाखी शुक्ला जु तीज अक्षय भई
रिषभ कियो जा दिवस पारनौ विधि ठई।
वरष एक उपवास धारि यम धार जो।
मारग प्रगट कियो जु मोह मद मार जो ॥५१॥
घटियां श्रेदस पुनीत कियो जाने सही।
सो मानुज भवतारि किय सिव ईसही।
ईस रसाहारी जु देवपति देव जो
अषैतीज सम करहु करी हम सेव जो ॥५२॥

गद्य निर्माता के रूप में

दौलतराम हिन्दी गद्य साहित्य के प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने अपनी चार वृहद् गद्य रचनाएं साहित्य प्रगत को भेंट की। उनकी प्रथम कृति पुण्यास्त्रवकथा-कोश संवत् १७७७ (सन १७२०) की रचना है। उस समय तक हिन्दी कृतियों का अर्थ पद्यात्मक कृतियों मे लिया जाता था। यद्यपि डा० जयकिशन शर्मा ने व्रज भाषा गद्य का पूर्ण विकास एवं उसका उत्कर्ष काल संवत् १५०० से १७०० तक स्वीकार किया है और इस काल की कुछ रचनाओं के नाम भी गिनाए हैं।[१] इन कृतियों में या तो लघु गद्य रचनाएं है या फिर वचनिका, टीका संज्ञक रचनाएं है लेकिन कविवर दौलतराम ने हिन्दी गद्य में विशालकाय कृतियां प्रस्तुत की और हिन्दी पाठकों में हिन्दी के प्रति गहरी रुचि पैदा की। कवि ने जिस धारावाहिक शैली को अपनाया आगे चलकर सारे जैन कवि ही नहीं किन्तु जैनेतर कवियों ने भी उसी शैली का अनुकरण किया। यद्यपि दौलतराम की चारों ही रचनाओं को हम अनुदित रचनायें कह सकते हैं ये केवल अनुवाद अथवा वचनिका मात्र नहीं हैं किन्तु इनमें मौलिकता का सर्वत्र सद्भाव है जिससे ये

---

१ हिन्दी साहित्य की प्रवत्तियां पृष्ठ संख्या ५१२–१३

दौलतराम का हिन्दी गद्य संस्कृत परिनिष्ठ है। वह अपभ्रंस, प्राकृत तथा देशी शब्दों से मुक्त है। वह व्रज भाषा का गद्य है लेकिन फिर भी उसमें खड़ी बोली का पूर्व रूप देखा जा सकता है।

कृतियाँ स्वतन्त्र गद्य काव्यों के रूप में सामने आती है। पुण्यास्रव कथाकोश के अतिरिक्त आदिपुराण, पद्मपुराण एवं हरिवंश पुराण जैसी कृतियों की भाषा एवं शैली की दृष्टि से कवि ने उन्हें सर्वथा मौलिकता प्रदान की और जो अनुवाद में सूना सूना सा नजर आता था उसे अपनी कृतियों में जड से उखाड फेंका। यही कारण हैं कि उनका पद्मपुराण एवं हरिवशपुराण का स्वाध्याय गत २०० वर्षों में जितना हुआ उतना स्वाध्याय संभवत: अन्य किसी रचना का नहीं हुआ होगा। बल्कि महाकवि के पूर्व तक हिन्दी गद्य रचनाओं के प्रति पाठकों का जो उपेक्षा भाव था उसे भी दौलतराम ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दूर किया। इसके अतिरिक्त अब तक भाषा टीका लिखने की जो परम्परा विद्यमान थी वह भी धीरे धीरे समाप्त हो गयी और विद्वान हिन्दी गद्य में लिखने की ओर झुकने लगे। २०वीं शताब्दी में हिन्दी गद्य या उपन्यास, कहानी एवं निवन्धों के रूप में जो विकास हुआ उसमें भी वही भावना काम करती है जिस भावना से दौलतराम को अपनी कृतियां का माध्यम हिन्दी गद्य को स्वीकार किया था। 'खेतनि विषै नाना प्रकार के खेत हरे हो रहे हैं अर सरोवरनि में कमल फूल रहे हैं अर वृक्ष महारमणीक दीखे है' यह शैली आज से २०० वर्ष से भी अधिक समय की है। गत दो सौ वर्ष में हिन्दी भाषा के प्रयोग में कितना परिवर्तन आया है इससे हम परिचित हैं लेकिन संवत १८२३ में भी हिन्दी गद्य में लिखने वाले इतने उच्चस्तरीय विद्वान थे यह देखकर हमें आश्चर्य होता है। और उनकी विद्वत्ता एवं लिखने की शैली को देखकर के ही मालवा समाज ने हरिवंशपुराण को हिन्दी गद्य में निर्माण करने की और प्रार्थना करवायी।

"उनकी वार्त्ता पुर ग्रामादि विषै प्रसिद्ध भई सो दर्मन भूपति बलदेव के समाचार सुन कर संका मान नाना प्रकार के आयुध धर उपसर्ग करने वे आये। तब सिद्धार्थ देव उनको ऐसी माया दिखाई वे जहां देखे तहां दीखे।"

उपर्युक्त उदाहरण हरिवंशपुराण का है। कवि ने इस पुराण में बड़े बड़े वाक्य लिखे हैं क्रियाओं का प्रयोग कम से कम किया है और उसके प्रयोग से स्थान पर अर्द्ध क्रिया पदों का प्रयोग करके वाक्य को लम्बा करता गया है। लेकिन फिर भी भाषा एवं शैली के आकर्षण में कोई कमी नहीं आती है और पाठक उसे सहज भाव से पढ़ता है। हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से दौलतराम के इन कृतियों का अत्यधिक महत्त्व है इसलिये इनका समीक्षात्मक अध्ययन आवश्यक हैं।

समकालीन शासक, विद्वान् एवं श्रावक

१ महाराजा सवाई जयसिंह : (सन् १७०१ से १७४३)

महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर राज्य के योग्यतम शासक थे। वीरता, शौर्य्य एवं सूझ-बूझ के लिए अपने समय में देहली दरबार में अत्यधिक लोकप्रिय थे। वे सन् १७०१ में आमेर की गद्दी पर बैठे, लेकिन जब उन्होंने आमेर को अपने राज्य के लिए बहुत छोटा नगर पाया तो सन् १७२७ में जयपुर नगर को बसाया[१]। इस नगर को महाराजा ने जिस वैज्ञानिक ढंग से बसाया उससे उनकी कीर्ति विश्व में फैल गयी। तत्कालीन जैन कवि बख्तराम साह ने अपने बुद्धिविलास में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

> कूरम सवाई जयस्यंघ भूप सिरोमनि,
> सुजस प्रताप जाकौ जगत में छायौ है ।
> करन-सौ दानी पांडवन-सौ क्रपांनी महा,
> मांनी मरजाद मेर रांम-सौ सुहायौ है ।।

महाराजा सवाई जयसिंह ने एक लम्बे समय तक राज्य पर शासन किया अपने राज्य की सीमाओं में अत्यधिक वृद्धि की।

शासकीय गुणों के अतिरिक्त महाराजा साहित्य, संस्कृति तथा कला के विशेष प्रेमी थे। विद्वानों एवं कलाकारों को वे खूब संरक्षण प्रदान करते थे। महाकवि दौलतराम का इनसे प्रथम साक्षात्कार कब हुआ—इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता; लेकिन महाकवि ने सर्वप्रथम अपने 'त्रेपनक्रियाकोश' में (सं० १७६५) अपने आपको जयसिंह का अनुचर एवं जयसिंह के सुत (महाराज कुमार) का मंत्री के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात् जब तक महाराजा जीवित रहे तब तक महाकवि उनकी सेवा में रहे।

> सोहै अंबावतिकी दक्षिण दिसि सांगानेरि,
> दोऊ वीचि सहर अनौपम वसायौ है।
> नांम ताकौ धरयौ है, सवाई जयपुर ।
> मांनौं सुरनि हीं मिलि सुरपुर-सौ रचायो है ।।६८।।

महाराजा जयसिंह यद्यपि वैष्णव धर्मानुयायी थे, लेकिन जैनधर्म, साहित्य तथा संस्कृति से उनका विशेष प्रेम था और उनके शासन काल में पूरे राज्य में नये-नये जैन मन्दिरों का निर्माण होता रहा। जयपुर नगर में भी उन्होंने दो चौकड़ियां (मोदीखाना एवं घाट दरवाजा) विशेष रूप से जैनों को वसने के लिए प्रदान की। उनके शासन में जयपुर नगर में जिस भारी संख्या में विशाल एवं कलापूर्ण जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ, वह उनकी जैन धर्म के प्रति अनुराग का द्योतक है। कर्नल टॉड ने अपने ग्रन्थ "राजस्थान" में यह भी लिखा है कि इस राजा को जैन धर्म के सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान था और उनकी विद्या बुद्धि के कारण भी वह जैनों का काफी सम्मान एवं आदर करता था।[1] इनके शासनकाल में सैकड़ों ग्रन्थों की प्रतिलिपियां की गई और उनको देश के विभिन्न भण्डारों में विराजमान किया गया। श्रीमहावीरजी क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से प्रकाशित ग्रन्थ सूचियों (५ भाग) एवं प्रशस्ति संग्रह में ऐसे सैकड़ों ग्रन्थों का उल्लेख आया है, जिनकी प्रतिलिपि जयपुर में तथा राज्य के विभिन्न नगरों में हुई थी।

इनके शासनकाल में संवत् १७५८, १७६१, १७६३, १७६६, १७७२, १७७३, १७७७, १७७९, १७९१, १७९६ आदि में प्रतिष्ठापित मूर्तियां एवं यन्त्रराज राजस्थान के विभिन्न नगरों में उपलब्ध होते हैं। सबसे बड़ी प्रतिष्ठा इनके शासनकाल में वांसखोह (जयपुर) नगर में हुई थी, जिसे आमेर गादी के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने करवायी थी। इस संवत् की मूर्तियां जयपुर एवं राजस्थान के विभिन्न नगरों के मन्दिरों में विराजमान है।

महाराजा जयसिंह के समय में आमेर, सांगानेर एवं जयपुर में कितने ही विद्वान् हुए, जिनमें अजयराज पाटनी, खुशालचन्द काला, नेमीचन्द, दीपचंद कासलीवाल एवं किशनसिंह के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने तत्कालीन शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

२ महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह (१७४३–१७५०)

महाराजा सवाई जयसिंह के पश्चात् महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे। यद्यपि ये अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सके; लेकिन जितने वर्षों तक जीवित रहे, अत्यधिक कुशलता से शासन किया। इनके राज्य में अधिकांशतः शान्ति रही। कविवर बख्तराम ने इनके शासन की

---

१. एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान—पृ० २९७

निम्न शब्दों में प्रशंसा की है—

वहुत वर्ष लौं राज किय, श्री जयस्यंघ अवनीप ।
जिनकै पटि वैठे स्वदिनि, ईश्वरस्यंध महीप ।।१७०।।
तिनकी दांन कृपांन को, जय जस करत अपार ।
जिन सौं जंग जुरे तिन्है, करि छांडे पतभार ।।१७१।।

महाकवि दौलतराम ने इनके शासनकाल का अपनी कृतियों में उल्लेख नहीं किया है; क्योंकि उस समय वे महाराज कुमार माधोसिंह की सेवा में उदयपुर रहते थे ।

महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह को इमारतें वनाने का वड़ा शौक था और ईश्वर लाट (सरगासूली) उन्हीं के समय में वनायी गयी थी ।

३ महाराजा सवाई माधोसिंह : (१७५०–१७६७)

महाकवि दौलतराम महाराज कुमार माधोसिंह के मंत्री होकर उदयपुर गये थे और जव तक माधोसिंह जयपुर के शासक नहीं वने, तव तक वे मंत्री के रूप में उदयपुर में ही रहे । महाराजा सवाई माधोसिंह के शासनकाल में राज्य का काफी विस्तार हुआ और रणथम्भौर का प्रसिद्ध किला जयपुर राज्य को आसानी से प्राप्त हो गया । वख्तराम साह ने इनके सम्वन्ध में जो कवित्त लिखे हैं वे निम्न प्रकार है—

दोहा : वहुरि पाटि वैठे नृपति, रांमपुर तैं आय ।
भाई माधवस्यंघजू, दुरजन कौं दुखदाय ।।१७३।।

कवित्त : जिन रामपुर मै करी निज चाकरी,
सो धरि राखी विचारि हिये ।
फिरि पाय कैं राज ढुंढाहर कौ,
सु नऊं निधि के सुख आंनि लिये ।।
भनि 'राम' कृपातैं भले ही भलै,
अमरेस के से जिनु दांन दिये ।
हरि ऐक सुदामां निवाज्यो कहूं,
नृप माधव केई सुदामां किये ।।१७४।।

सौरठा : दिये दिवाये दांन, जस प्रगट्यो दसहूं दिसनि।
उवै जगत परिभांन, राज कियो यम मुलक परि ॥१७५॥

आगै नृपति अनंत, जतन किये आयो न गढ़।
रणथम्भौर महंत, सौ माधव सहजैं लह्यौ ॥१७६॥

कवित्त : अैसी मौज कढत सवाई माधवेस कर,
सुवरन-झर ज्यौं प्रवाह नदी नद के।
मांन-वंस भांन जयसाहि कै समांन स्यांम,
हरत गुमांन निज दांन सौं धनद के॥
मोती अनहद के जराऊ साज सदके,
कर द्वार रदके अनाथ दीन दरदके।
जीन जम्बूनदके तुरंग करी-कदके,
मतंग मंति मद के कढत सदा सदके ॥१७७॥

सोरठा : चढी फौज करि कोप, भिरि भागे जट्टा प्रबल।
नई चढी यह वोप, कछवाहन की तेग कौं ॥१७८॥

लेकिन महाराजा पुरोहितों से अधिक प्रभावित थे। एक बार उन्होंने अपना सारा राज्य ही श्याम तिवारी को सौंप दिया; जिसने जैनों पर अनेक जुल्म ढ़ाये। मन्दिरों को लूटा गया और मूर्तियों को तोड़ डाला गया। लेकिन महाराजा ने सदैव जैनों का पक्ष लिया। जब उन्हें श्याम तिवारी द्वारा किये गये अत्याचारों का पता चला तो उसे उन्होंने तत्काल अपने नगर से निकाल दिया और राज्य में साम्प्रदायिक सद्भाव को पुनः उत्पन्न किया। महापण्डित टोडरमल ने अपनी अधिकांश रचनायें इन्हीं के शासन काल में लिखी थी। इसी तरह महाकवि दौलतराम ने भी श्रीपाल चरित (सं. १८२२) पद्मपुराण (सं० १८२३) एवं आदिपुराण (सं० १८२४) जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी। भाई रायमल्ल ने महाराजा माधोसिंह के शासनकाल का वर्णन करते हुए जो लिखा है, वह अत्यधिक महत्व है तथा उस समय शासन पर जैनों के प्रभाव का स्पष्ट द्योतक है—

"राजा का नाम माधवसिंह है। ताके राज विषै वर्तमान एते कुविसन दरवार की आज्ञातै न पाईए है। अर जैनी लोग का समूह वसै है।

दरबार के मुतसद्दी सर्व जैनी हैं और साहूकार लोग सर्व जैनी है । जद्यपि और भी है परि गौणता रूप है मुख्यता रूप नांहि । छह, सात वा आठ वा दस हजार जैनी महाजनां का घर पाइए है। ऐसा जैनी लोगों का समूह नग्र विषै नांहि और इहां के देश विषै सर्वत्र मुख्य पणै श्रावग लोग वसै हैं तातैं एह नग्र वा देश वहोत निर्मल पवित्र है। तातैं धर्मात्मा पुरुष वसने का स्थानक है। अवार तो सक्षात धर्मपुरी है।"

४ महाराजा सवाई पृथ्वीसिंह : (१७६६–१७७७)

महाकवि दौलतराम के जीवन-काल में ये चतुर्थ महाराजा थे। संवत् १८२४ चैत्र बदी ३ को ये जयपुर की गद्दी पर बैठे। कविवर बख्तराम ने बुद्धि विलास में इनके सम्बन्ध में निम्न पद्य लिखा है—

पृथ्वीस्यंघ विख्यात जा दिन तैं भूपति भऐ।
मिटे सकल उतपात, सुखी भई सारी प्रजा ।।१८१।।

इनके शासनकाल के दो वर्ष पश्चात् ही जयपुर राज्य में शासन पर एक वर्ग विशेष का जोर हो गया, जिसने मन्दिरों, मूर्तियों एवं उनके अनुनायियों पर बहुत अन्याय बरसाये। कवि बख्तराम ने अपने बुद्धि विलास में इस घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

फुनि भई छब्बीसा कै साल, मिले सकल द्विज लघु र विशाल।
सबनि मतौ यह पक्कौं कियौ, सिव उठान फुनि दूसन दियो ।।१३०७।।

द्विजन आदि बहु मेल हजार, बिना हुकम पायें दरबार।
दौरि देहुरा जिन लिय लूटि, मूरति विघन करी बहु फूटि ।।१३८।।

लेकिन जब महाराजा को इन अत्याचारों का पता लगा तो उन्होंने अपने राज्य में फिर साम्प्रदायिक सद्भाव की घोषणा की और राज्य भर में फिर से सब सम्प्रदाय के अनुयायी शान्ति पूर्वक रहने लगे।

महाराजा के शासनकाल में संवत् १८२६ में सवाई माधोपुर में विशाल पंच कल्याणक महोत्सव हुआ, जिसमें हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। ऐसा विशाल समारोह सारे देश में अपने ढंग का अकेला था। संवत् १८२६ में प्रतिष्ठापित सैंकड़ों हजारों मूर्तियां आज भी उत्तरी भारत के अधिकांश मन्दिरों में मिलती है। यह प्रतिष्ठा समारोह भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा सम्पन्न हुआ था।

महाकवि दौलतराम ने साम्प्रदायिक अशान्ति रहने पर भी अपना साहित्य का निर्माण का कार्य यथावत रखा और हरिवंश पुराण (संवत् १८२९) जैसे महान् ग्रन्थ की भाषा टीका करने में सफल हुए। महाकवि ने पृथ्वीसिंह के शासन काल की निम्न पंक्तियों में प्रशंसा की है—

नगर सवाई जयपुरा, जहां बसे बहु न्यात।
राजा पृथिवीसिंह है, जो कछुवाहा जाति ॥३॥
शिरोभाग राजान में, ढूंढाहड़ पति सोय।
ताके मंत्री श्रावका, और न्यातहु होय ॥४॥

५ महाराणा जगतसिंह :

महाराणा जगतसिंह उदयपुर के महाराणा थे। महाकवि दौलतराम ने इनका जीवंधर चरित की प्रशस्ति में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

उदियापुर ता मांहि, राजधानी अति सौहै।
जगतसिंह महरांण, पाट सोसोदिन को है॥
× × × ×
रहै रांण के पास, रांण अति किरपा करई।
जानें नीकौ जाहि, भेद भाव जु नहि धरई॥

महाराणा जगतसिंह और सवाई जयसिंह के परस्पर मधुर सम्बन्ध थे। यहीं नहीं, महाराजा सवाई माधोसिंह उदयपुर महाराणा की राजकुमारी के राजकुमार थे।

६ अमरपाल :

'अमरपाल' का 'पुण्यास्रव कथाकोश' में उल्लेख हुआ है। कवि ने इनकी 'परमागम को रस तिन चख्यो' के रूप में प्रशंसा की है। महाकवि बनारसीदास के साथियों में कौरपाल का नाम उल्लेखनीय है। 'सूक्तिमुक्तावली' का पद्यानुवाद बनारसीदास और कौरपाल ने मिलकर किया था।[1] 'अमरपाल'

---

१ नाम सूक्ति मुक्तावली, द्वाविंशति अधिकार।
शत श्लोक परमान सब, इति ग्रंथ विस्तार ॥१॥
कुंअरपाल बनारसी, मित्र जुगल इक चित्त।
तिनहिं ग्रंथ भाषा कियो, बहुविधि छन्द कवित्त॥
सोलहसै इक्यानवें, ऋतु ग्रीष्म वैशाख।
सोमवार एकादशी, करन छत्र सित पाख॥

संभवतः कौरपाल के सुपौत्र अथवा वंशज थे। और उन्हीं के समान अध्यात्म सैली के प्रमुख सदस्य थे। अध्यात्म विषयक रुचि अमरपाल को वंश-परम्परा से मिली होगी—ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

७ आनन्दराम :

'आनन्दराम' महाकवि दौलतराम के पिता थे। सर्व प्रथम 'पुण्यास्रव कथाकोश' में कवि ने आनन्दराम सुत लिखकर अपना परिचय दिया है। आनन्दराम वसवा (जयपुर) के रहने वाले थे। और वहीं रहकर संभवतः अपना काम-धन्धा करते थे। आनन्दराम के पुत्रों तथा उनकी पत्नी के बारे में कवि ने कोई परिचय नहीं दिया है। 'पुण्यास्रव कथाकोश' के अतिरिक्त कवि ने त्रेपन क्रियाकोश, जीवंधर चरित, पद्मपुराण और हरिवंशपुराण आदि सभी कृतियों में 'आनन्दराम' का सादर उल्लेख किया है। जो उनकी अपने पिता के प्रति अनन्यतम भक्ति का प्रतीक हैं।

८ कर्णदास :

ये उदयपुर के रहने वाले थे तथा महाकवि की शास्त्र-सभा के प्रमुख सदस्यों में से थे। कवि से 'आध्यात्मवारहखड़ी' लिखवाने में इनका विशेष योग रहा था।

९ खेतसिंह :

खेतसिंह दि० जैन अग्रवाल मन्दिर, उदयपुर का टहलवा था, जो स्वयं भी पण्डित था। महाकवि दौलतराम ने इनका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

मण्डी धान की नगर मांहि, जहां जैन मन्दिर महा।
तहां टहलवा पंड़ितो इक, खेतसिंह नामा कहा॥

१० चतुरभुज :

ये भी आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख श्रोता थे। कवि ने इन्हें साधर्मी लिखा है। भगवद् भक्ति की ओर इनकी विशेष रुचि थी। आध्यात्मिक चर्चाओं में भी ये बड़ी रुचि रखते थे। महाकवि दौलतराम को इन्हीं से शास्त्र प्रवचन एवं साहित्य निर्माण की प्रेरणा मिली थी। 'पुण्यास्रव कथाकोश' में कवि ने इनका सादर स्मरण किया है।

११ चतुरभुज अग्रवाल :

एक चतुरभुज का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। ये दूसरे चतुरभुज हैं; जिन्होंने महाकवि को उदयपुर में जीवंधर चरित की रचना करने के लिए आग्रह किया था। ये अग्रवाल श्रावक थे तथा कालाडहरा (जयपुर) के रहने वाले थे। कवि के ये परम प्रशंसकों में से थे। तथा उदयपुर के अग्रवाल मन्दिर में चलने वाली शास्त्र-सभा के प्रमुख श्रोता थे। जब महाकवि ने बीस हजार श्लोक प्रमाण वाले 'महापुराण' का स्वाध्याय समाप्त किया तो इन्होंने उनसे 'जीवंधर चरित' को हिन्दी में रचने का आग्रह किया और इसके लिये निम्न आधार प्रस्तुत किया—

देव भाष गंभीर, संसक्रत विरला जानैं।
पंडित करै बखान, अलप मति नांहि वखानैं॥

जो ह्वै ग्रंथ अनूप, देस भाषा कै मांहो।
वांचै बहुत हि लोक, या महै संकै नांही॥

सव गिरंथ की वनि न आवै, तौ इह जीवंधर तनी।
अवसि मेव करनी सुभाषा, पृथीराज भी इह भनी॥६॥
सुनी 'चतुर' मुख बात, सोहि दौलति उरधारी।

—इस प्रकार इन्हीं के आग्रहवश दौलतराम ने 'जीवंधर चरित' की रचना प्रारम्भ की और संवत् १८०५ में उसे समाप्त कर हिन्दी को एक प्रबन्ध-काव्य भेंट किया।

१२ पण्डित चोमा :

ये उदयपुर के रहने वाले थे। स्वयं कवि ने इनको पंडित की उपाधि लगाकर स्मरण किया है। ये कवि के विशेष प्रशंसक थे तथा तत्वचर्चा में मग्न रहा करते थे। अध्यात्मवारहखड़ी के निर्माण में कवि को इनसे विशेष प्रेरणा मिली थी।

१३ पृथ्वीराज :

पृथ्वीराज संभवत: श्रावक थे तथा पं० दौलतराम की शास्त्रसभा के ये नियमित श्रोता थे। जीवंधर चरित की रचना करने में इन्होंने भी कवि से

आग्रह किया था; जिसका कवि ने ग्रंथ-प्रशस्ति में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

सव गिरंथ की वनि न आव, तौ इह जीवंधर तनी।
अवसिमेव करनी सुभाषा, प्रथीराज भी इह भनी ॥६॥

१४ फतेचन्द :

आगरा नगर के अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्यों में फतेचन्द का नाम भी उल्लेखनीय है। फतेचन्द अपने समय के प्रतिष्ठित श्रावक थे तथा शास्त्रों की चर्चा में सदैव तल्लीन रहते थे। ये प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन में जाते और नयी-नयी चर्चायें करके श्रोताओं की जिज्ञासा बढ़ाते तथा विषय का स्पष्टीकरण करते थे। महाकवि दौलतराम ने अपने "पुण्यास्रव कथाकोश" में—"फतेचन्द है रोचक नीके, चरचा करै हरष धरि जीके" इन शब्दों में इनकी प्रशंसा की है। फतेचन्द आगरा निवासी थे अथवा कवि के समान ये भी बाहर से ही वहां आये थे—इस सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं मिलती; क्योंकि कवि ने आगे "मिले आगरै कारन पाय" शब्द कहे हैं।

१५ वख्तावरदास :

इनका कवि ने अध्यात्म बारहखड़ी की प्रशस्ति में उल्लेख किया है। ये उनकी शास्त्र-सभा के प्रमुख सदस्य थे और कवि के विशेष सम्पर्क में रहते थे। तत्वचर्चा एवं धार्मिक-चिन्तन में विशेष योग देते थे। ये भी उदयपुर के रहने वाले थे।

× × × ×

१६ विहारीलाल :

श्रावक विहारीलाल आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। प्रतिदिन शास्त्र सभा में आते और ध्यान एवं मनन पूर्वक शास्त्र श्रवण करते थे। विद्वानों को शास्त्र-प्रवचन की ओर प्रोत्साहित करते और स्वयं भी उनकी सेवा में सदैव तत्पर रहते। दौलतराम ने इनका 'पुण्यास्रव कथाकोश' की प्रशस्ति में सादर स्मरण किया है और इनके सम्बन्ध में निम्न पंक्तियां लिखी हैं—

लाल विहारी हू नित सुनै, जिन आगम को नीकै मुनै ॥

१७ वेलजी सेठ :

इनका कवि ने अपनी दो कृतियों में उल्लेख किया है। ये हूंवड़ जाति के श्रावक थे तथा सागवाड़ा के निवासी थे। शास्त्र श्रवण में इनकी

गहरी रुचि थी। जीवन्धर चरित की रचना करने के लिए कवि से इन्होंने भी आग्रह किया था[1]। इसी तरह वसुनन्दि श्रावकाचार की टब्बा टीका करने के लिए उन्होंने विशेष आग्रह किया था।[2] जब तक दौलतराम उदयपुर में रहे, तब तक वेलजी सेठ इनके विशेष प्रशंसक रहे।

१८ भूधरदास :

'भूधरदास' महाकवि दौलतराम के समकालीन विद्वान् थे। पुण्यास्रवकथा कोश की प्रशस्ति में सर्व प्रथम इन्हीं का स्मरण किया गया है। ये ही वे भूधरदास हैं; जिन्होंने 'पार्श्वपुराण' जैसे प्रबन्ध काव्य की रचना संवत् १७८९ में समाप्त की थी। आगरा की अध्यात्म शैली के ये प्रमुख विद्वान् थे। कवि का सर्व प्रथम इन्हीं से परिचय हुआ और इन्हीं की प्रेरणा से वे साहित्य निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए। इनका विस्तृत परिचय प्रस्तावना ११ के पृष्ठ पर देखिए।

१९ मनोहरदास :

जब महाकवि उदयपुर में महाराजकुमार माधोसिंह के मंत्री बनकर गये तो उन्होंने वहां भी दि० जैन अग्रवाल मन्दिर में शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया और आगरा के समान ही उसे भी अध्यात्म शैली का रूप दिया। इस शैली के प्रमुख सदस्यों में मनोहरदास का नाम उल्लेखनीय है। मनोहरदास ने कवि से अध्यात्म बारहखड़ी को छन्दोवद्ध करने का विशेष आग्रह किया था; जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने उसकी प्रशस्ति में किया है।

---

१. सुनी चतुर मुख बात, सोहि दौलति उर धारी।
सेठ वेलजी सुघर, जाति हूमड हितकारी॥
सागवाड़ है वास, श्रवण की लगनि घणेरी।
सब साधरमी लोक, धरै श्रद्धा श्रुत केरी॥
तिननैं आग्रह करि कही फुनि, दौलति कै मन मैं वसी।
संस्कृत तैं भाष कीनी, इहै कथा है नौर सी॥७॥

२. बोले सेठ वेलजी नाम, सुनि नृप मंत्री दौलतिताम।
टब्बा होय जो गाथा तनौ, पुन्य उपजै जिसको घनौ॥

२० रतनचन्द दीवान :

पं० भंवरलाल न्यायतीर्थ ने इनका दीवान काल संवत् १८१३ से १८२५ तक का माना है। महाकवि दौलतराम से इनका परिचय उनके अन्तिम दिनों में हुआ था; जिसका उल्लेख उन्होंने अपने हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में "रतनचन्द दीवान एक, भूपत के परधांन" के रूप में किया है। इस पंक्ति के आधार पर इनका संवत् १८२५ के बाद भी दीवान होना जाहिर होता है।

दीवान रतनचन्द महापंडित टोडरमल की शास्त्रसभा के विशेष श्रोताओं में से थे और पंडित जी का पूरा सम्मान करते थे। भाई रायमल्ल ने अपनी पत्रिका में उस समय के जिन दो दीवानों का उल्लेख किया है; उनमें एक रतनचन्द तथा दूसरे दीवान बालचन्द छावड़ा थे। इन्होंने जयपुर में बधीचन्द जी के मन्दिर का निर्माण कराया था और मन्दिर निर्माण करने के पश्चात् उसे अपने बड़े भाई के नाम से प्रसिद्ध किया था।

२१ भाई रायमल्ल :

'भाई रायमल्ल' महाकवि दौलतराम के समकालीन श्रावक थे। धर्म एवं साहित्य प्रचार की उत्कट प्रेरणा लेकर वे विद्वानों की सेवा में जाते थे और उनसे नव साहित्य निर्माण का सानुरोध निवेदन करते थे। जहां भी उन्हें विद्वान एवं पण्डित दिखाई देते थे, वे उनके पास जाकर अपनी हार्दिक भावनाएं प्रस्तुत करते।

उनका जन्म संवत् १७७० के लगभग माना जाता है। बचपन में ही इनके ज्ञान की पिपासा बढ़ने लगी और २२ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने साहिपुरा के विद्वान् श्रावक नीलपति साहूकार से धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया और उसके पश्चात् ही वे पूर्ण संयमित जीवन व्यतीत करने लगे एवं ज्ञान-वृद्धि को ही एक मात्र अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। संवत् १८०५ के पूर्व ही वे महाकवि दौलतराम से मिलने उदयपुर पहुंचे। वहां की आध्यात्मिक शैली एवं वहां के श्रावकों धर्म प्रचार को देखकर उन्हें अत्यधिक सन्तोष हुआ। इस घटना का भाई रायमल्ल ने अपने पत्र में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"उहां दौलतराम के निमित्त करि दस बीस साधर्मी व दस बीस बायां सहित शैली का बाणा बणि रह्या—ता अवलोकन करि साहिपुरा पाछा आया।

'महाकवि दौलतराम' जब जयपुर आ गये; तब उन्होंने कवि को पद्मपुराण की भाषा करने के लिए विशेष आग्रह किया जिसका कवि ने उक्त ग्रन्थ प्रशस्ति में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट में स्व-पर विवेक।
दयावंत गुणवंत सुजान, पर उपकारी परम निधान।।
दौलतराम जु ताको मित्र, तासों भाष्यो वचन पवित्र।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ, तामें लोक शिखर को पंथ।।
भाषा रूप होय जो यह, बहुजन वांचै करि अति नेह।
ताके वचन हिये मै धार, भाषा कीनी मति अनुसार।।

इसके पूर्व भाई रायमल्ल महापण्डित टोडरमल के घनिष्ट सम्पर्क में आ चुके थे। उन्होंने सिंघाणा जाकर गोम्मटसार जैसे महान् एवं विशाल ग्रंथों की भाषा टीका करवाने में सफलता प्राप्त की।[1]

महापण्डित टोडरमलजी भी भाई रायमल्ल से काफी प्रभावित थे। उन्होंने निम्न शब्दों में उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है—

रायमल्ल साधर्मी एक, धर्म सधैय्या सहित विवेक।
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यहु उत्तम कारज थयो।।

संवत् १८२१ में जयपुर में जो इन्द्रध्वज महोत्सव हुआ था, उसका भाई रायमल्ल ने अतीव सजीव वर्णन किया है। उससे तत्कालीन जयपुर नगर की साहित्यिक, सांस्कृति एवं धार्मिक गतिविधियों का भलीभांति परिचय मिलता है।

संवत् १८२७-२८ में रायमल्ल मालवा देश गये हुए थे। वहां उन्होंने महाकवि दौलतराम द्वारा भाषा में निबद्ध आदि पुराण एवं पद्मपुराण का प्रवचन किया। दोनों ग्रन्थों को सुनकर सभी श्रावक हर्षित हो गये और उनमें स्वाध्याय की रुचि में वृद्धि हुई। उसी समय वहां के श्रावकों ने भाई रायमल्ल से दौलतराम के द्वारा हरिवंश पुराण की भी टीका करने का निवेदन

---

१ शुभ दिन टीका प्रारम्भ हुई..........वे तो टीका बणावते गये। हम बांचते गये। बरस तीन में चारि ग्रंथां की ६५००० टीका भई। पीछे जयपुर आए।

कया। जिससे इस महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय भी सुगमता से हो सके भाई रायमल्ल ने वहीं से दौलतराम को पत्र भेजा; जिसमें सारी वस्तु स्थित का दिग्दर्शन कराया। महाकवि को भाई रायमल्ल का आग्रह स्वीकार करना पड़ा। इस घटना को कवि ने हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में उल्लेख किया है।

२२ रिषभदास :

'पुण्यास्रव कथाकोश' की रचना में तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करने की ओर सबसे अधिक प्रेरणा देने वालों में रिषभदास का नाम उल्लेखनीय है। इन्हीं के उपदेश से कवि मिथ्याचरण त्याग कर सम्यक आचरण की ओर प्रवृत्त हुए थे। महाकवि ने रिषभदास की प्रशंसा में निम्न पंक्तियां लिखी हैं—

> रिषभदास उपदेस सौं, हमै भई परतीति।
> मिथ्यातम को त्यागि कैं, लगो धरम सौ प्रीति ।।२१।।
> रिषभदेव जयवन्त जग, सुखी होहु तसु दास।
> जिन हमकौं जिन मत विषै, कीयो महा गढास ।।२२।।

२३ सदानन्द :

सदानन्द आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। कवि ने "सदानन्द है आनन्द मई, जिनमत की आज्ञा तिह लही"—शब्दों में इनका स्मरण किया है।

२४ सीताराम-सवाईराम

ये दोनों महाकवि के समय के ग्रन्थ-लेखक थे। महाकवि हरिवंश पुराण की भाषा-टीका बोलते गये थे और ये दोनों उसे लिखते गये थे। उसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

> सीताराम जु लेखका और सवाई राम।
> तिन पर लिखवायो जु यह, बहुत कथा को धाम ।।

२५ हरिदास :

ये उदयपुर के रहने वाले थे। यहां पर कवि द्वारा संचालित शास्त्र-सभा के ये प्रमुख श्रोता थे तथा उनके विशेष सम्पर्क में रहते थे। कवि ने 'अध्यात्म बारहखड़ी' की प्रशस्ति में इनका विशेष रूप से स्मरण किया है।

२६ हेमराज :

कवि ने हेमराज का 'पुण्यास्रव कथाकोश' में स्मरण किया हैं और उनके सम्मान में निम्न पद्य लिखा है—

हेमराज साधर्मी भलै, जिन बच मांनि असुभ दल मले।
अध्यातम चरचा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै।।

हेमराज जैन धर्मावलम्बी थे जिनवाणी में उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। तथा अध्यात्म-चर्चा में संलग्न रहा करते थे।

आगरा के ही अन्य पाण्डे हेमराज संभवतः उनसे भिन्न विद्वान् थे।

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल

जीवन्धर स्वामि चरित्र

रचनाकाल : संवत् १८०५ आषाढ़
शुक्ला २ गुरुवार

रचनास्थान : उदयपुर (राजस्थान)

दोहा

मंगल पाठ—

वरधमान भगवान कौं, करि वंदन मनलाय ।
जिनवानी कौं करि प्रणति, नमि गौतम के पाय ।।१।।

जीवंधर मुनिराय की, कहौं कथा सुखदाय ।
वुद्धि पराक्रम रस भरी, सुनौ भव्य मनलाय ।।२।।

राजा श्रेणिक द्वारा सुधर्माचार्य से प्रश्न—

एक दिवस श्रेणिक नृपति, समवसरण कै मांहि ।
लखत फिरत है जिन विभव, जा सम जग में नाहि ।।३।।

लखि सोभा चउ वननि की, उपज्यो हर्ष अपार ।
वन असोक मैं वृक्ष तलि, देख्यो मुनि अविकार ।।४।।

ध्यानारूढ़ विसुद्ध जो, मगन महा परवीन ।
मानौ वैठो सिद्ध ही, निज स्वरूप लवलीन ।।५।।

देखि अवस्था धीर की, सफल करे नृप नैन ।
दे प्रदक्षणा करि प्रणति, धन्य धन्य कहि वैन ।।६।।

आय सुधर्माचार्य पै, पूछो प्रसन रसाल ।
स्वामी देख्यो साधु इक, रहित सकल जगजाल ।।७।।

अति सुरूप सुंदर महा, जो[1] वन मांहि महंत ।
जीत्यां वैठो मदनमद, निसचल निरमल संत ।।८।।

तन वच मन वुधि कै परै, पहुँच्यो मुनि वरवीर ।
परमतत्व परचै किया, तिष्ठै गुण गम्भीर ।।९।

कौन पुरिष ए सौ कहौं, करि किरपा गुरदेव ।
सुरनर मुनिवर खेचरा, करैं तिहारो सेव ।।१०।।

---

1. मूलपाठ-जीवन

तव सुधर्म गुरु वोलिया, सुनि हो श्रेणिक भूप।
कहौं कथा जोगिन्द्र की, अद्भुत अति रस रूप ॥११॥

चौपई

कथा का प्रारम्भ—

याही 'भरतक्षेत्र' कै मांहि, 'हेमांगद' इक देश वसांहि।
तहां 'राजपुर' नगर अनूप, राज करै सत्यंधर भूप ॥१२॥

पटरानी 'विजया' गुण खांनि, जा समान रति रूप न मांनि।
मंत्री 'काष्टांगारिक' एक, प्रोहित 'रूद्रदत्त' अविवेक ॥१३॥

महारानी विजया द्वारा स्वप्न दर्शन—

एक समै विजया पटरानि, देखे सुपना दुख सुखदांनि।
आप उतारि धरयो मुझ सीस, मुकुट जु सत्यंधर धरणीस ॥१४॥

अष्ट हेम घंटा जुत सोहि, चिह्न राज कौ मुखि इह होहि।
वहुरि लख्यो सुपिना मैं एक, तरु असोक आश्रित अविवेक ॥१५॥

तानैं तरु काट्यो ता मांहि, ऊग्यो वालवृक्ष सक नाहिं।
लह लहाट करतो तत्काल, अति सुंदर रसरूप रसाल ॥१६॥

स्वप्न फल—

प्रात समैं राजा ढ़िग जाय, सुपिन भेद भाखे समुझाय।
नृप बोले रानी सुनि वात, निश्चै होय हमारी घात ॥१७॥

अष्ट लाभ हैं तुमकौं सहीं, लहि हौ सुत राजा अतिमही।
सुनि करि नृप वियोग नृपनारि, भई सोक जुत अर्थ विचारि ॥१८॥

राजा सुभ वचननि तैं पोषि, सोक रहित कीनी अति तोषि।
कैयक दिवस वीतिया अबै, रह्यो गर्भ रानी कौं तबै ॥१९॥

चय करि सुर्ग थकी सुरमहा, उयर मझार वास जिह लहा।
जैसे सरद विषै सर मांहि, राज हंस थिरता जु धरांहि ॥२०॥

गंधोत्कट वणिक् के पुत्र का अभाव—

और सुनौं इक बात रसाल, इक गंधोत्कट वणिक्क विसाल ।
अति धनवंत महा मतिवंत, ताहि पुरि निवसै गुणवंत ।।२१।।

एक दिवस वड भाग प्रभाव, देखे सीलगुप्त मुनिराव ।
नाम 'मनोहर' वन है एक, तहाँ विराजे परम विवेक ।।२२।।

तीन ज्ञान धारक जगनाव, तिनकौं नमि पूछयौ निज भाव ।
हे प्रभु, मेरे सुत बहु भये, अलप आय हूँ मरि मरि गये ।।२३।।

हुइहैं दीरघ आयु हु कोइ, मुनि बौले, अद्‌भुत सुत होइ ।
मन धरि बात सेठ इक सुनौं, पाप पुन्य के नाटक सुनौं ।।२४।।

पुत्र प्राप्ति के लिये भविष्यवाणी—

पुत्र होयगौ तुम्हरै अवै, ततखिण मृत्यु होयगौ तवै ।
तुम जै हौ नांधन वन ठांम, तहां पाय हौ सुत गुणधाम ।।२५।।

महा मंडलिक नृपपद धार, अति विद्यानिधि अति अविकार ।
सकल त्यागि भव भाव महंत, तद्‌भव मुकत होई सो संत ।।२६।।

ये मुनि वचन सेठ कौं कहे, ते इक जखिणी नैं उर गहे ।
सुत अर माता कौ उपगार, करिवा गई भूप कै द्वार ।।२७।।

राज लोक मै पहुँचौ सोइ, रानी की अति वल्लभ होय ।
गरुड यंत्र तैं रक्षा करी, धर्मवंत सेवा चित धरी ।।२८।।

एक समय मधुरितु परताप, फूले तरवर हर संताप ।
काहू दिवस राज दरबार, प्रोहित आयो प्रात मझार ।।२९।।

राजा सत्यन्धर की उदासीनता—

आभूषण रहिता पटरानि, देखी विजया गुण की खांनि ।
पूछयो कहां विराजै राव, मेरै नृप दरसन कौ भाव ।।३०।।

रांनी भाख्यो पोढे भूप, देख्यो जायन नृप को रूप ।
ऐसे वैंन सुने द्विज जवें, निमत विचार्यो मन मैं तवै ।।३१।।

होय अमंगल नृप कै सही, या मांहै कछु संसै नही।
बाहुरि आयो मंत्री गेह, प्रात समै हीं करि अति नेह ।।३२।।

राज पुरोहित द्वारा काष्टांगार को भड़काना—

प्रोहित स्वामी-धर्म तैं गयौ, ले एकांत कहत यों भयो।
काष्टांगारिक सुनि मुझ वात, करि तू तुरत राव कौं घात ।।३३।।

तेरैं राज होय तहकीक, मेरौं वचन न मांनि अलीक।
सुनि करि मंत्री प्रोहित वैंन, कांन मूंदि नीचे करि नैंन ।।३४।।

बोल्यो जोगि नही इह रीति, तुम भाषी सो वड़ी अनीति।
मैं जु करत हो वोछे कांम, करि किरपा नरपति गुणधांम ।।३५।।

मो कौं आप वरावरि कियों, अति दुर्ल्लभ मंत्री पद दियो।
तव वोल्यो प्रोहित जडमति, मेरो वचन झूंठ नहिं रती ।।३६।।

नृप सुत करिहै तेरो अंत, तातैं जतन करौ वुधिवंत।
अैसे कहि प्रोहित घर गयो, पाप प्रभाव रोग अति भयो ।।३७।।

दिन तीजैं नर देही त्यागि, नरकि गयो द्विज अघपथ लागि।
ताके वचन धारि परधान, आप मरण तैं डरचो अयांन ।।३८।।

काष्टांगार द्वारा विद्रोह—

नृप मारण की इच्छा धरी, धरम-करम की परिणति हरी।
द्वै सहस्र भट अपने किये, वहुत द्रव्य दे निज मैं लिये ।।३९।।

घेरचो जाय राजदरबार, तव भूपति नैं किये विचार।
गरुड यंत्र करि रांनी काढ़ि, लरिवा आयो आप गुणाढ़ि ।।४०।।

नृप दरसन करि कैयक भटा, काष्टांगारिक दल तैं फटा।
तिनकौं लारलेय नृप लरचो, भागौ मंत्री मन मैं डरचो ।।४१।।

सत्यन्धर की मृत्यु—

तव मंत्री सुत सेना लाय, मिल्यो तात सौं तुरतहि आय।
पिता पुत्र दोऊ इक होय, हत्यो जुद्ध मैं भूपति सोइ ।।४२।।

काष्टांगारिक राजा भयो, कृतघन स्वामि धर्म तैं गयो ।
जैसैं सठ करि सविष अहार, चाहै भूख तनौं परिहार ।।४३।।

जिम कोई करि कपटी मित, चाहै जड़मति भयो नचित ।
ज्यौं हिंसक मत धरि खल होइ, चाहै सुगति सु कैसै होय ।।४४।।

तैसैं मंत्री अधम अयांन, लियो राज तजि धर्म विग्यांन ।
स्वामि द्रोह सौ और न पाप, पापी लहैं नरक संताप ।।४५।।

विजया रानी की रक्षा—

गरुड यंत्र परि कंरि असवार, जखिणी ह्वै रानी की लार ।
लेय गई जु मसांणनि मांहि, रोवत राखी संसै नाहि ।।४६।।

पुत्रोत्पत्ति—

करी रात्रि कौं रक्षा महा, तहां पुत्र नैं जनम जु लहा ।
महा मनोहर रूप रसाल, मांनौं ऊग्यो चंद्र विसाल ।।४७।।

रानी कै नृप कौ जु वियोग, पति विछोह सौ और न सोग ।
तातैं उछत्र कछु नहि कियो, वारवार भरि आवै हियौ ।।४८।।

तुरत उठायो जखिणी वाल, रतन दीप जोये ततकाल ।
देखी रांनी विमनो इसी, दौं करि जरी लगा ह्वै जिसी ।।४९।।

यक्षिणी द्वारा उद्वोधन—

तव जखिणि दीयो उपदेश, सुनि हे रानी धर्म जिनेस ।
सव संवंध विनश्वर जानि, सव थानक दुस्थांनक मांनि ।।५०।।

धन जोवन क्षण भंगुर देह, दीप सिखा सम जीतव एह ।
अर इह काय असुचि कौ ठांम, यासौं प्रीति तजैं गुणधाम ।।५१।।

राज जगत मैं जानौं इसौ, चपला चमतकार ह्वै जिसौ ।
अविग्र पुन्य वीमूढ़ मति देह, सव वस्तुनि स्यौं कियो सनेह ।।५२।।

ते सव जांहि अवसि इह रीति, दाह दायनी जग की प्रीति ।
छति वस्तु सौं रति नहि करै, अर अछती की चाह न धरैं ।।५३।।

विनासीक जानैं जग भाव, उत्तम जन कौ इहै स्वभाव।
सब व्यापक है जाकौं ज्ञान, सो सर्वज्ञ देव भगवान ॥५४॥

तानैं सकल लखी परजाय, कवहू कोई थिर न रहाय।
काहू सौं करिवौ नहीं प्रीति, परद्यम तौ आछी इह रीति ॥५५॥

अर जौ कहूँ प्रीति हू करैं, तौ इह वात हिये मैं धरैं।
वरतमांन अर ह्वै गौ जोहू, इन सौं प्रीति होय तौ होहु ॥५६॥

गई वस्तु सौं कैसी प्रीति, वृथा सोक धरिवौ सठ रीति।
कौंन पुरिष अर कौनु जु नारि, जीव त्रिलिंग रहित अविकारि ॥५७॥

लखि झूंठौ संसार चरित्र, कर्म जोग संबंध विचित्र।
चरिम सरोरी सुत इह जांनि, अति परतापी पूजि प्रवांनि ॥५८॥

दुष्ट शत्रु कौं करैं निकंद, तो कौं उपजावे आनन्द।
करि सनाँन लै जोगि अहार, समाधान धरि मन मैं सार ॥५९॥

सोक किये भरतार न मिलैं, काल पदारथ सव कौं गिलै।
भिन्न भिन्न सबकी गति जांनि, कर्म भेदतैं भेद प्रवांनि ॥६०॥

इत्यादिक युक्तिनि समुझाय, सोक रहित कीनी सुत माय।
आप रही याही कै पासि, महा मित्रता रीति प्रकासि ॥६१॥

गंधोत्कट को मृत पुत्र की प्राप्ति—

दुख मैं कवहु न छांडे संग, इह मित्रनि कौ धर्म अभंग।
अव आयो गंधोत्कट जहां, मृतग पुत्र नांषै नर तहां ॥६२॥

नांषि आपनौ मिरतक वाल, जात हुतौ घर कौं ततकाल।
सुन्यौं तवै सुस्वर गंभीर, रानी सुत कौ सेठ सुधीर ॥६३॥

जीवंधर की प्राप्ति—

तवै चितारे मुनि के वैन, चित मैं पायो वहुतहि चैन।
जीवो जीवो वालक महा, पुण्य प्रभाव जनम इह लहा ॥६४॥

हाथ पसारे करि अति नेह, रानी जान्यौं श्रेष्ठी एह।
दियो पुत्र तव ताकै हाथ, जौ ह्वैहै पिरथी को नाथ ॥६५॥

समुझायो फुनि या विधि ताहि, पालौ सेठ जतन करियाहि ।
काहू पासि भेद मति कहौ, इहैं वात गाढ़ी करि गहौ ।।६६।।

यों ही करिहौं निहसंदेह, यों कहि सेठ ले गयो गेह ।
सेठ नारिकौ नंदा नाम, तासौं सेठ खिज्यो गुणवांम ।।६७।।

तो मै वुद्धि नही है मूलि, कहौं कहां लौं तेरी भूलि ।
विनु परखें ते जीवत मांन, नांखन सौंप्यो पुत्र निधांन ।।६८।।

दीरघ आय मनोहर काय, इहै पुत्र तोकौं सुखदाय ।
लै लै यांहि प्रीति करि पालि, अर अव सौं सव भूलि जु टालि ।।६९।।

तव हरषी सेठानी महा, अति आदर तें वालक गहा ।
जीतै वाल भांनु कौ एह, अपराजित वलवंत अछेह ।।७०।।

पुत्रोत्सव

कियो सेठ उछाह अपार, जैसो पुत्र जनम व्योहार ।
करी क्रिया सूत्रोकति सवै, धरयो नांम जीवंधर तवै ।।७१।।

धरयो तवै जीवंधर नाम, जासौं सुधरै सवही काम ।
अव विजया जखिणी ले लार, गरुड यंत्र पर ह्वै असवार ।।७२।।

गई पित्रवन तै ततकाल, दंडकवन पहुँची गुणमाल ।
जहां परमती तापस रहैं, धरि आश्रम कंदादिक गहैं ।।७३।।
तहां रही निज नांम छिपाय, पति वियोगनी दुरवलि काय ।
जखिणी शोक हरण कै हेत, रानि कौं उपदेशहि देत ।।७४।।

जे प्राचीन कथा सति रूप, ते याकै ढिग कहै अनूप ।
भाखै इह झूठौ संसार, साचो जिन मारग भवतार ।।७५।।

जिन जिन मांहि आपदा परी, अर आपद मैं थिरता धरि ।
तिन तिन की परकासै वात, जिम सुनि या सहु सोक विलात ।।७६।।

जति अर श्रावक कौ जो धर्म, सो सहु प्रकट करै विनु भर्म ।
या विधि जीखणी दे उपदेस, करी धर्म जुत याहि विसेस ।।७७।।

छंद वेसरी

अव तुम सुनौं और इक वाता, जा विधि मिलै अष्ट ही भ्राता ।
विजया की द्वै सौकि वखानी, सत्यंधर की ल्हौरी रांनी ।।७८।।

रति इक अवर अनंग पताका, तिनकै पुण्य कर्म परिपाका ।
मधुर वकुल द्वै पुत्र विसुद्धा, सुनि जिन धर्म भये प्रतिबुद्धा ।।७९।।

धारे श्रावक व्रत्त सवैही, जिनके धारें मोह दवैही ।
अर सेनापति हौ राजा कै, नांम विजैमति सुभ मति तांकै ।।८०।।

होती जयावत्ती सुभ नारी, ताकें देवसेन सुत भारी ।
अर प्रोहित हौ सागर नांमा, हुती श्रीमती ताकै भांमा ।।८१।।

जांके पुत्र महा परवीना, वुद्धिषेण विद्या लवलीना ।
अर इक श्रेष्ठी हौ धनपाला, ताकै श्रीदत्ता सुभचाला ।।८२।।

हुती नारि ताके गुणवंता, पुत्र भये वरदत्त कुलवंता ।
अर आगैं मतिसागर नांमा, मंत्री हौ नृप कै अभिरामा ।।८३।।

ताकै नारि अनुपमा रूपा, जाकै मधुमुख पुत्र प्ररूपा ।
मधुर वकुल अर ए चउ जोधा, मिलि हूये षट् सुभट प्रबोधा ।।८४।।

षट द्रव्यनि से भासै भाई, एक क्षेत्र वासी सुखदाई ।
रहैं सेठ घरि कला विसुद्धी, जीवंधर के सखा सुवुद्धी ।
जीवंधर जुत सातौं एही, सत्य सुरूपी परम सनेही ।।८५।।

सप्त तत्व ज्यौं लोक मझारे, सौहैं सातौं अति गुण भारे ।
वालकेलि अति चाव कराए, महा परांयण प्रीत धराए ।।८६।।

राति दिवस विछुरैं न कवैही, जिनकौं वहुतहि विरद फवैही ।
बहुरि सेठ की नारि जु नंदा, ताकै सुत नंदाब्य अनंदा ।।८७।।

भयो महाहितकारी वीरा, तव ए आठ भये अतिधीरा ।
अष्ट गुणनि से आठौं एही, सब सुरूप सुन्दर सुचि देही ।।८८।।

वालक्रीड़ा एवं तपस्वी से भेंट—

एक दिवस या पुर कै पास, कंवर करत हे केलि विलास।
लाख तनी गोली करि वाला, खेलत हे रस रूप रसाला ।।८९।।

एक पुरिख तापस कै रूपा, जीवंधर कौं देखि अनूपा।
पूछन लागौ होय खुश्याला, केती दूर नगर है लाला ।।९०।।

वोले कंवर सवै इह जांनै, वालक चेलक पंथ पिछानैं।
तू अति वृद्ध ज्ञान न तोकौं, किती दूर पुर पूछै मोकौं ।।९१।।

तरवर सरवर वाग विसाला, वहुरि देखिए खेलत वाला।
तहाँ क्यौं न लखिये पुरनीरा, संसै कहा राखिये वीरा ।।९२।।

ज्यौं लखि धूम अगनि हूँ जाने, त्यौं वालक लखि पुर परवानैं।
जीवंधर के सुनिये वैनां, तापस कीये नीचे नैनां ।।९३।।

कांति कंवर की अर सव चेष्टा, देखी वृद्ध तापसी श्रेष्ठा।
अर सुनि सुभसुर सुंदर वांनी, जानी वालक है अति ज्ञानी ।।९४।।

ऐसा[1] मान्य जगत जन नांही, परम पुरष प्रगटे भू मांही।
महाराज परकाज सुवारा, चिह्नन करि लखिए गुणभारा ।।९५।।

वहुरि वंस परखन कौं एही, वोल्यो सुनिहो कंवर सनेही।
भोजन देहु भूख मुझ लागी, तू वड घर सुत है वड़भागी ।।९६।।

तव दैनौं करि भोजन याकौं, लाये लाला कह्यो पिता कौं।
भोजन तापस कौं दे ताता, तुम हौ दाता जगत विख्याता ।।९७।।

विनै जुक्त सुनि सुत के वैनां, गंधोतकट पायो अति चैनां।
धन्य भाग्य अपनें लखि भाई, लियो कंवर को कंठ लगाई ।।९८।।

कह्यो सेठ सुनि प्राण अधारा, हम ए करि हैं लार अहारा।
तुम पहली जीमौं निहचिंता, जीवंधर जीवनि के मिंता ।।९९।।

करि सनांन जीमैं हम पाछैं, तापस कौंसु जिमांवैं आछैं।
जनक वचन सुनि भोजन कारन, वैठे जीवंधर जगतारन ।।१००।।

---

१ मूल पाठ एमा

सकल सखा जुत अद्भुत बालक, अति मन भावन पर दुख टालक।
तहां वाल लीला करि लौटे, रोवत खिजत महागुण मोटे ॥१०१॥
उस्न अन्न हूं जीमौं कैसे, मांसौं बोलैं वचन जु अैसै ।
मा कौं अति विह्वल जव कीनी, तव तापस इह सिक्षा दीनी ॥१०२॥
तो कौं रोवौ जोगि न लाला, तू मंगल मूरति गुणमाला ।
यद्यपि तेरी वय है छोटी, तौ पनि तो मैं मति अति मोटी ॥१०३॥
धीरज आदि गुणनि करि भाई, तू सव जग कौ सिखर दिखाई ।
सुनि तापस के वचन विवेकी, बोले आप भाव करि एकी ॥१०४॥
रोवे के गुन तुम नहि जांनौ, मेरी बात हिये परवानौ ।
जाय सलेखम जो दुख दाई, नेत्र विमल ह्वै अति अधिकाई ॥१०५॥
तितै अहार हु सीतल होई, यांमैं तौ औगुन नहि कोई ।
इन वचननि तापस सुख पायो, अर माता कौ हियो सिहायो ॥१०६॥
सकल सखा जुत पुत्र जिमाए, पाछैं श्रेष्ठी कौं पधराए ।
तापस कौं अति तिरपत कीयो, आछी विधि तैं भोजन दीयो ॥१०७॥

तव तापस वोल्यो सुभ वैंना, कंवर देखि हरखे मुझ नैना ॥१०८॥
देखि जोगि ता मोहित हूवो, भयो जाय नहि यातैं जूवो ।
जौ तुम आज्ञा द्यो सुखदाता, तौ मैं याहि पढ़ाऊं ताता ॥१०९॥
सूत्र समुद के जल तैं याकौ, धोऊं सनमति सुगुण भरा को ।
सुनि करि बोले सेठ प्रवीनां, मैं हौं जिन मारग आधीनां ॥११०॥
आंनमती कौं सिर नहि नांऊं, आंन धर्म कै पासि न जाऊं ।
नमसकार विन तूं अभिमांनी, दुख पावैं मन मांहि निदांनी ॥१११॥
तव वोल्यो तापस सुभ वैंनां, बात हमारी सुनि दिढ़ जैनां ।
नगर सिंहपुर कौ मैं भूपा, आरिजवर्मा नांम परूपा ॥११२॥
वीरनंदि पैं मुनि व्रत लीयो, धृतिषेण सुतकौं नृप कीयो ।
सम्यक सहित मुनीसर व्रत्ता, पाले जगतैं होय निवृत्ता ॥११३॥

पछैं दाह जुर उपज्यो मोकौं, कहौ कहांली वेदन तोकौं ।
तव मैं भयो भिष्ट आचारा, चारित रहित सांग इह धारा ।।११४।।

जिनमत की श्रद्धा है मेरे, जैसी उर मैं श्रद्धा तेरे ।
धर्म भ्रात मोकौं तुम जांनौ, परमत कौ संदेह न आंनौ ।।११५।।

समाचार तांके सुनि सारा, परख्यो ताकौं वहु परकारा ।
तव पढ़िवा सौंप्यो सिवगांमी, ताकै ढ़िग जीवंधर स्वामी ।।११६।।

विद्याध्ययन—

अर सौंपे याके सव मित्रा, जे सव वातनि मांहि विचित्रा ।
सो समदिष्टी इनकौं लैकै, कीये पंडित विद्या दैकै ।।११७।।

शस्त्र शास्त्र आदिक वहु विद्या, छंदादिक सहु पद्यर गद्या ।
कुंवर पढ़ाए महा सुवुद्धी, थोड़े दिन में भये प्रवुद्धी ।।११८।।

ज्यौं दीपति करि सूरिज सौहे, त्यौं विद्या करिए मन मोहे ।
वालदसातैं जोवन मांही, आये जीवंधर सक नांही ।।११९।।

तव आरिजवर्मा सुखदाई, तजि परभेष हुवो मुनिराई ।
गहि निज ध्यांन लह्यो शिवधामा, जहां विराजै केवल रामा ।।१२०।।

अव तुम सुनौ कंवर परतापा, नगर तनौ मेट्यो संतापा ।
महा सुभट वर वीर सु धीरा, पर जीवनि की हरइ जु पीरा ।।१२१।।

दोहा

कालकूट भील द्वारा नगर में उत्पात—

कालकूट नामा कुधी, मुखिया भीलनि मांहि ।
पापी प्रगट्यो ता समैं, जाकै करुणा नांहि ।।१२२।।

अति कारौ अति कुटिल जो, वहै अकारौ सोइ ।
सुनते जाकौ नाम ही, धीरज धरै न कोइ ।।१२३।।

धनुष वांन धारयां रहै, राती आंखि विरूप ।
चढ़ी है र भ्रकुटी सदा, रुद्र ध्यांन कौ रूप ।।१२४।।

अश्व पूंछ से मूंछ के, बाल कठोर महांन।
देख्यो जाय न दुष्टधी, दुरजन पाप निधांन ॥१२५॥

आय परै जब गांव परि, थांभि सकै नहिं कोय।
लूटै धन पिरथी तनौं, संक धरै नहि सोय ॥१२६॥

काल कूट विष सारिखौ, काल कूट इह भील।
अति कुसील अति नीच नर, दीखै महा कुचील ॥१२७॥

जानि जेक इह तिमर ही, धरि मांनुष की काय।
रवि किरणनि करि डरि कुधी, विचरै नांम छिपाय ॥१२८॥

निरदय सेना जा कनैं, सींगी नाद करंत।
अभख अहारी गौ हतक, करै पसुनिकौ अंत ॥१२९॥

ज्यौं तमाल वृक्षांनि कौ, वाग होय अति स्याम।
त्यौं कारौ भीलांनि कौ, दल आयौ अघ धाम ॥१३०॥

डरे नगर के लोक सब, देखि भील कौ जोर।
नहीं जानिये ह्वै कहा, उपज्यो घरि घरि सोर ॥१३१॥

घेरी गाय सुनग्र की, घेरे पसू अछेह।
तब काष्टांगारिक नृपति, करी घोषणा एह ॥१३२॥

जो लरि दुष्ट किरातसौं, गाय छुडावै कोय।
सो मेरी गोदावरी, पुत्री कौ पति होय ॥१३३॥

जीवंधर द्वारा उपद्रव का दमन—

इहै घोषणा सुनि सुधि, जीवंधर सुकुमार।
सात सखा जुत साह सुत, ले आयुध रण सार ॥१३४॥

चले तुरत भीलांनि परि, ज्यौं तम परि रविधांम।
इनकै पीछैं भूप सुत, कालांगारिक नांम ॥१३५॥

सोऊ चाल्यो देखिवा, इन कौ युद्ध विसाल ।
लरे सेठ सुत भील सौं, जीवंधर गुणमाल ॥१३६॥

आठौं भाई एक ह्वै, परे भील दल मांहि ।
वांण चलाये या विधी, जाकरि दुष्ट हटांहि ॥१३७॥

रण विद्या मैं निपुन ए, धनुरवेद के मूल ।
सर सांधै अति सीघ्र ही, लखि न सकैं प्रतिकूल ॥१३८॥

आंवन दें नहि वांन पर, आवत वांण कटांहि ।
चोट चुकावैं पारकी, पर कौं चोट करांहि ॥१३९॥

रांकैं अपने वांन तैं, पर के वांन अनेक ।
जाय संचरै पर सिरैं, धारैं जुद्ध विवेक ॥१४०॥

या विधि रण करि रिपुनि कौं, जीति छुडाए जीव ।
जीवंधर को लोक में, प्रकटी कला अतीव ॥१४१॥

ज्यौं दुरनय कौं दलि महा, जय पावै नय सार ।
त्यौं दल मलि दल दुष्ट कौं, जीत्यो साह कुमार ॥१४२॥

वरचो विजै लखिमी प्रगट, आयो नगर मझार ।
अपनैं जस करि दस दिसा, पूरवतौ अविकार ॥१४३॥

कुंद पहुप अर हंस पख, जा सम उज्जल नांहि ।
ऐसौं उज्जल परम जस, प्रगट्यो पिरथी मांहि ॥१४४॥

देह कंवर कौ आंव तरु, पहुप सूर परण रूप ।
कीरति भई सुगंधता, अद्भुत अतुल अनूप ॥१४५॥

लोक नेत्र भमरा भये, परैं अत्रिप्ता होय ।
या विधि आये घर विषैं, लोक वेढिया सोय ॥१४६॥

राज पुरोहित भूप पैं, कही वात परकासि ।
कंवर लार ह्वै साह सुत, लरे वहुत गुणरासि ॥१४७॥

तव वुलाय नृप पूछिया, तुम आठनि मैं कौंन ।
जीत्यो भील गणांनितैं, सो भाखौ तजि मौंन ॥१४८॥

नंदाढ्य के साथ गोदावरी का विवाह—

एक वाक्य बोले सबै, लखि जीवंधर सैंन ।
जीत्यो है नंदाढ्य इह, जाके मृग से नैंन ॥१४९॥
तव विवाह विधि करि नृपति, परणायो नंदाढ्य ।
दीनी पुत्री आपनीं, गोदावरी गुणाढ्य ॥१५०॥

इति श्री जीवंधरस्वामिचरित्रे महापुराणानुसारेण बालावबोध भाषायां बाललीला-विद्याभ्यास भील-विजय-गौविमोचन नंदाढ्य-विवाह-प्ररूपणो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीय अध्याय

अरिल छन्द

गगनवल्लभ के विद्याधर राजा रानी वर्णन—

सुनौं और इक बात महारस की भरी,
भरत क्षेत्र वैताढ्य श्रेणि दक्षण परी ।
अमर नगर सम नगर गगनवल्लभ जहां,
विद्याधर भूपाल गरूडवेगो तहां ॥१॥
भाइनि काढ्यो सोइ थांन तैं भूपती,
तव तिन कियो विचार रहन कौ सुभमती ।
रतनदीप कै मांहि नांम मनु जो दयो,
परवत देखि मनोगि चित्त हरषित भयो ॥२॥
जहां वसायो नगर नांम रमणीय जो,
तहां रह्यो खग भूप क्षांति रस पीय जो ।
ताकै नारि स्वरूप धारिणी नांम है,
सुता नांम गंधर्वदत्ता गुणधांम है ॥३॥

एक दिवस गंधर्वदत्ता उपवासिया,
जाय देहुरै पूजि देव गुण रासिया ।
आय पिता कौं दई आसिका सुभकरी,
देखी खेचरराय ताहि जोवन भरी ॥४॥

तव पूछ्यो परधांन नांममति सागरा,
देहि कौंन कौं याहि कहौ गुण आगरा ।
तव वोल्यो परधांन सुनौं भूपाल जी,
मंदिरगिरहूं गयो सकल दुख टालजी ॥५॥

नंदन वन कै मांहि पूर्व दिसि देहुरा ।
तहां वंदिया देव जगत के सेहुरा ।
दरसन कारणि नांम विपुलमति चारणा,
आये हे जोगीस जगत के तारणा ॥६॥

करि प्रणांम मै सुन्यों धर्म जिनराय कौं,
जगत पूजि जग पार करण सुखदाय कौ ।
वहुरि पूछियो एह कहौ जग तातजी,
मेरे नृप की सुता रूप विख्यात जी ॥७॥

ताहि कौ पति ह्वै कौंन तवै मुनि वोलिया,
मुझ परि होय दयाल अवधि द्रिग खोलिया ।

गंधर्वदत्ता के विवाह की भविष्यवाणी—

भरत क्षेत्र कै मांहि देस हेमांगदा,
तहां राजपुर नगर हरै सुरपुर मदा ॥८॥

सत्यंधर भूपाल सत्य भूषण धरा,
ताकै विजया नांम महारांनी परा ।
तिन कौ सुत मतिवांन वरै तांकौ सही,
कौन रीति करि सोहु धारि तू उर मही ॥९॥

तेरे नृप की सुता धारिहै धारणा,
जो नर वीन वजाय होय चित हारणा।
सो बहु गुण कौ नाथ हाथ मेरौ गहै,
और जगत के मांहि मोहि कोइ न लहै ।।१०।।

सुनि परतज्ञा एह आय हैं बहु नरा,
वीन स्वयंवर मांहि भूचरा खेचरा ।
कोई ताहि रिझाय सकै नहि नागरा,
सत्यंधर कौ पूत गुणनिकौं सागरा ।।११।।

वीन वजाय रिझाय ताहि परनैं सही,
हौंनहार ए वात सकल मोसौं कही ।
ज्यों मो कौं समुझाय कह्यौ मुनिरायजी,
त्यों मैं तुम सौं कह्यो सु औसर पायजी ।।१२।।

सुनि मंत्री के वैन सोच करि भूपती,
वोल्यो सुनि मंत्री सचित्त धरि सुभमति ।
ताकौ आंवन इहां होइ किस रीति सौं,
कैसे सो गुणवांन विवाहै प्रीति सौं ।।१३।।

प्रकट कह्यो परधांन भूपपै यों तवै,
कह्यो मोहि संजोग साधुन यों सबै ।
नगर 'राजपुर' मांहि महा धरमातमा,
'वृषभदास' इक सेठ दास परमातमा ।।१४।।

जाकै सुन्दर नारि नांम 'पदमावती',
ताकै सुत 'जिनदत्त' सकल ए जिनमती ।
एक दिवस पुर पासि प्रीतिवर्द्धन वना,
तहाँ विराजैं आय केवली निजधना ।।१५।।

सागरसेन सु नांम ज्ञांन के सागरा
त्रिभुवन गुरु जगदीस गुणनिके आगरा ।

पिता सहित जिनदत्त पूजिवा आइ है,
दे परदक्षणा जोरि हाथ सिरनाइ है ।।१६।।

गरुडवेग हू जहां जायगौ दरसनैं,
देखि तहां जिनदत्त भक्ति रस सरसनै ।
करिहै तासौं प्रीति धर्म अनुराग सौं,
जांनैं गौ इह प्रीति भई वड भाग सौं ।।१७।।

खग मैं वामैं भेद भाव रहि है नहीं,
हौंनहार इह वात अलप दिन मै सही ।
ताही तैं इह काज सरैगो व्याह कौ,
तांही कै पुर व्याह होय उछाह कौ ।।१८।।

ए मुनि भाषें वैंन मोन खै नाथ जो,
ते मै तोसौ कहै सकल वड़ हाथ जी ।
मुनि भाषी सो भई प्रीति जिनदत्त सौं,
भेद रह्यो नहि कोई जैनमत रत्त सौं ।।१९।।
अब तू सुनि जा भांति मिलै संजोग जी,
वृषभदास वड भाग गह्यो मुनि जोग जी ।
जिनदत्तहि सब सौंप साध गुणपाल पैं,
दिक्षा लीनी देव सकल अघटाल पैं ।।२०।।

वहुरि सुव्रता पासि त्यागि जग की मती,
भई अर्यंका सेठ नारि पदमावती ।
जे कुलवंती नारि पतिव्रत धारिणी,
तिनकी एई रीति कही सुभकारिणी ।।२१।।

अव जिनदत्त सपूत पाय पद तात कौं,
परकासै निति धर्म घातिया घातकौ ।
अतुल द्रिव्य कौ ईस सीस सेठांनि कौ,
सिख्या दायक धीर सुगुर जेठानि कौ ।।२२।।

सो व्योपार निमित्त आइहै ह्यां प्रभू,
रतन दीप कै मांहि रतन वहुते विभू।
ताही तैं इह काज सिद्ध ह्वैगौ महा,
मतिसागर ए बात भाषि चुप ह्वै रहा ॥२३॥
कैयक दिन में तहां वणिकपति आइयो,
खुसी हुवो खग भूप ताहि उर लाइयो।
पाहुन गति अति करी रीति पाली सवै,
करि अति चित्त प्रसन्न बात भाषी तवै ॥२४॥
तेरै मेरै भेद रह्यो नांही भया,
तन मन जन धन धांम एक ह्वै परणया।
मेरी तेरी सुता दोय नांही गनी,
तेरै पुर परणाय व्याह कौ ह्वै धनी ॥२५॥
वीन वजाय रिझाय याहि जीतै जिकौ,
वर पुत्री कौ होय धीर निश्चै तिको।
ए सुनि खग के वैंन सेठ जिनदत्त जो,
मित्राई प्रतिपाल धर्म मै रत्त जो ॥२६॥
निज पुत्री सम जांनि विद्याधर की सुता,
लेय गयो निज नगर बहुत खग संजुता।
रच्यो स्वयंवर गेह मनोहर वन महैं,
जाकी सोभा देखि देव अचिरज गहैं ॥२७॥
वहुत कला में निपुन भूचरा खेचरा,
आये अति सुकुमार वीन मैं तत्परा।
प्रथमहि पूजा करी देव जिनराय की,
महा मंगलाचार करण सुखदाय की ॥२८॥
जब आये सब सुघर स्वयंवर साल मैं,
दीपै अधिकी कान्ति जिनौं के भाल मैं।

तव आई गंधर्वदत्ता गुणरासिका,
लैकैं वीन प्रवीन महारस भासिका ।।२९।।

नांम सुघोषा वीन सुलक्षण की भरी,
ताके तारनि मांहि सुवरसैं रसझरी ।
वीन वजाई शुद्ध जवै विद्याधरी,
हुते वीन परवीन तिनौं की सुधि हरी ।।३०।।

जानी इह गंधर्व सूत्र की मूरती,
अर इह सव संगीत कला की सूरती ।
जीति सक्यो नहीं कोई वीन मै नागरा,
सव कौं जीति सुजान हियै गुण आगरा ।।३१।।

जीवंधर की वीणा प्रतियोगिता में विजय—

तवै जीतिवा याहि धीर जीवंधरा,
सकल कला परवीन वीन मैं तत्परा ।
आये सभा मझार सार गुण के भरे,
पक्षपात सौं रहित तिनैं साखी करे ।।३२।।

अधिकारीनि सौं कह्यौ देहु वीणा हमैं,
जिनके तार वजाय चित्त अति ही रमैं ।
वीन च्यारि तिन ल्याय चतुर कै ढिग धरी,
वोल्यो तव परवीन वीन दूषण भरी ।।३३।।

केस रोम लव आदि इनौ मैं औगुना,
हम कौं दै ए वीन राग चाहौ सुना ।
यों तिन सौं कहि सौंपि दई अर वोलिया,
सुनि हो नभ-चर सुता गांठ उर खोलिया ।।३४।।

जो तू मछर रहित महागुण की भरी,
तौ तेरी दै वीन वजांऊं चित धरी ।

तब अति होय प्रसन्न विद्याधर की सुता,
दई सुघोषा वीन सुद्ध तारनि जुता ।।३५।।
लैकैं वीन प्रवीन वजाई रस भरी,
राग सूत्र अनुसारि लगाई रंग झरी ।
काढ़े सुर गंभीर गीत संजुत महा,
मधुर मनोहर रूप सुजस जाय न कहा ।।३६।।
सुनि करि चित्रत रहे भूचरा खेचरा,
मृग मोहित व्है महाराग मै चित धरा ।
या विद्या करि हुई कंवर की कीरती,
जांनी सब संसार राग मैं कीमती ।।।३७।
धन्य धन्य ए वचन तेहि पहुपा भये,
तिन करि पूजे कुमर पंडितनि सिर नये ।
हरयो गयो सुनि वीन चित्त कंवरी तनौं,
लगे कांम के वांन भेदियो उर घनौं ।।३८।।
माला घाली कंठ कंवर कै खग सुता,
सीलवंति गुणवंति रूप करि अद्‌भुता ।
कहा कहा नहि होय पुण्य परभाव सौं,
तातैं धारौ पुण्य भव्य सुभ भाव सौं ।।३९।।
जैसे दिन मै दीप दिपैं नहि भानु पैं,
तैसैं पर नर भये कंवर वहु जांन पैं ।
भासैं अति दैदीपमान निज लोक जे,
जीवंधर परताप धरैं गुन थोक जे ।।४०।।
थकित भई लख रूप लाल कौ खेचरी,
एक रूप इक भाव होय करि ढिग खरी ।
वीन सुघोषा हेत पाइयो सुभपती,
करी वीन की तवै खुसी व्है थुति अती।।४१।।

सत्य सु घोषा नांम वीन तेरौ सही,
वड़े वंसतै भई आप तोकौं चही ।
मधुरा अति रस तार चित्त की हारिणी,
कीयो कंवर मिलाप तैंहि सुखकारिणी ।।४२।।

अति प्रवीन तू सखी निपुन दूती महा,
तेरैई परसाद गुणपती पति लहा ।
ह्यां तौ अतिरस भयो सुनौं अब सज्जनां,
काष्टांगारिक पूत सु प्रेरयो दुरजनां ।।४३।।

हरणे कौं गंधर्वदत्ता कौं जड़मती,
काष्टांगारिक नाम कियो उद्यम अती ।
तव कुमर इह जांनि भये असवार जी,
जय गिर गज परि आप सांवता लारजी ।४४।।

तवै तात गंधर्वदत्ता कौं नभचरा,
गरुड़वेग सुभ नांम वुद्धि मैं ततपरा ।
जाय परयो मध्यस्थ दुहूँ कै सुभमती,
अति उपाय परवीन विद्याधर कौ पती ।।४५।।

गंधर्वदत्ता के साथ जीवंधर का विवाह—

शांत कियो दल शत्रु रारि मेटी सवै,
अति उछाह तै व्याह हुवो पुर मैं तवै ।
जीवंधर कौं देय पुत्रिका आपनीं,
हूवो अति निहचिंत खेचरा कौ धनीं ।।४६।।

दोहा

रहै कंवारी कन्यका, व्याह जोगि घर मांहि ।
मात तात कौं दूसरी, ता सम चिंता नांहि ।।४७।।

पुत्री परणावन समा, नहि निचिंतता और।
तातैं भयो निचिंत अति, गरुड़वेग खग मौर ॥४८॥
जीवंधर अर खग सुता, वढ़्यो परसपर नेह।
जिनके रस सिंगार कौं, कहत न आवै छेह ॥४९॥
रति स्वरूप रामा इहै, काम स्वरूप कुमार।
वय किसौर नागर नवल, क्यौं न बढ़ै सिगार ॥५०॥
सम स्वरूप सम गुन सबै, सम विद्या सम सील।
क्यौं न परसपर प्रीति ह्वै, चित्त एक द्वय डील ॥५१॥

इति गंधर्वदत्ता विवाह निरूपणम् ॥

चौपई

अव आई मधु[1] रितु अति चाव, मदन वरधनी मोद सु भाव।
फूले तर वाजी सुभ वाय, प्रगटी परिमल अति अधिकाय ॥५२॥
वन सुर मलय नांम विख्यात, नंदन वन की तुल्य लखात।
तहां चले नरपति अति रंग, चाले नगर लोक नृप संग ॥५३॥
निज निज संपति प्रगट दिखाय, सुख कारणि ले वहु समुदाय।
अति उछव उपज्यो वन मांहि, जाहि लखें सब सोक नसांहि ॥५४॥
इक वैश्रवणदत्त है साह, जाकै इनि दिनि बहुत उछाह।
चूतमंजरी जाकै नारि, रूपवती पति आज्ञाकारि ॥५५॥
ताकै पुत्री सुरमंजरी, अति सुंदर चतुराई भरी।
स्याम लता दासी जा कनैं, सुरमंजरि के गुण अति भनैं ॥५६॥
लै आई चंद्रोदय नांम, चूरणवास महा गुण धांम।
जहां लखै वहुजन समुदाय, तहां वचन यों भाषै जाय ॥५७॥
या सम और न कोई सुगंध, जांकौं पाय भमर ह्वै अंध।
यों कहि इत उत फिरती फिरै, सब गुण मैं मुझ स्वामिनि सिरैं ॥५८॥

---

१ मूलपाठ रति

वहुरि कुमारदत्त इक साह, विमला नारि तनों जो नाह।
गुणमाला ताकै सुभ सुता, रूपवती वहु गुण करि जुता ।।५६।।
ताकै दासी विद्युतलता, मानवती चतुराई रता ।
सोहू लाई चूरणवास, सूर्योदय इह नांम प्रकास ।।६०।।
इह हू पंडित सभा मझार, करै प्रसंसा विविध प्रकार।
हमरे चूरण वास समांन, सुर्ग विषै हू नांहि वखांन ।।६१।।
सकल कला परवीन सु जांनि, मुझ स्वामिनि सी और न मांनि।
भले भौंह अर मृग से नैन, यों दासी वोलै मधु वैन ।।६२।।
भमर भमैंया परित हकीक, मेरे वचन न होय अलीक।
स्याम लता अर विद्युत लता, निज निज स्वामिनि गुण मैं रता ।।६३।।

सुगंध परीक्षा—

दोऊ दासी मछर भरी, करैं विवाद सभा मैं खरी ।
हुते सुगंध परखवा घनें, वनें ठनें अतिरस के सनें ।।६४।।
कोऊ परखि सक्यो न सुगंध, दोऊ दीसैं एक अवंध।
अधिक वोछ जान्यों नहि परैं, तव जीवंधर परख जु करै ।।६५।।
परखि दुहूँ कौं वोले लाल, चंद्रोदय है गंध विसाल ।
जौ नहि मांनौं मेरे वैन, तो देखौ परतखि निज नैंन ।।६६।।
यों कहि मसलि हाथ तैं सही, दोऊ चूरण डारे मही ।
चंद्रोदय परि भ्रमर जु आय, लागे अति सुगंध परभाय ।।६७।।
तवै हुते जेते मतिवांन, तिननैं वात करी परमांन ।
सवनि सिराह्यो चंद्रोदयो, तवं विवाद सारौ मिटि गयो ।।६८।।
सदा करत ही विद्यावाद, दोऊ धारत हो उदमाद ।
तव ते वाद दुहुनि कौ गयो, दोऊ कन्या अति हित भयो ।।६९।।
गंध परखवा दूजौ नांहि, जीवंधर सौ धरणी मांहि ।
यौं कहि सवनि प्रसंसा करी, इन की देह गुणनिसौं भरी ।।७०।।

ताही समै और इक वात, भई सोहु धारौ विख्यात ।
निज इछा सौं कूकर एक, क्रीड़ा करत हुतौ अविवेक ।।७१।।

जीवंधर द्वारा कुत्ते को णमोकार मन्त्र सुनाना—

दुष्ट वालका लार जु परे, लकरी लोढी मारण करे ।
दौरयो कूकर अति हो डरयो, औंडे द्रह मांही गिरि परयो ।।७२।।

प्राण छांडि वे सनमुख भयो, सुनिकैं कुमर कढ़ाई हि लयो ।
जान्यों इह जीवै नहि कोइ, याकौ मरण अवारहि होय ।।७२।।

तव ताके काननि मैं आप, दियो मंत्र जो नासै पाप ।
नमोकार सौ मंत्र न और, इहै मंत्र सव श्रुतकौ मौर ।।७३।।

यक्ष मित्रता—

धारयो कूकर मन मैं एह, सुभ भावनि सौं त्यागी देह ।
यक्ष सुदरसन नामा भयो, महामंत्र तैं अघ सव गयो ।।७४।।

चंद्रोदय गिर विषै निवास, देवनि कौं पूरव भवभास ।
जक्ष चितारि सकल परसंग, आयो कवंर पासि अतिरंग ।।७५।।

कहत भयो हो सुगुर सुजांन, तुव परसाद लह्यो सुभ थांन ।
पाई अति विभूति मैं नाथ, करि किरपा तैं पकरयो हाथ ।।७६।।

दीयो महामंत्र तैं सही, जाकी महिमा जाय न कही ।
याहि देखि सव अचिरज रहे, नमोकार के गुन सरदहे ।।७७।।

जक्ष क्रितज्ञ महा मतिवांन, करी कंवर की पूज विधांन ।
दिये दिव्य आभरण अमोल, अर मित्राई कही अड़ोल ।।७८।।

करी वीनती वारंवार, मोहि गनौं अपनौं निरधार ।
अव सौं हरख-विषादनि मांहि, सदा चितारौ संसै नांहि ।।७९।।

नमसकार करि अपनैं धाम, गयो जक्ष गावत गुण ग्रांम ।
विनु कारण जे पर उपगार, करैं तैहि पावै फलसार ।।८०।।

राजा के हाथी का विगड़ना—

वन की क्रीड़ा करि नर नारि, आवत हैं सव नगर मझारि ।
नृप कौं हसती गंधमहंत, असनिवेग नामा वलवंत ।।८१।।
विझक्यो लोक सवद तें महा, अति ही मद करि छकि जो रहा ।
काहू पैं न निवारयो जाय, वहु प्रचंड अति दीरघ काय ।।८२।।

सुरमंजरी को वचाना—

सुरमंजरि के रथ परि गजा, दौरयो खौके संक ही भजा ।
जीवंधर तव आये धाय, जिनतैं गोपि न कोइ उपाय ।।८३।।
गज शिक्षा ग्रंथनि परवांन, गज सौं लागे क्रीड सुजांन ।
करे परिभ्रम तीसर दोय, तामैं हस्ती सिथिल जु होय ।।८४।
इन कौं खेद होई नहि कवै, इन तैं सुर नर खग तिर दवै ।
वसि करि हाथी वांध्यो ठान, सांवत सकल कला कै जांन ।।८५।।
गज ग्रंथनि मैं लखि विज्ञांन, करन लगे सव सुजस वखांन ।
आये कंवर आपनैं गेह, सुर मंजरि कै उपज्यो नेह ।।८६।।

जीवंधर के प्रति सुरमंजरी की आसक्ति—

लखि करि जीवंधर कौ रूप, भई कन्यका काम सुरूप ।
ताकी चेष्टा लखि करि जवै, मांत तात नैं जांनी सवै ।।८७।।
या पुत्री कै निश्चै इहै, जीवंधर मेरौ कर गहै ।
तव वैश्रवणदत्त करि नेह, आयो गंधोतकट कै गेह ।।
करी वीनती वे कर जोरि, वहुरि आपनौं सीस निहोरि ।।८८।।
सुनौं सेठपति मेरे वैन, जीवंधर जग कौं सुख दैन ।
इह तेरौ सुत अद्भुत रूप, मेरै परणौं अतुल अनूप ।।८९।।

सुरमंजरी के साथ विवाह—

करि तू मोहि आपनौं दास, तू किरपानिधि सुगुण निवास ।
तव वोले गंधोतकट साह, या सम और जु कौंन उछाह ।।९०।।

करी प्रमांण वात मैं एह, मेरौ सुत परणैं तुव गेह।
तव वैश्रवणदत्त निज सुता, सुर मंजरि जो वहुगुण जुता ॥९१॥

तुरत हि भलौ महूरत पाय, जीवंधर कूं दी परणाय ॥९२॥
भरी रंग रस सुर मंजरी, प्रीतम सौं अति प्रीति जु धरी।
सूरापन अर अति सोभाग, जीवंधर सौ नहि बड़भाग ॥९३॥

काष्टांगार का षड़यंत्र—

करैं निरंतर कीरति सवै, काष्टांगारिक कोप्यो तवै।
मेरौ हस्ती गंध अनूप, असनिवेग हाथिनि कौ भूप ॥९४॥
पीस्यो ताहि मान मद हरयो, कुधी वनिक सुत गरवै भरयो।
कुल की रीति तजी मति अंध, सीख्यो राजनि के परबंध ॥९५॥
वनियनिकी इह रीति अनादि, हरडैं सूंठि आंवला आदि।
वेचैं और मोलि ले सही, इन तौ रीति और ही गही ॥९६॥
करै जाति माफिक जो काम, तासौं रहै तात कौं नाम।
इह कुल खंपण कुवुधि सुरूप, मन मैं भयो रहै सुतभूप ॥९६॥
तव तेड्योपुर कौ रच्छिपाल, चंडदंड नामा कुटवाल।
तासौं भाष्यो काष्टांगारि, जीवंधर कौ तुरतहि मारि ॥९८॥
है इह वहुत कुचेष्टा भरयो, धन जोवन छकि वहु वहि परयो।
इह नृप आज्ञा सुनि कुटवाल, लेकरि अपनें सुभट विसाल ॥९९॥
सजि वजि दौरयो काल समांन, जीवंधर परि लेवा प्रांन।
तवै साह सुत सुनि इह वात, लेकरि साथि भ्रात निज सात ॥१००॥
आठौं भाई आयुध भरे, करि साहस तलरव परिपरे।
तुरत भगाय दियो कुटवाल, जीते जीवंधर गुणमाल ॥१०१॥
वहुरि कोप करि काष्टांगारि, भेजे वहुत सुभट रण कारि।
तव दयाल ह्वै मन मैं एह, धारी जीवंधर गुण गेह ॥१०२॥

कहा रंक ए मौसौं लरैं, मेरे वांरानि तैं सव मरै ।
पनि हिंसा सौं और न पाप, जीवनि कौं करणौ न सताप ॥१०३॥

तातैं कोइ उपाय विचारि, मेटौं पाप कारिणी रारि ।
करौं शांत या सठ कौं सही, तव सुमरयो उर मैं सुर वही ॥१०४॥

जो अपनौं निज मित्र विसाल, जक्ष सुदरसन प्रीति रसाल ।
आयो तुरत महा वलवांन, सकल रारि मेटी मतिवांन ॥१०५॥

अर जवि करी वीनती एह, एक वार लखिए मुझ गेह ।

जीवंधर का चन्द्रोदय पर्वत पर जाना—

चंद्रोदय परवत सुभथांन, तुव परसाद लह्यो गुणवांन ॥१०६॥

तव जीवंधर जग सुखदैन, जखि कौं सुख देवे मृगनैंन ।
ताकी वात करी परमांन, तव वह लेय गयो निज थांन ॥१०७॥

नाम विजैगिर हस्ति चढ़ाय, इह मित्रनि की रीति कहाय ।
मित्रनि कौं पधरावै गेह, दे सुभ वस्तु करैं अति नेह ॥१०८॥

किनही नहि जांनी इह वात, मात तात अर सातौं भ्रात ।
करन लगे आकुलता महा, विना कंवर नहि थिरता गहा ॥१०९॥

जैसे नव पल्लव लहि वाय, अति ही हौंहि चलाचल काय ।
तैसैं निज जन अथिर जु भये, हमहि जतायें विनु कित गये ॥११०॥

तव गंधर्वदत्ता खग सुता, अति विद्या निधि अति गुण जुता ।
निमत ज्ञांन तैं जांनी वात, कंवरै नांही कछू उतपात ॥१११॥

रही निराकुल चित्त सयांन, समुझाये निज जनहित वांन ।
कंवर लाभ ले आवै सही, या मांहै कछु संसै नहीं ॥११२॥

कवहू मैं जांनौं गति कोय, रहौ हरष सौं थिर चित होय ।
तव थाके गनि वचन प्रमांन, सवनि लह्यो संतोष निधांन ॥११३॥

जीवंधर जखि कै घरि जाय, कैयक दिवस रहे सुखपाय ।
वहुरि भयो चलिवे कौं चित्त, अभिप्राय तव जान्यौं मित्त ॥११४॥

दोहा

काम मुद्रिका प्राप्ति—

काम रूपिणी मुद्रिका, महाक्रांति कौ रूप ।
सकल अरथ साधन करी, दीनी अतुल अनूप ।।११५।।
अर उतारि परवत थकी, किती दूरि पहुँचाय ।
जांनी इनकौं भै नहीं, लाभ हौंहि अधिकाय ।।११६।।
तवै सीख करि घरि गयो, जक्ष प्रीति प्रतिपाल ।
शील कंवर के चरण जुग, जीवनि के दुखटाल ।।११७।।

इति श्री जीवंधर स्वामी चरित्रे महापुराणानुसारेण वालाववोध भाषायां, 'वीन प्रवीनता', 'गंधर्वदत्ता विवाह', 'सुगंध परीक्षा', स्वानोपगार यक्षमित्रता, गंधहस्ती विजय, सुरमंजरी विवाह, कीर्ति प्रकाश, काष्टांगारिक कोपरणोद्यम, यक्षागमन युद्धप्रशांति यक्षग्रहेगमन काममुद्रिकालाभ निरूपणो नाम द्वितीयोध्यायः ।।

तीसरा अध्याय

छन्द-चालि

अब चले कंवर गुण पूरा, पहुंचे केतीयक दूरा ।
इक नगर नांम 'चंद्राभा', दीखै जाकी वहु आभा ।।१।।
अति धौले उजले गेहा, व्है सरद चांदनी जेहा ।
राजा 'धनपति' पुर स्वांमी, सो लोकपाल सौ नांमी ।।२।।

पदमोत्तमा को विषधर द्वारा डसना—

अर है 'तिलोतमा' रांनी, राजा कै रूप निधांनी ।
शुभ 'पदम' उत्तमा पुत्ती, अति सुंदर वहुगुण जुत्ती ।।३।।
इक दिवस गई ही वन मैं, क्रीडा कौ चाव जु मन मैं ।
सो डसी दुष्ट विषधरनैं, जव सोच हुवो नरवर नैं ।।४।।

तव करी घोषणा पुर मैं, इह निश्चै धारी उर मैं ।
जो याके प्राण उवारै, मणि मंत्रौषध परकारे ।।५।।

ताकौं एही परणाऊं, अर सीस आपनौं नांऊं ।
फुनि आधौ राज हु तांकौं, जो नर विष टारै यांकौं ।।६।।

तव सव आये विष झारा, लखि लोभ वहुत परकारा ।
पनि विष नहि हुवा दूरा, पचि पचि हारे गुन पूरा ।।७।।

तव नृप कै उपज्यौं सौका, दौरे सव दिसि अति लोका ।
ढूंढन विषहारी नर कौं, लखि जीवंधर ततपर कौं ।।८।।

पूछन लागी तुम मांही, विषहर विद्या अकनांही ।
देखे अति आकुल लोका, तव वोले तत्व विलोका ।।९।।

कछु इक विद्या है भाई, पूरण विद्या जिनराई ।
सुनि सवद महा संतुष्टा, ले गये जांनि गुन पुष्टा ।।१०।।

इह नाग मंत्र मैं निपुना, सव ही वातनि में सुगुना ।
तौपनि चित यौं वह जक्षा, जो राखै अपनी पक्षा ।।११।।

नृप पुत्री निरविष कीनी, जिन मंत्र औषदी दीनी ।
तव राजा हुवो राजी, जानी ए नर परकाजी ।।१२।।

अति क्रांति पराक्रमधारो, लक्षण करि लखिए भारी ।
ए राजवंस वरवीरा, निश्चै नर नायक धीरा ।।१३।।

तव निज पुत्री परणाई, अर वहुतहि प्रीति जनाई ।
फुनि अरध राज हू दीयो, निज वचन सत्य नृप कीयो ।।१४।।

कन्या के भ्रात वतीसा, अति ही सज्जन गुण ईसा ।
सव लौकपाल प्रमुखाजे, जीवंधर सौं सुमुषाजे ।।१५।।

विनयादिक गुण लखि तिनमैं, जीवंधर राजी मन मैं ।
कैयक दिन क्रीड़ा कोनी, सवही कौं साता दीनी ।।१६।।

अब ह्यां तै आगैं चाले, अतुली वल निसि कौं पाले।
काहू सौं नांहि जतायो, एकाकी गमन करायो ।।१७।।

कितीयक कोसनि पहुँचे जी, जीवंधर श्रीधर से जी।
इक खेम नगर सुर पुर सौं, सब ही वातनि अति सरसौं ।।१८।।

इक वन है पुर तैं नीरा, देखत ही मेटै पीरा।
जो नाम मनौरम कहिया, अति सुंदर तरवर सहिया ।।१६।।

सहस्रकूट चैत्यालय के कपाट खुलना--

तामैं जिन मंदिर सोहै, सो सहस सिखर मन मोहै।
लखि जीवंधर जिन गेहा, कीयो वंदन धरि नेहा ।।२०।।

दे तीन प्रदक्षरण भाई, दरसन कौ भाव धराई।
देवल के पाट विसाला, ते खुले सहज ततकाला ।।२१।।

हूवो दरसन जिनवर कौ, भवतारन त्रिभुवन गुर कौ।
जिन सतवन करनें लागौ, अति भक्त शांत रस पागौ ।।२२।।

फूल्यो चंपा इक जब ही, दरसातौ राग अधिक ही।
कोकिल चुप होय रहे हे, मधु रति कौ विरह गहे हे ।।२३।।

ते लगे वोलनें मधुरा, सुनि करि राजी ह्वै सुघरा।
अर जिन मंदिर कै निकटा, इक सरवर अति ही सुघंटा ।।२४।।

सो निर्मल जल करि पूरौ, हूवो आतप चक चूरौ।
मांनौ फटिक द्रव भरियो, गुन निपुन नरनि कौ करियौ ।।२५।।

तामैं फूले ततकाला, कमलादिक गंध विसाला।
अति भमर करैं गुंजारा, लखतां ह्वै हरष अपारा ।।२६।।

करिकैं जु सनांन विसुद्धी, ले आठौं द्रव्य सुबुद्धी।
जिनवर कौं पूजि सुग्यांनी, थुति करन लगौ गुरण खांनी ।।२७।।

ता खेमनगर कौ वासी, इक समुद सेठ जस रासी।
जाकै निरवृति सेठांनी, ताकै पुत्री मतिवांनी ।।२८।।

सो खेमसुंदरी नामा, मांनौ लखिमी गुण धामा।
इक दिन विनयंधर स्वामी, मुनि ज्ञान ध्यांन विसरांमी ॥२९॥

तिनकौं कन्या कै ताता, पूछयो लखि कै अति ग्याता।
मेरी पुत्री कुन परनैं, तव महा पुरुष यों वरनैं ॥३०॥

चंपौ फूलै ततकाला, ह्वै कोकिल सवद रसाला।
फुनि पाट जिनालय उघरैं, जय जय रव जव वह उचरै ॥३१॥

अर फूलैं कमल सु वासा, ए सकल चिह्न जे भासा।
जाके आवे तैं होवै, जा करि दुखिया दुख खोवै ॥३२॥

सो व्याहै तेरी कन्या, इक पुरख धारिणी धन्या।
तव ही ते राखे पुरुषा, जे करैं सुवर की परषा ॥३३॥

ते रहत हुते या वन मैं, लखि सुनर खुशी ह्वै मन मैं।
तिन जाय ततक्षण भाई, श्रेष्ठी कौ दई वधाई ॥३४॥

जे चिह्न वताए गुरनैं, ते प्रगटे पाय चतुरनैं।
तव सुनि सुख पायो अति ही, सो जामैं श्री जिनपति ही ॥३५॥

वह दई वधाई तिनकौं, अर चल्यो मनोरम वन कौं।
नहि मुनि के वचन अलीका, इह जांनी जिन तह कीका ॥३६॥

क्षेमसुन्दरी विवाह—

लखि जीवंधर कौ रूपा, जान्यों इह पुरुष अनूपा।
तव निज पुत्री परणाई, अर हित की रीति जनाई ॥३७॥

फुनि करी वीनती एका, सुनियें चितधारि विवेका।
इक नगर राजपुर नामा, 'सत्यंधर' नृप गुण धामा ॥३८॥

हम कियो तहां निवासा, सो नगर वहुत सुखरासा।
व्हां चैन वहुत ही पायो, सत्यंधर राज सुहायो ॥३९॥

इह धनुष वहुरि ए वांना, हमसौं करि नेह निधांना।
दीनें सत्यंधर नृप नैं, तिनसौं अति प्रीति जु अपनै ॥४०॥

एहैं तुम लायक नीकें, राखौ दीनें नृप तीकें।
तव राखें जीवंधर नैं, अति जुद्ध कला ततपर नैं ।।४१।।

ह्वै अति संतुष्ट सुज्ञानी, कैयक दिन थिरता ठांनी।
सुख सौं निवसैं ससुरा कै, अति सज्जन भाव भराकै ।।४२।।

कवहुक विद्याधर पुत्री, अति विद्या रूप विचित्री।
गंधर्वदत्ता गुणधामा, जाकै पति ही विसरामा ।।४३।।

करि प्रिय दरसन कौं भावा, आई विद्या परभावा।
लखि वल्लभकौं वहु सुखिया, हरखित कीनी निज अखिया ।।४४।।

विनु मिलें गई फुनि घर कौं, आवौ न जतायो वरकौं।
घर हूँ तैं परछन आई, ह्यां हूं तैं परछन जाई ।।४५।।

जानौं ए हित की रीती, जिन कै उर प्रेम प्रतीती।
देखैं प्रीतम उछाहा, नहि और वसत की चाहा ।।४६।।

शुभ खेमसुंदरी गेहा, तिष्टे सुंदर धरि नेहा।
कैयक दिन रहि गुणवंता, जीवंधर जगत महंता ।।४७।।

काहू कौं नांहि जनायो, पर द्रव्य नही अपनायो।
ले धनुष वांन वरवीरा, निसि कौं उठि चाले धीरा ।।४८।।

है सुजन नांम इक देसा, हेमाभ नगर सुभ भेसा।
दृढ़मित्र नांम है राजा, जाकै निति उत्तम काजा ।।४९।।

नलिना रांनी गुणधामा, पुत्री हेमाभा नामा।
जाके जनमत ही निमती, यों कहत भयो इक सुमती ।।५०।।

है नाम मनोहर वन जो, अति हरै लोक कौ मन जो।
तां भीतरि वहुत विसाला, आयुध अभ्यास जु साला ।।५१।।

अति करैं धनुष अभ्यासा, वहु सस्त्र सूत्र अभ्यासा।
जा धनुषधार कौ वाह्यो, अति सीघ्र हि जाय उमाह्यो ।।५२।।

सर लागि निसांनैं भाई, ततखिण पाछौ ही आई।
जा ही मारग करि जावै, ताही मारग फुनि आवै ।।५३।।

इह हाथ तनी जु सफाई, सर अति हि वेग देजाई।
लखि फरसि करै नहि छेदा, है वांहन ही मैं भेदा ।।५४।।

इह होय वल्लभा ताकी, सर श्रुत मैं अति मति जाकी।
है वाला अति हि सुलषणा, द्वै कुलकी कीरति रखणा ।।५५।।

या विधि कौ सुनि आदेसा, आये सावंत विसेसा।
धरि हेमाभा की आसा, लागे करने अभ्यासा ।।५६।।

जीवंधर हूं व्हां आये, लखि रूप सवनि सुख पाये।
जव वोले धनुष धरैया, तुम हूं कछु जांनौं भैया ।।५७।।

सुनि कहत भये सुकुमारा, हम हूं कछु इक इह धारा।
तव कह्यो सवनि सरवाहौ, जौ तुमरै चित्त उमाहौ ।।५८।।

वेधौ निसांनौं वीरा, उर संक न आंनौ धीरा।
तव धनुष चढ़ाय चलायो, सर कंवर सवनि दरसायो ।।५९।।

सो लागि निसांनैं भाई, ततखिण पाछौ ही आई।
तव तहां हुतें नृप लोका, तिन सव व्रत्तांत विलोका ।।६०।।

ते दौरि गये नृप पासे, हरषित व्है सवद प्रकासे।
सुनि करि नृप वहु सुख पायो, तिनकौ दारिद्र नसायो ।।६१।।

निज पुत्री जीवंधर कौं, परणाई गुण ततपर कौं।
अति उछव कीयो राजा, भेले करि सर्व समाजा ।।६२।।

राजा कै पुत्र सपुत्ता, सव ही सज्जन गुण जुत्ता।
है वड़े कंवर 'गुणमित्रा', दूजे 'वहुमित्र' विचित्रा ।।६३।।

तीजे कौ नांम 'सुमित्रा', चौथे 'धनमित्र' पवित्रा।
इत्यादि अनेक कुमारा, 'जीवंधर' सौं हित धारा ।।६४।।

जिन सवकों कला समस्ता, जीवंधर दई प्रसस्ता ।
तिन ही के पुण्य प्रभावा, तिष्टे गुन निपुन सुभावा ॥६५॥
ए जाही ठौहर जावैं, ता ठौहर सव सुख पावैं ।
अव सुनौं वात इक भाई, गंधर्वदत्ता सुखदाई ॥६६॥
जीवंधर कौं लखि जावै, सवसौं परछन्न हि आवै ।
इछा ह्वै मन की जवही, देखै निज पति कौं तवही ॥६७॥
नहि पति कौ ह्वै सुधि याकी, नहि और लखैं गति ताकी ।
अति सीघ्र हि घर तैं आवै, अर तुरत हि पाछी जावै ॥६८॥
इक दिवस लखी देवर नै, नंदाढ्य महामति घर नैं ।
तव पूछ्यो तू कित जावै, काहू कौं नांहि जतावै ॥६९॥
हम हूं कौं ले चलि माई, जा दिसि तू गमन कराई ।
तव वोली खेचर पुत्ती, अति विद्या गुण करि जुत्ती ॥७०॥
जौ तेरी इछा वीरा, सौ सुनि तू इक चित धीरा ।
जा दिसि कौ मेरौ गमना, ता दिसि तू पहुँचै सुमना ॥७१॥
देवाधिष्ठित गुणधामा, इह समर तरंगणि नामा ।
सज्या है अति सुखदाई, या परि विधि पूर्वक भाई ॥७२॥
निज वड़ भाई कौं ध्याये, करि सयन तहां तू जाये ।
इह सुनि भावज के वचना, ताही विधि कीनी रचना ॥७३॥
सज्या परि सूते निसि कौं, चित धरि भाई को दिसि कौं ।
तव ही जु भोगिनी तुरता, विद्या अति सकतिनि जुगता ॥७४॥
सज्या जुत भाई पासे, ले गई महा गुण रासे ।
जव मिले परसपर दोऊ, इक जिन मारग के जोऊ ॥७५॥
सुख पूछि उभै हितरासी, हूये इक ठौहर वासी ।
प्यारे भाईनि कौ मिलिवौ, या सम नहि मन कौ खिलिवौ ॥७६॥
अव याही देस मझारा, इक नगर सोभपुर भारा ।
दृढ़मित्र भूपाल पवित्रा, ताकै निज भ्रात सुमित्रा ॥७७॥

जाकै 'वसुंधरा' रांनी, पुत्री 'श्रीचंद्रा' जांनी ।
सो नवयोवन बुद्धिवंती, अति रूपवती गुणवंती ।।७८।।

इक दिन निज घर आंगन मैं, देखे क्रीडत हित मन मैं ।
द्वै जाति परेवा भारी, जिन मैं इक नर, इक नारी ।।७९।।

तिनकौं लखि मुरछा आई, जाती समरण उपजाई ।
तव हुती सहैली पासे, ते भई सकल दुख रासे ।।८०।।

चंदन खस सीतल पानी, विभ्रनादि झवकि मतिवांनी ।
संवोधि ताहि सुभ वचनां, मेटी मुरछा की रचनां ।।८१।।

सुनि मात-पिता सुखदाई, कन्या की सखी वुलाई ।
जो अलक सुंदरी नामा, अति चातुरता गुणधामा ।।८२।।

है तिलक चंद्रिका कीया, पुत्री अति चेतन हीया ।
तासौं भाष्यो हे सुमती, तो ढिग उपजै नहि कुमती ।।८३।।

पुत्री की प्राण समाना, है सखी महा गुणवांना ।
करि मुरछा कौ उपचारा, तू पूछि सकल परकारा ।।८४।।

तव इह कन्या पैं जाये, पूछन लागी समुझाये ।
तू देवांगन सी कन्या, कहि मुरछा कारण धन्या ।।८५।।

जव श्रीचंद्रा यों वोली, तो मां है वुद्धि अतोली ।
इह नांहि कछू कहवा की, अति परछन वात हिया की ।।८६।।
तौ पनि मैं तो सौ भाषौं, कछु भाव छिपाव न राखौं ।
प्राणनि सौं अधिकी प्यारी, तू कवहु न मोसौं न्यारी ।।८७।।
करि समाधांन चित सुनि तू, मेरे मुख की सव धुनि तू ।
निज पूरव भव संवंधा, भाषौं सव ही परवंधा ।।८८।।
मुहि उपज्यो जाती समरा, उर धरि तू विवरा हमरा ।
ऐसैं कहि वात सुनाई, करि भिन्न भिन्न समझाई ।।८९।।
इह सुनि व्रत्तांत जु जव ही, उर मैं अवधारयो सव ही ।
तव ही जु गई तजि ता पैं, कन्या के मात पिता पैं ।।९०।।

जा विधि कन्या पैं सुनियों, ताही विधि इन पैं भनियों।
या भवथी पहली तीजैं, भव सौ ले वात सुनीजैं ॥६१॥

सोरठा

पूर्व भव वर्णन—

हेमांगद इक देश, जहां राजपुर नगर है।
वणिक वंस सु भेस, रतन तेज निवसैं तहां ॥६२॥

जाकै नारि सुजांन, नाम रतनमाला सही।
ताकै रूप निधान, नाम अनुपमा पुत्रिका ॥६३॥

गुण करि अनुपम होई, नही नांम अनुपमा।
रमा उमा सी सोई, सुन्दर सनमति धारिणी ॥६४॥

ताही नगर मझार, कनकतेज इक सेठ है।
जाकै रूप अपार, नारि चन्द्रमाला कही ॥६५॥

ताकै सुवरण तेज, पुत्र दुरमती दुरविधो।
जाकै सुभ मैं जेज, असुभ काज मैं सीघ्रता ॥६६॥

पहली जानै नांहि, औगुन सुवरण तेज के।
रतनतेज मन मांहि, तवैं अनुपमा की रही ॥६७॥

करी हुती सुभ जांनि, सेठ सगाई मूढ़ सौं।
पछैं लक्षण पहचांनि, करी अवज्ञा सठतनी ॥६८॥

मणि व्योहारी साह, ताही पुरि गुणमित्र जो।
करिकैं अधिक उछाह, ताहि दई परणाय सो ॥६९॥

लहि पतिसौं संजोग, अलप काल ही सुख भयो।
तुरत हि हुवो वियोग, जल जात्रा चाल्यो पति ॥१००॥

रतन विसांहन काज, वैठौ साह जिहाज मैं।
वूड़ी वड़ी जिहाज, परी आय जल भवण मै ॥१०१॥

मरण धनीं कौ जांनि, दुखित भई अति अनुपमा।
महा रूप की खांनि, पति वूड़न ठौहर गई ॥१०२॥
वूडी जल मैं जाय, महा मोह परभाव तैं।
भव भव अति दुखदाय, मोह समान न शत्रु को ॥१०३॥
नगर राजपुर मांहि, गंधोतकट सुभ सेठ है।
जा मैं औगुन नांहि, गुन अनेक करि जो भरयो ॥१०४॥
ताके गेह मझार, जनम परेवा कौ लह्यो।
दोऊ अति हित धार, इक नर इक नारी भई ॥१०५॥
पवनवेग सुभ नाम, भयो कवूतर गुण मितर।
रतिवेगा अभिरांम, भई परेवी अनुपमा ॥१०६॥
गंधोतकट के पूत, सीखैं गुरु पै अक्षरा।
ए धारैं सव सूत, दोऊ तिन पैं जाय कैं ॥१०७॥
श्रावक व्रत्त प्रवीन, सेठ सेठनी सुभमती।
जिन आज्ञा आधीन, तिनकौं लखिए सुरझिया ॥१०८॥
भये शांति मति धीर, पंषी ही के जनम मैं।
नदी गंग कौ नीर, तिसौ ऊजलौ मन भयो ॥१०९॥
अति हि परसपर नेह, धर्म सनेही अव भये।
वसैं सेठ कैं गेह, परम प्रीति के पात्र ए ॥११०॥
सुवरणतेज अयांन, वैर भाव धरि जुगल सौं।
मूवो पाप निधांन, हूवो दुष्ट विलाव सो ॥१११॥
कवहुक इनकौं देखि, महा निरदई पापधी।
अपनौं औसर पेखि, पकरी रतिवेग सुभा ॥११२॥
ग्रसैं राह ज्यौं क्रूर, चन्द्रकला कौं दुष्ट धी।
त्यौं विलाव अघपूर, ग्रसी कवूतर की तिया ॥११३॥
तवै कवूतर जान, अति ही भिरयो विलाव तैं।
नख पक्षादिक घात, करिकैं नारि छुडाय ली ॥११४॥

पकरै पापी याहि, ते तैलोक जु आइया ।
अति हि डरायो ताहि, गयो भागि अति नीच जो ॥११५॥

इक दिनि पापिनि पासि, रची पार ध्यांवन विषै ।
तामैं सो गुणरासि, आय गयो परवी व्रती ॥११६॥

रतिवेगा धरि आय, दरसाइ लिखि चूंच सौं ।
तजी कवूतर काय, निश्चै धारौ सज्जना ॥११७॥

करी दिलासा साह, सवनि सतोषी पक्षणी ।
अति उपज्यो पतिदाह, त्यागे प्राण कवूतरी ॥११८॥

सो जिनधर्म प्रभाव, श्रीचंद्रा पुत्री भई ।
तुम्हरै सरल सुभाव, महा गुणवती मतिवती ॥११९॥

आजि क्रीडते देखि, सुघट परेवा दंपती ।
निज पूरव भव पेखि, पाय मूरछा मैं परी ॥१२०॥

मो सौं निह संदेह, भासी परभव वारता ।
मैं तुम आगै एह, कही जथारथ नाथ जी ॥१२१॥

अलक सुंदरी वैन, सुनि करि चिंतातुर भये ।
क्यौं लहिये सुख दैन, पूरव भव पति पुत्रिको ॥१२२॥

ता विनु या भव मांहि, नहि परनैं इह सुभमती ।
या कै वांछा नांहि, और पुरष की चित्त मैं ॥१२३॥

पूरव भव व्रत्तांत, श्रीचंद्रा कौ पट्ट मैं ।
लिखवायो अति कांत, तवैं सुमित्र सु वुद्धि नै ॥१२४॥

रंगतेज इक नाम, नटवर गनि मैं अधिक जो ।
मदन लता एक धांम, नटनी नृत्य प्रवीन सो ॥१२५॥

तिन कौ करि सनमान, दानादिक वहु देय कैं ।
सौंप्यो पट्ट निधान, सव व्योरौ समुजाय कैं ॥१२६॥

नट नटनी पट लेय, पुहपक वन मैं जाय कैं ।
फैलायो चित देय, नाचन लागे रीति सौं ॥१२७॥

देखैं लोक अनेक, देखि देखि व्हैं अति खुसी।
ताहि वन मैं एक, महा मुनीसुर दिढ़वृती ॥१२८॥

हुते ध्यान लवलीन, ज्ञान परायण पूरणा।
मन उनमन तन खीन, नाम समाधिसुगुप्त जे ॥१२९॥

अर ताही वन मांहि, क्रीडा कौं कन्या पिता।
आयो हो सक नांहि, तहां भेटिया मुनिवरा ॥१३०॥

तीन प्रदक्षण देय, करि वंदन कर जोरि कैं।
जा करि शिव सुखलेय, सो जिन धर्म सुन्यों सुधी ॥१३१॥

सुरग मुकति दातार, धर्म समान न वस्तु को।
जे आतम ग्यातार, ते हो धर्म धरैं सही ॥१३२॥
सुनि कैं धर्म सुरूप, पूछयो राय सुमित्र नैं।
हे मुनिगण के भूप, कहौ क्रिपा करि श्री गुरु ॥१३३॥

पूरव भव भरतार, मेरी पुत्री कौ प्रभू।
कौंन सु खेत्र मझार, तिष्टै कौंन दसा धरया ॥१३४॥

तव वोले मुनिराय, अवधि ज्ञान लोचन महा।
सुनौ सुचित्त लगाय, नगर नांम हेमाभपुर ॥१३५॥
तिष्ठै तहां अनूप, वणिक पुत्र सावंत जो।
जोवन-वंत सुरुप, लखिमीधर भाई नषै ॥१३६॥

छंदवंड दोहा

ए सुनि मुनि के वचन विसाला, हरष्यो राव सुमित्रा।
ताही क्षण पुत्री कौं लै करि, चाल्यो बुद्धि विचित्रा ॥१३७॥
संग लये नट नटिनी दोऊ, लये परिग्रह लारा।
पहुच्यो पुर हेमाभ सितावी, जहां पुत्रि भरतारा ॥१३८॥
जाय तहां अर नृत्य नचायो, लोक देखनैं आया।
लोक लार नंदाढि हु आया, पट मैं चित्त लगाया ॥१३९॥

उपज्यो जाती समरण याकौं, तुरत मूरछा होई।
सीत क्रिया करि सज्जन लोकां, मेहा मूरछा खोई ।।१४०।।

पूछ्यो जीवंधर नें कारण, मुरछा कौ भाई सौं।
तव नंदाढ़ि पट्ट कौ लिखियो, भाष्यो सुखदाई सौं ।।१४१।।

सो गुणमित्र अनुपमा भरता, पाय कबूतर काया।
भयो रावरौ ल्हौरौ भाई, कुल श्रावक कै आया ।।१४२।।

सुनि करि खुसी भयौ जीवंधर, थप्यो व्याह सुखदेवा।
प्रथम हि मंगल कारण महती, रची जिनेसुर सेवा ।।१४३।।

सुनौ और व्रत्तांत जु भाई, हरि विक्रम इक नामा।
भीलनि कौ नायक नामी जो, जाकै वहुत हि गामा ।।१४४।।

सो भाइनि के भै तैं भागौ, छांडी धरा पुरांनी।
आय कपिद्ध्य नांम वन मांही, थिरता अपनी ठांनी ।।१४५।।

नाम दिसागिर परवत ऊपरि, वनगिर नगर वसायो।
जाकै नारि सुंदरी नामा, सुत वनराज कहायो ।।१४६।।

हरि विक्रम कै प्यारे चाकर, वट वृक्ष जु अर मित्रा।
चित्रसेन फुनि सैंधव नामा, वहुरि अरिंजय चित्रा ।।१४७।।

शत्रु मर्दनो अति वलवंता, ए छह मुखिया गनियां।
अर वनराज पुत्र कै दोई, सखा एक चित भनियां ।।१४८।।

लोहजंघ अर है श्रीषेण जु, एक दिवस ए दोई।
नगर सोभपुर गये देखिवा, श्रीचंद्रा तिन जोई ।।१४९।।

खेलत ही उपवन कै मांहि, वहुत सहैली संगा।
लखि कैं याकौ रूप अनूपम, देविनि कौ सौ अंगा ।।१५०।।

करत प्रसंसा जात हुते ए, दाटे घोट कपालां।
ते घोरनि कौं पानी पावन, आये नंदी नाला ।।१५१।।

दोऊ भील रोस धरि मन मैं, गये आपनैं थांनै।
कही वात वनराज कनारैं, हरि विक्रम नहि जांनैं ।।१५२।।

सुंदर रूप क्रांतिधर कन्या, हम दीखी अद्‌भूता ।
असी और नहीं मंडल मैं, सुनि किरातपति पूता ।।१५३।।

भयो महा कामातुर पापी, जो अन्याय सुरूपा ।
सुवरण तेज वहुरि मंजारा, सो वनराज परूपा ।।१५४।।

पूरव जनम हुती जु सगाई, अव अति आतुर हूवो ।
काहू भांति ताहि तुम ल्यावो, दीयो तिनकौ दूवो ।।१५५।।

ते अति जोर चोर अघपूरा, लोहजंघ श्रीषेण ।
ले करिकै यक सांवत लारै, आये कन्या लेण ।।१५६।।

कन्या की सोवनसाला जो, ताहि ठोक करि पापी ।
लाय सुरंग सोवती कन्या, लेय गये संतापी ।।१५७।।

डारि गये इक लिखि कैं पत्रा, नाम करण कौं एई ।
पहुँचे तुरत भीलपति सुतपैं, राति विषै ही तेई ।।१५८।।

ससि रेखा जुत सनि मंगल ज्यौं, श्रीचंद्रा जुत दोऊ ।
लखि करि खुसी भयो वनपति सुत, जोवन छक मति खोऊ ।।१५९।।

प्रात समै वह वांच्यो पत्रा, जांनी भीलां लीनी ।
किंनर मित्तर यक्ष मित्र नैं, तवै चढ़ाई कीनी ।।१६०।।

कन्या के भाई ए जोधा, पठए राव सुमित्रा ।
तुरत जाय भीलन सौं लरिवा, लागे जुद्ध विचित्रा ।।१६१।।

लोहजघ अर श्रीषेण जु द्वै, लरे वहुत कवरनिसौं ।
हारि गये राजा के पुत्रा, जीति सके नहि इनिसौं ।।१६२।।

श्रीचंद्रा ले मौंन जु वैठो, विनु दरसन जिनराई ।
अर विनु देखें नगर सोभपुर, भोजन करौं न काई ।।१६३।।

लखि कैं याकौं विरकत चित्ता, वनपति सुत वहु दूती ।
तेडी अर तिनपै यों भाषी, याहि करौ रस गूती ।।१६४।।

तव वै आई श्रीचंद्रा ढिग, साम भेद वहु जांनैं ।
वोलि महासती सौं पापिनि, तू क्यौं चिंता आंनैं ।।१६५।।

करि जु सनान पहरि सुभ कपरा, धारि विभूषण बाई ।
फूल माल लै चरचि सुगंधा, लै भोजन सुखदाई ।।१६६।।
करहु सुखनि की वात जु हमसौं, मिनख जनम फल एई ।
भोग विमुख मति नरभव खोवै, नव जोवन सुखसेई ।।१६७।।
जौंनि अनेक विषै इह दुल्लुभ, ताहू मैं इह रूपा ।
नांही वर वनराज सारिषौ, पुरुषनि मांहि अनूपा ।।१६८।।
करि अंगीकृत वनपति सुत कौं, चांदिनि ज्यौं चंदर कौं ।
आदि चक्रिकौं राजभूति ज्यौं, सची जथा इंदर कौं ।।१६९।।
जैसैं भूषण कलप वृक्ष सौं, लपटि रहैं आभरणा ।
त्यौं वनराज कंवर सौं सुंदरि, तन मन एकीकरणा ।।१७०।।
लहि करि चिंतामणि कौं सुवुधी, कौंन हाथ सौं डारै ।
इत्यादिक दूतिनि के वचना, कन्या का मन धारै ।।१७१।।
जव वनराज दिखायो भै अति, सुनी तात ए वातैं ।
तव तिह दाव्यो पुत्र कुवुद्धी, करै न अधिकी यातैं ।।१७२।।
अपनी पुत्रिनि भेली राखी, दीनी अधिक दिलासा ।
इह तौ मौन लियां ही वैठी, परमेसुर की दासा ।।१७३।।
अव द्रिढ़मित्र सुमित्र आदि सहु, भेले व्है करि भाई ।
सजि वजि सेन लेय कैं अधिकी, आये तुरत चलाई ।।१७४।।
घेरयो नगर भील कौ सीघ्रहि, भील हु लरिवा आया ।
जव जीवंधर जीव दयाला, मन मैं मता उपाया ।।१७५।।
नास होयगौ वहु जीवनि कौ, या मैं कछु न भलाई ।
तव चिंतयो मन मांहि सुदरसन, जक्ष महा सुख दाई ।।१७६।।
यादि करत ही आयो जक्षा, ल्याय कन्यका दीनी ।
कारिज सिद्धि कियो मित्रनि कौं, किसहि न पीरा कीनी ।।१७७।।
पाप भीत जे प्रांनी ज्ञानी, करि उपाय रण टारैं ।
काहू कौंन सतावैं कवही, सहजैं काम सुधारैं ।।१७८।।

काज सिद्धि करि रारि मेटि करि, चले आपनैं थांना ।
फुनि वनराज दुष्ट वुद्धि श्रुति, आयो लरन अयांनां ।।१७६।।

तव ताकौं अति नीच पुरिष लखि, पकरचो जक्ष संयानैं ।
सौंप्यो जीवंधर कौं तव तिन, दीयो वंदी खांनैं ।।१८०।।

सेना रम्य सरोवर ऊपरि, किये सेन जुत डेरा ।
भोजन कारण चारण मुनिवर, आये सिव सुख हेरा ।।१८१।।

करि वंदन विधि पूरव भोजन, दीयो जीवंधर नैं ।
पंचाचरिज दान परभावैं, पाये गुण ततपर नैं ।।१८२।।

देखि दांन फल त्यागि चित्तमल, तीनहि जनम प्रवंधा ।
लखे भील सुत या भवतांई, जिते हुते संवंधा ।।१८३।।

पुत्र छुडांवन वल ले आयो, हरि विक्रम अति प्रवला ।
ताहू कौं पकरचो जषि ततखिण, जखि आगै जन अवला ।।१८४।।

तव वनराज सवनि पैं भाष्यों, सुनौं सकल ही सुवुधो ।
या भवतैं पहली तीजै भव, हुतौ वणिक सुत कुवुधी ।।१८५।।

सुवरण तेज नाम हौ मेरौ, जिन मारग न पिछान्यों ।
सेये सात विसन मैं अति ही, कीयो मन कौ जान्यों ।।१८६।।

मरि करि मारजार हूं हूवो, इक होती जु परेवी ।
मैं पापी मारन कौं दौरचो, महा दुष्टमति सेवी ।।१८७।।
कवहुक कोई मुनिवर स्वांमी, पठत हुते जिनवांनी ।
तामैं चउगति दुख कौ वरणन, भाषत हे गुणखांनी ।।१८८।।
सुनि करि वैर भाव मैं त्याग्यो, तजि विलाव की देहा ।
लह्यो भील कै कुल मैं जनमा, या सौं धारचो तेहा ।।१८६।।
सुवरण तेज जनम मैं मेरी, यासौं हुती सगाई ।
इह होती जु अनुपमा नामा, मोहि नही परणाई ।।१६०।।
तातैं नेह भाव तैं मोकौं, उपजी हरण कुवुद्धी ।
सो सव माफ करौ मुझ चूका, तुम हौ महा सुवुद्धी ।।१६१।।

सुनि करि याके वचन संवनि नैं, जांनी वात प्रमाना ।
पूरव नेह थकी इनि आंनी, और न कारण जाना ।।१६२।।

तवै क्रोध तजि भये सांत चित, जीवंधर ततकाला ।
पूछि सुमित्र वहुरि दिढ़मित्रैं, छोडे अटवी पाला ।।१६३।।

हरिविक्रम वनराज दुहूं सौं, क्षमा भाव करि भाई ।
घर कौं विदा किये तजि दोषा, जिनमति रीति सिखाई ।।१६४।।

सत पुरषनि कैं धरमिक सौं हित, धरम समान न कोऊ ।
ह्यां तै गये नगर हेमाभ जु, दुखियनि के दुख खोऊ ।।१६५।।

दोय तीन दिन रहे तहां फुनि, नगर सोभपुर आये ।
श्रीचंद्रा नंदाढ्य कंवर कौं, दई तहां परणाये ।।१६६।।

अति विभूति सौं भयो विवाहा, जोरी मिली समाना ।
धन जोवन विद्या गुण पूरा, दोऊ रूप निधांना ।।१६७।।

इति श्री जीवंधर-स्वामी-चरित्रे महापुराणानुसारि वालाववोध भाषायां पदमोत्तमा विषापहार, पद्मोत्तमा विवाह, सहस्रकूट चैत्यालय कपाट स्वयमेवोदघटन, क्षेमसुंदरी विवाह, धनुर्वेद प्रवीणता, हेमाभा विवाह, नंदाढ्य मिलन श्रीचंद्रा नंदाढ्य पूर्वभव-वर्णन, श्रीचंद्रा हरण, किरातो परिगमन, किरात वंधन, किरात मोचन, नगर सोभपुरे नंदाढ्य श्रीचंद्रा विवाह वर्णनो नाम तृतीयोध्यायः ।।३।।

चतुर्थ अध्याय

छंद भुजंगीप्रयात

जवै होई चूकौ विवाहो विधी सौं,
तवै सीख मांगी हितू भूपती सौं ।
महाधीर जीवंधरा लार भाई,
सु हेमाभ नग्रैं चले सुखदाई ।।१।।

वडी सेन साथे सुपंथा मझारे,
लख्यो एक तालाव डेरा जु ढारे।
गये लोक पांनी भरीवा कितेई,
डसे दुष्ट माखीनि पीरे घर्णेई ॥२॥
सुनी वात स्वामी जवै चित्त मांही,
विचारी निसंदेह मांखी जु नांही।
इहां कारणो और होई सुकोई,
तवै चितयो जक्ष भीरी जु सोई ॥३॥
चित तांहि आयो हितू जक्ष राया,
विडारी महा खेचरी नाम माया।
सही खेचरैं लेय आयो जु पावां,
तवै आप पूछी तिसै सुद्ध भावां ॥४॥
किसै हेत रोक्यो इहै तैं तलावा,
तवै खेचरो भासई आप भावा।

पूर्वभव कथा—

सुनौं भव्य मेरी कथा चित्त लाये,
हमारे हि भागैं इहां आप आये ॥५॥
हुतौ एक माली धनाढ्यो महंता,
पुरे राजनग्रे वसै पुष्पदंता।
'त्रिया' नाम ताकै सुकुसुमश्री है,
सुतो जाति भट्टो सु संगाचरी है ॥६॥
तहां ही वसै जू धनंदत्त नामा,
त्रिया नाम नंदी सती सील धामा।
सुतो नाम चंद्राभ मेरो सखा सो,
सही जैनधर्म जिनधीस दासो ॥७॥

तिसै तू कदाचित्त धर्म स्वरूपा,
दिखातौ हुतौ नाथ कारुण्य रूपा ।
तवै मैं हु स्वामी हुवो धर्म रागी,
तजे जू अभक्षा भयो पुण्यभागी ॥८॥

करे आयु पूरी मुवो हूं प्रभूजी,
लह्यो जन्म विद्याधरौं कौ विभूजी ।
इही खेत्र मांहैं सुवैताडि वासी,
गयो एकदा सिद्ध कूटैं विलासी ॥९॥

लखे चारणा दोय साधू महंता,
विनैवंता होई नमें ज्ञानवंता ।
तिहारे हमारे सुनैं भौ तहांजी.
तवै देखनें तोहि आयो इहांजी ॥१०॥

इहै ताल रोक्यो दियो नां प्रवेसा,
तवै रावरौ दर्स पायो नरेसा ।
कहौं मैं तिहारे सुनौं भौ विवेकी,
कहे औधिज्ञांनी करे चित्त एकी ॥११॥

सही धातकी खंड दीपो दिपै जी,
लखें सोभ जाकी सुरालै छिपैंजी ।
जहां पूर्व वैदेह क्षैत्रो विसाला,
तहां पुष्कलावत्य देसो रसाला ॥१२॥

वसै पुंडरीकि नृप नग्री सुथांना,
जयंध्रो नृपो नीतिवांनो सुजांना ।
जयावत्य रांनी जयद्रढ पूता,
सवै जैनधर्मी धरैं जे विभूता ॥१३॥

गयो एकदा क्रीडनैं राजपुत्तो,
मनोहार वागैं सखा संघ जुत्तो ।
लख्यो हंसवाला जवै चेटकांनै,
तवै ल्याय सौंप्यो कुमारैं तिनानैं ।।१४।।

दोहा

करतौ क्रीड़ा सर विषै, रहतौ माता पास ।
चैन पावतौ तात पैं, धरतौ महा विलास ।।१५।।

तात मात तैं चेटकां, वृथा विछोह्यो वाल ।
कौतुक कौं लीयो कंवर, चरण चूंच चखि लाल ।।१६।।

पोषन कौ उद्यम कियो, राख्यो नीकी भांति ।
पै या विनु क्षरण एक नहि, तात मात कौ सांति ।।१७।।

शोक सहित माता पिता, सवद करैं नभ मांहि ।
वारंवार विलाप के, या मैं संसै नांहि ।।१८।।

तवै चेटकां क्रोध करि, मारयो सर तैं हंस ।
पापिनि के परिणांम मैं, होय न करुणा अंस ।।१९।।

भागि गई तव हंसनी, लखि पति कौ परलोक ।
सुनि रांनि ए वात सहु, उर मैं धारयो सोक ।।२०।।

चेटक तैं अति कोप करि, पुरतैं दियो निकासि ।
कंवर थकी हू अति खिजी, जीव दया की रासि ।।२१।।

रे रे पुत्र अयान तैं, कियो निंद्य इह काम ।
कनैं राखि खल चेटका, हुवौ पाप कौ धाम ।।२२।।

अव या वालक कौं सही. मा सौं तुरत मिलाय ।
तव हि जयद्रथ कंवर नैं, दयो ताहि पहुँचाय ।।२३।।
अर वहुत हि करुणा करी, मात वचन उर धारि ।
निंद्यो निज कौं अति तिनैं, दई कुसंगति टारि ।।२४।।

दिवस सोल मैं मात पैं, पहुँच्यो वालक सोई ।
लह्यो हंसनी चैंन जव, निज सुत कौं अवलोय ।।२५।।

चातक कौं चउमास ज्यौं, जलधर धारा जोग ।
करिकैं अति तिरपत करैं, हरै दाह दुख सोग ।।२६।।

त्यौं वालक कौं मात सौं, जयद्रथ कंवर मिलाय ।
कियो सुखी सव दुख हरचो, जिन आज्ञा उर लाय ।।२७।।

चैत्र मास ज्यौं फूल कौं, करै वेलि संजोग ।
भानु उदै अलि कौं जथा, करै कमलिनी जोग ।।२८।।

त्यौं नृप सुतनैं हंस सुत, धरचो हंसिनी पासि ।
पर दुख हरण समांन नहि, और पुण्य की रासि ।।२९।।

कैयक दिन घर मैं रहे, सुख सौं कवर सुजान ।
कवहु कलहि वैराग कौ, कारण अति मतिवांन ।।३०।।

राज भार परिवार तजि, ले सिर परि तप भार ।
परम समाधें देह तजि, लह्यो सुरग सुख सार ।।३१।।

सहस्रार नामा सुरग, सही वारमौं होय ।
अष्टादस सागर तहां, सुख लहि चै करि सोय ।।३२।।

भयो धर्म धी अति चतुर, तू जीवंधर नांम ।
हण्यों हंस चेलांनि नैं, करि हिंसा परिणांम ।।३३।।

सो काष्टांगारिक भयो, तिह मारचो तुव तात ।
युद्ध विषै जोधा महा, सत्यंधर सुख दात ।।३४।।

हुतौ जयंधर भूप जो, सौं सत्यंधर जांनि ।
अर षोडस दिन तैं जुदौ, मात थकी सुत आंनि ।।३५।।

राख्यो ताके पाप तैं, षोडस वर्ष वियोग ।
तोहि भयौ निज मात तैं, पाप समान न रोग ।।३६।।

ए विद्याधर के वचन, सुनि जीवंधर जाहि ।
गन्यों आपनौं मित्रवइ, अति परसंस्यो ताहि ।।३७।।

तहां थकी फुनि गमन करि, कैयक दिन कै मांहि।
पहुचे पुर हेमाभ ए, सुखसौं काल गमांहि ।।३८।।

छंद वेसरी

जीवंधर की तलाश में छहों भाइयों का प्रस्थान—

अब तुम सुनौं और विरतांता, खग पुत्री जीवंधर कांता।
मधुरादिक पट भाइनि तासौं, पूछी बात छिपी नहि जासौं ।।३९।।

कहु गंधर्वदत्ता सुखदाई, कहां गये हमरे है भाई।
तू सब जांनें विद्या रूपा, पतिव्रता जिनधर्म सुरूपा ।।४०।।

तब बोली विद्याधर पुत्ती, अति परवीन बहुत गुण जुत्ती।
सुजन देस हेमाभ सुनग्रा, बहु नग्रनि मैं सो गनि अग्रा ।।४१।।

तहां विराजै दोऊ भाई, अति सुखिया सब कौं सुखदाई।
तुम चिंता कबहू मति आंनौं, मेरे वचन जथारथ मांनो ।।४२।।

तब ए छहौं परम अनुरागी, चले भ्रात देखन बड भागी।
मात पिता की आज्ञा लैकैं, सब ही कौं सुख साता दैकैं।।४३।।

मारग मैं दंडक वन मांही, आय नीसरे संसै नांही।
देखन कौं तपसिनी आई, अद्भुत रूप देखि सुख पाई ।।४४।।

माता विजया से मिलन—

इनकौं लखि करि विजया माता, पूछ्यो कहां जाहु सुखदाता।
अर आये किस दिसतैं भाई, तब इन बात कही समुझाई ।।४५।।
सुनि करि विजया लहि संतोषा, जानी ए सब ही गुण कोषा।
है मेरे सुत कौ परिवारा, तब इनसौं बोली व्रतधारा ।।४६।।
आजि इहां बसि करि तुम जावो, अर भाई कौं इत ही लावो।
लखि जीवंधर कौ सौ रूपा, इन जांनीया अतुल अनूपा ।।४७।।
होइ किधौं जीवंधर माता, धर्म धारिणी अघ की घाता।
तब तिन कह्यो करें हम योंही, माता तुम आग्या दी ज्योंही ।।४८।।

मिष्ट वचन करि अति संतोषी, चले इहां तै षट ए सोषी।
मारग मांहि लुटेरा आये, तिनसौं रण करि तुरत भगाये ।।४६।।

अपनी इछा जातहु ते ए, सूरवीर वहु वुद्धि जुते ए ।
आय पहौंचे पुर कै पासे, कहौं वात इक और प्रकासे ।।५०।।

अति हेमाभ नगर कौ साथा, लूटयो भीलनि जांनि अनाथा।
राजद्वार मैं लोक पुकारे, तव जीवंधर आपु पधारे ।।५१।।

जाय भगाय दये वनपाला, वनियनि कौं धायो सव माला।
तव करि भील मदति षट भाई, लरे भ्रात सौं अति सुखदाई ।।५२।।

जीवंधर से मिलन—

लखि कै निजं भाई कौं नीरा, नाम पत्र जुत भेज्यो तीरा।
तव जांन्यो जीवंधर एही, मधुरादिक आये अति नेही ।।५३।।

मिले परसपर आठौं भाई, ए द्वै अर वै षट गुणराई।
नगरि राजपुर की सहु वातां, जीवंधर पै करी विख्यातां ।।५४।।

कैयक दिन ह्यां करि विसरामां, कवरैं लेय चले निजधामां।
आये दंडक वनवर वीरा, आठौं धीर हरैं पर पीरा ।।५५।।

माता से मिलन—

तहां लखी विजया गुणखांनी, अति विलाप जुत सोक निधांनी।
सुत सनेह तै आंचल जाके, भरि आये पै करि अति ताके ।।५६।।

अश्रुपात परिपूरण नैंना, अति दुरवल तन सर वीलत वैंना।
वहु चिंता जुत है संतप्ता, जटी भूत सिर केस विषिप्ता ।।५७।।

नित्य निरंतर उश्ननिसासा, तिन करि विवरण अधर उदासा।
अति मलीन जाके सव दंता, सर्वाभरण रहित दुखवंता ।।५८।।

ज्यौं प्रद्युमनि कौं रुकमणि माता, त्यौं निज सुत कौं इह सुभ गाता।
चतवंती निज चित्त मभारा, सुत वियोग कौ दुख अतिभारा ।।५६।।

तब ही आय परयो सुत पांवां, हाथ जोरि सिर नमि सुभ भावां।
दई असीस ताहि तव माता, होहु पुत्र तुम्हरै सुख साता ॥६०॥

अति कल्यांण लहौं तुम लाला, मेरी आंखि तुही गुणपाला।
उठौ उठौ जग के सुखकारी, धर्मवंत जिनमारग धारी ॥६१॥

असे वचन कहे फुनि वोली, चिरजीवो इह तेरी टोली।
तुव दरसन करि लह्यो अनंदा, टूटि गये सव ही दुख फंदा ॥६२॥

या विधि पुत्र थकी सुभ वांनी, भासत ही विजया वुधि वांनी।
एतै ही आई सो जक्षी, जाकै माता की अति पक्षी ॥६३॥

न्हांन विलेपन सव आभरणा, वस्त्रासन भोजन सुख करणा।
पहुप माल औरहु सुभवस्ता, आठनि कौं दीनी परसस्ता ॥६४॥

कियो साहिमी वछल जानैं, साधी जिन मारग विधि तानैं।
करि सतकार गई निजधामा, धर्मवती अति ही अभिरामा ॥६५॥

साचौ मित्रापन है एही, आपद मैं त्यागै न सनेही।
मात लख्यो इह सुत वड़ भागी, प्रथ्वी कौ नायक गुणरागी ॥६६॥

वुद्धि निधांन पराक्रम धारी, अरिगंजन सज्जन सुखकारी।
तव याकौं एकांत जु लैकैं, समझायो अति सिक्षा दैकैं ॥६७॥

माता द्वारा पूर्व वृतान्त कथन—

सत्यंवर तेरौ निज ताता, नगर राजपुर कौ सुखदाता।
महाराज राजनि कौ राजा, सूरवीर सावंत समाजा ॥६८॥

ताकौ जुद्ध विषैं हति भाई, काष्टांगारिक राज कराई।
सो अति नीच तिहारौ सत्रु, तुम तौ सब जीवनि के मित्रू ॥६९॥

तात तनें थांनक कौ त्यागा, तुम कौं जोग्य नहीं वड़ भागा।
इह सुनि माता कौ आदेशा, कियो पुत्र परमांन असेसा ॥७०॥

सुनिकैं तातघातअति कोपा, उपज्यो अरिपरि सव सुख लोपा।
तौ पनि दाव्यो हिरदा मांही, काहू सौं प्रगट्यो कछु नांही ॥७१॥

निज मन मैं धारी तव स्वांमी, विनां समै सूरत्व न कांमी।
सव कारिज कौ साधन काला, काल पाय ह्वै धांन विसाला ॥७२॥

तवै मात सौं अमृत वांनी, वोले पुत्र महा सुखदानी।
तुव परसाद सकल ह्वै नीकी, तुम चिंता मेटौ निज जीकी ॥७३॥

इह कारिज पूरण ह्वै माई, तव नंदाढ्य तो कनैं आई।
तोहि वुलाऊं तव ह्वै साता, तू माता नर देही दाता ॥७४॥

तव तक ह्यां तिष्ठौ सुखरूपा, सोक रहितधरि ज्ञानअनूपा।
इह कहि सव सामिग्री मा पैं, अर कछुयक परिवार हु तापैं ॥७५॥

राखि आप चाले वुधिवंता, नगर राजपुर कौं वलवंता।
पहुचे नगर निकटि जव नाथा, मनैं कियो अपनौं सव साथा ॥७६॥

जीवंधर का राजपुर नगर में प्रवेश—

मेरौ आवौ गोपिहि राखौ, काहू पासि कछू मति भाखौ।
भिन्न भिन्न समझाये लोका, आप विचक्षन अति गुन थोका ॥७७॥

जक्ष मुद्रिका कै परभावा, वणिक भेष धारचो सुभ भावा।
पैसि नगर मैं आनंद रूपा, कोइक देखी हाट अनूपा ॥७८॥

तहां विराजे पुण्य निधांना, भाग्यवंत सावंत सुजाना।
लह्यो लाभ जव साह अपारा, तव तिन जांनीए गुणधारा ॥७९॥

सागरदत्त नाम है जोई, जाकै अमला नारि जु होई।
विमला पुत्री अति मतिवंती, रूपवती सो वहु गुणवंती ॥८०॥

विमला के साथ विवाह—

आगै निमति या विधि भाख्यो, कही सांच संदेह न राख्यो।
जो नर हाटि विराजै आई, होय लाभ ताकरि अधिकाई ॥८१॥

सो विमला परनैं सुभकारी, ए सव वात सेठ उरधारी।
देखि कवर कौं जांनी एही, विद्या निधि अति सुन्दर देही ॥८२॥

तव इनकौं पुत्री परणाई, दियो दायजौ अति अधिकाई ।
कैयक दिन सुसराकै स्वामी, रहे महा सुखसौं विसरांमी ॥८३॥

जीवंधर परिव्राजक के भेष में—

एक दिवस परिव्राजक भेषा, धरि करि जाय भूपकौं देषा ।
दे आसीरवाद वडभागी, वोले मोहि भूख वहु लागी ॥८४॥

तातैं तोहि जाचनैं आये, दै सुभ भोजन भूख नसाये ।
जव काष्टांगारिक अज्ञाना, करी इनौं की वात प्रमांना ॥८५॥

तव जीवंधर सकुन विचारयो, निश्चै अपने उर मै धारयो ।
मेरौ उद्यम जो फल रूपा, ताकौ एही फूल अनूपा ॥८६॥

इह चितवन करि भोजन काजैं, वैठे वड आसन प्रभु राजैं ।
ल भोजन निकसे जव धारा, जव वोले मुखतैं वरवोरा ॥८७॥

वसीकरण चूर्णादिक वस्ता, है मोपै औषध परसस्ता ।
जिनकौ फल परतक्ष जु देखौ, मेरौ वचन सांच तव लेखौ ॥८८॥

जाकी रुचि ह्वै ल्यो ए सोई, इन तैं मनमथ जाग्रत होई ॥८९॥

चाहौ जाहि ताहि वसि कारौ, ए मुझ वचन हिया मैं धारौ ॥९०॥

राजद्वार के लोकनि पासे, अैसी विधि के वचन प्रकासे ।
सुनि करि हंसे सकल ही लोका, इन नैं मदन सूत्र अवलोका ॥९१॥

देखौ वृद्ध निलज्ज महा ए, भेष धार गनियें जु कहाए ।
मरण काल अति नीरै आयो, तौ पनि मनमथ मैं मनलायो ॥९२॥

चूरण अंजन गांठि कनारै, वसीकरण मोहण उरधारै ।
अैसै कहि हंसि करि सव वोले, तपसी तोमैं लखण अतोले ॥९३॥

सुनि इक वात हमारी भाई, गुणमाला कन्या अधिकाई ।
याही पुर मैं सेठ सुता जो, जोवनवंती रूप जुता जो ॥९४॥

आगैं इक जीवंधर नामा, गंधोतकट सुत वहु गुण धामा ।
तानैं चूरण और सराह्यो, अर गुणमाला कौ विसराह्यो ॥९५॥

तव ते पुरष मात्र थी जाकौं, चित्त उदास भयो अवला कौं।
काहू कौं परणै नहि सोई, वसी करै तू तौ अति होई ।।९६।।

तेरी परसंसा जग मांही, सव ही लें औषध सक नांही।
जेतौ मांगें तेतौ मोला, दे तोकौं ले वस्तु अतोला ।।९७।।

सुनि करि वनकी वांनी भाई, वोले भेष धारण गुणराई।
कहा विधी जीवंधर जांनें, चूरण वास कछू न पिछानें ।।९८।।

तुम्हरे गांव मांहि इक सोई, तरु नहि जहां इरंडहि जोई।
तव सव वोले होय सकोपा, तू तौ तापस पर गुन लोपा ।।९९।।

नोच पुरिप कौ इहै सुभावा, अपने गुन कौं करैं प्रभावा।
कहा जथेष्ठ वकै विप्रा, तोकौं हम जानैं इह लप्रा ।।१००।।

अपनी थुति अर पर की निंदा, न करै तेई जानि जतिंद्रा।
तू दुश्रुत उद्धत अति गर्वा, जानै मैं ही जानौं सर्वा ।।१०१।।

ए सुनि वचन तापसी भाषै, गुन ह्वै सो छिपिया नहि राखै।
एक महूरत मैं धट दासी, करो सेठ कन्या इह भासी ।।१०२।।

वृद्ध ब्राह्मण के भेष में गुणमाला के पास जाना—

गयो तुरत गुनमाला गेहा, धरि वूढे वांम्हन की देहा।
ताकी दासी लई वुलाई, तासौं यों भाषी द्विजराई ।।१०३।।

तेरी स्वामिनि कौं कहु जाये, वूढ़े विप्र वारणैं आये।
तव दासी गुणमाला पासे, जाय करी द्विज वात प्रकासे ।।१०४।।

स्वेछाचारी वांम्हन आयो, असौ वृद्ध न और लखायो।
तव गुणमाला लयो वुलाये, पूछचो विप्र कहां तै आये ।।१०५।।

विप्र कहयो पाछातैं आवैं, अर आगा कौ पाव धरावैं।
तव सव हसी सहैली ताकी सुनि वोली वाम्हन विरधा की ।।१०६।।

वांम्हन कह्यो हसौ मति कोई विरधापन सवही मैं होई।
गनिका विरधा पन नहि चाहै नव जोवन कौं अतिहि उमाहै ।।१०७।।

वाम्हन तापस कौं तौ एही, आभूषण जांनौं जरदेही।
तव वोली गुणमाला वाई, किती दूर जावो द्विजराई ॥१०८॥

वांम्हन वोल्यो तीरथ तांई, धर्म हेत आगां कौं जांई।
वांम्हन कौं लखि सेठ सुतानैं, जानी मन मैं वुद्धि जुता नैं ॥१०९॥

इह केवल तन ही करि वृद्धा, मन अर वचन देखतां गृद्धा।
तव याकौं भोजन दै चोखा, भली भांति करि प्राण जु पोखा ॥११०॥

दै भोजन वोली गुण वित्ता अव तुम जाहु जहां हैं चित्ता।
वाम्हन कहयो भली तुम भाषी, भोजन मांहि कमी नहि राखी ॥१११॥

करि परसंसा उठनैं लागौ, वृद्धा सुरुप धरयां वड भागौ।
डिगि करि परयो धरणि मैं सोई, फुनि लाठी गहि उठियो जोई॥११२॥

कान्या की सज्या परि एही, जाय परयो वाम्हन जरदेही।
तव सव सखी सहैली कोपी, देषौ इन अति लज्या लोपी ॥११३॥

सज्या थंकी उठावन सारी, दौरि चितधरि रोस अपारी।
वाम्हन कह्यो सत्य तुम भासी, मैं निरलज्ज राग रस रासी ॥११४॥

लज्या तो नारीगण मांही, सोहै वहुरि पुरिष में नांही।
जो नर हू मैं हौवै लाजा, तौ नहि होइ भौग कौ काजा ॥११५॥
ए सुनि वृद्ध वाक्य गुणमाला, जानी इह नहि वृद्ध विसाला।
रूप पलटनी विद्याधारी, है इह कोई गुण निधि भारी ॥११६॥

इह विचारि वोली वुधिवांना, आये द्विज अपनैं मिजमांना।
कहा दोष सज्या परि एही, पौढे रहौ खीण अति देही ॥११७॥
हमरैं सज्या और विछावो, ए सज्या एही ले जावो।
यों कहि सारो सखी निवारी, वसे राति ह्यां द्विज तन धारी ॥११८॥
निसी कौं वाम्हन मतौ विचारयो, शुद्ध सुरनि करि राग उचारयो।
महा मधुर रस जनमन हारी, कांननि कौ अति आनंदकारी ॥११९॥
सुनि करि सेठ सुता सुख पायो, अैसौ राग किनी न सुनायो।
आगै जीवंधर नैं रागा, गायो हौ चित धरि अनुरागा ॥१२०॥

जब गंधर्वदत्ता तिन व्याही, वाम्हन हूं गावै विधि याही ।
उठि कैं प्रात समय गुणमाला, वाम्हन कौं करि विनै विसाला ।।१२१।।
पूछन लागी द्विज पति भाषौ, कौंन सास्त्र मैं परचै राखौ ।
वोले विप्र सुनौं मृगनैंना, तुमकौं देखि लह्यो हम चैना ।।१२२।।
धर्म अर्थ कामादिक सारा, हम अभ्यासे ग्रंथ अपारा ।
धर्म अर्थ ए वृक्ष सुरूपा, काम शास्त्र फल रूप अनूपा ।।१२३।।
ताकौ कछु यक कहौं विचारा, सुनौं कांन धरि वचन हमारा ।
पञ्चेन्द्री अर विषय जु पंचा, इनही कौ इह सकल प्रपंचा ।।१२४।।
करकस नरम आदि वसु फर्सा, अर मधुरादिक षट रस सर्सा ।
कर्तृम स्वाभाविक द्वय गंधा, ताके भेद सुगंध दुगंधा ।।१२५।।
चेतन और अचेतन वस्तू, कुइ दुरगंध कोई परसस्तू ।
रूप पंच विधि है कृश्नादी, स्वर हैं सप्त भेद षडगादी ।।१२६।।
जीव अजीव संभवा जांनौ, चौदा दूण विषै परवांनौं ।
इष्ट अनिष्ट गनें छप्पन्ना, पुण्य जोगतें इष्ट उप्पन्ना ।।१२७।।
धर्म थकी ह्वै पुण्य निवंधा, अव तुम सुनौं धर्म परवंधा ।
जे अजोग्य विषया अन्याया, तिनकौ त्याग सुधर्म वताया ।।१२८।।
तातैं निषध विषै तजि दक्षा, सेवैं न्याय विषै सुभ पक्षा ।
काम शास्त्र के पण्डित तेई, कवहु अजोग्य विषै नहि सेई ।।१२९।।
सुनि करि सेठ सुता यों भाषै, वुधजन सोइ जु असुभ न राषै ।
हमरैं जो कछु लखौ अजोग्या, सोइ छुडावो पंडित जोग्या ।।१३०।।
देहु जोग्य कौ तुम उपदेसा, करौ आपनी दास विसेसा ।
तव पंडित सव कला सिखाई, याकौं वुद्धि दई अधिकाई ।।१३१।।
एक दिवस सहु पुर के लोका, वन विहार कौं गये असोका ।
आपहु गुणमाला लें साथा, वन देखन चाले गुणनाथा ।।१३२।।
लखि एकांत ठौर रमणीका, सेठ सुता जुत वैठे नीका ।
तव याकौं निजरूप दिखायो, परै जाहि लखि सुर सरमायो ।।१३३।।

देखि कन्यका संसैवंती, लज्यावंत भई गुणवंती ।
मौन लेय वैठी सुभ रूपा, कंवर लखी संदेह सुरूपा ।।१३४।।
तवै सवै चूरण वासादी, गुणमाला कौं वात जतादी ।
उपजायो विस्वास विसेषा, वहुरि धरयो विरधा कौ भेषा ।।१३५।।

पहुप सेज परि वैठे वृद्धा, कन्यासौं वोले गुण गृद्धा ।
दावि हमारे पाव जु प्यारी, तू हमसौं कवहू नहि न्यारी ।।१३६।।

तव वह महा नेह थी पावा, दावन लागी सरल सुभावा ।
देखि राजपुत्रादिक सारा, अचिरज रूप रहे गुण धारा ।।१३७।।

परसंसे मंत्रादिक याके, जस भासे सवनैं विरधा के ।
वन तैं आय कही गुणमाला, मात पितासौं वात रसाला ।।१३८।।

जीवंधर आये सुखकारी, तव तिन जांनी मन मैं सारी ।
दई ताहि परणाय कुमारैं, जा लखि सुर तिय अचिरज धारैं ।।१३९।।

ता संजुक्त रहे दिन केई, ससुरा कै घरि अति सुख लेई ।
पुण्य प्रभाव सकल सुख होई, पुण्य समान न जग मैं कोई ।।१४०।।

इति श्री जीवंधर-स्वामी-चरित्रे महापुराणानुसारि वालाववोध भाषायां विद्याधर मिलन, पूर्व भव निरूपण, हेमाभपुर आगमन, मधुरादि षट् भ्रातृ मिलन, स्वदेश प्रयांण, दंडक वने-विजया मात दर्शन, यक्षी सत्कार, राजपुरे आगमन, सागरदत्त सुता विमला विवाह, राजद्वार गमन, चूर्णादि वर्णन, गुणमाला वशीकरण, गुणमाला विवाह, सुखानुभवन निरुपणो नाम चतुर्थोध्यायः ।।४।।

पंचम अध्याय

दोहा

अव ससुरा के घर थकी, चले आपनैं गेह ।
नाम विजैगिर गंध गज, चढ़ि करि सुंदर देह ।।१।।

भ्रात सकल ही संग है, अर सेना चतुरंग।
जस गावैं जन नगर के, लखि लखि हरषै अंग ॥२॥

जीवंधर गंधोत्कट मिलन—

गंधोतकट के भाग धनि, धन्य सुनंदा भाग।
जिनकौ सुत गुण जुत महा, धरैं सकल जनराग ॥३॥
कीरति सब के मुख थकी, सुनत सुनत सुकुमार।
पहुँचे निज घरि धर्म धी, हरष सुरूप अपार ॥४॥
गंधोतकट कै पाव लगि, लगे सुनंदा पाव।
अति उछाव हूवो तवै, सुनी नगर कै राव ॥५॥
मन मैं धारचो दुष्टमति, काष्टांगारिक कोप।
देखौ वाणिज तनज ए, करी काणि सव लोप ॥६॥
अति उनमत्त भयो इहै, डरै न मोतैं रंच।
मंत्री लखि याकौ हृदै, वोले तजि परपंच ॥७॥
इह जीवंधर अति प्रवल, महाभाग मतिवत।
पूरव पुण्य प्रभाव तैं, याकौ उदै अनंत ॥८॥
अर याके घर मैं महा, खग पुत्री परवीन।
है गंधर्वदता सती, रमा तुल्य गुणलीन ॥९॥
जक्ष सुदरसन सारिखे, महा मित्र वलवांन।
कवहू न्यारै होंहि नहि, करैं कह्या परवांन ॥१०॥
मधुरादिक सातौं सखा, साता करी जांनि।
जिन सौं रण मैं जीतिवा, समरथ कोइ न मांनि ॥११॥
अर इह डीलां अति सुभट, है अभेद्य रण मांहि।
तातैं यासौं जुद्ध की, मन मैं आवै नांहि ॥१२॥
वलवंतनि सौं वैर करि, सुखी न होवै कोई।
इत्यादिक युत्तिनि करी, समझायो खल सोय ॥१३॥

तव चुप ह्वै रण तैं रह्यो, मंत्रिनि की सुनि वात ।
कंवर विराजै घर विषै, रसित सकल उतपात ।।१४।।

कहौं और इक वारता, सुनौं चित्त निज लाय ।
देस विदेह विदेहपुर, है गोंपिद्र सुराय ।।१५।।

रांनी प्रथवी सुंदरी, 'रतनवती' सुभ नांम ।
पुत्री सती सुरूप अति, वहुत गुणनि की धाम ।।१६।।

करी प्रतज्ञा तिन इहै, चंद्रक वेध प्रवीन ।
होय ताहि परनौं सही, परनर सकल अलीन ।।१७।।

याकी परतज्ञा पिता, जांनि विचारी एह ।
जीवंधर सौ या समै, नही सुभट सुभ देह ।।१८।।

धनुरवेद वेत्ता वहै, सकल वेद कौ जांन ।
इह उर धरि कन्या सहित, चाल्यो भूप सुजांन ।।१९।।

रतनावती का स्वयंवर—

गयो राजपुर राजई, ले सामग्रि अनूप ।
रच्यो स्वयंवर जायकैं, अद्‌भुत सोभा रूप ।।२०।।

पठई पत्री सवनिकौं, भूचर खेचर जेहि ।
आए पत्री वांचिकै, नगर राजपुर तेहि ।।२१।।

चंद्रक वेध सथापियो, जहां स्वयंवर साल ।
कोई वेधि सक्यो नहीं, हुते वहुत भूपाल ।।२२।।

देखि सवनिकौं सिथल चित्त, आये सेठ कुमार ।
जीवंधर जोधा महा, सुंदर सुघर अपार ।।२३।।

नमसकार करि सिद्ध कौं, आरजिवर्मा ध्याय ।
जो अपनौं गुर तप निधी, सकल कला कौ दाय ।।२४।।

चाप चढ़ाय लगाय सर, अचल चित्त वरवीर ।
वेध्यो चंद्रक वेध जो, जीवंधर रणधीर ।।२५।।

उदयाचल परि वाल रवि, दिपै जथा तम भेदि।
दिपै सेठ सुत सवसिरै, चंद्रक वेधहि छेदि ।।२६।।

सिंहनाद करि सुभट अति, गाज्यो नंदा पूत।
गूंजी तव दस ही दिसा, कंपे थिर चर भूत ।।२७।।

नीकैं वेध्यो वेध इनि, राखी कसर न कोय।
लागे परसंसा करन, भले पुरिख गुण जोय ।।२८।।

कंठ कंवर कै माल वर, करिकैं अधिक सनेह।
घाली रतनवती तवै, देख्यो अद्‌भुत एह ।।२९।।

तव सव सज्जन लोक नैं, कीरति कही वखांनि।
इनकौ संगम जोग्य है, दोऊ सव गुण खांनि ।।३०।।

सरद समै अर हंस तति, जथा जोग्य संवंध।
तैसैं कंवरी कंवर कौ, भयो जोगि सनमंध ।।३१।।

जय ह्वै सवही जायगा, पुण्यवतनि को ठीक।
यामैं कछु अचिरज नही, इह जांनौ तहकीक ।।३२।।

हुते जिते वुधिवंत नर, किनहि न धारयो रोस।
काष्टांगारिक आदि खल, उपजायो उर दोस ।।३३।।

पहली खग पुत्री वरी, तवकौ लीयां दोस।
रतनवती कौ रूपलखि, भयो रोस कौ कोस ।।३४।।

जीवंधर द्वारा पत्राचार—

हुवो उद्यमी जुद्ध कौ, कन्या हरणैं काज।
जीवंधर लखि विषमतानैं प्रवीन गुण राज ।।३५।।

सत्यंधर भूपाल के, जिते हुते रजपूत।
कामदार इत्यादि सहु, तिनपैं भेजे दूत ।।३६।।

पठई वस्तु अनेक विधि, लिखे पत्र सुभ रूप।
समाचार तिनमैं इहै, सत्यंधर वड भूप ।।३७।।

तिनकौं सुत मैं हौं सही, विजया उदर मझार।
उपज्यो इह निश्चै करौ, यामैं सक न लगार ॥३८॥

को इक कर्म प्रबंध तैं, मोकौं भयो वियोग।
लही वृद्धि मैं सेठ घरि, आय मिल्यो अब जोग ॥३९॥

काष्ठांगारिक पाप धी, तिण लकरी अर कांस।
वहुरि कोइला वेचतौ, सिर परि ल्यातौ वांस ॥४०॥

काल षेप करतौ कुधी, था विधि पुरकै मांहि।
तासौं तुम्हरे भूप नैं, कमी जु राखी नांहि ॥४१॥

कियो वरावरि आपनीं, दियो मंत्रि पद याहि।
यानैं अवसर पायकैं, रण मैं मारयो ताहि ॥४२॥

पै पावै जौ सांप कौं, तऊ प्राण ही लेय।
सो कहवति सांची करी, नरभव कौं जलदेय ॥४३॥

लियो धनी कौ राज इंह, अब मैं मारौं याहि।
जाय रसातल मैं घुसैं, तौव न छोडौं ताहि ॥४४॥

मेरौ ई अरि नांहि इह, तुम सवकौ अरि एह।
सेवक मेरे तात के, मोसौं करौ सनेह ॥४५॥

स्वामि धर्मधर सेवका, तिनकौ मारग एह।
हनै स्वामि के शत्रु कौं, त्यागै अपनी देह ॥४६॥

या विधि पत्री वांचिकैं, सवनि लखी मन मांहि।
सत्यंधर की पूत इह, यामैं संसै नांहि ॥४७॥

युद्ध वर्णन—

आय मिले तव वहु सुभट, निज निज सेना लेय।
चढ्यो राव सुत अरि परैं, सहीं नगारा देय ॥४८॥

भयो जुद्ध नाना विधो, मुची सत्रु की सेन।
तव वैरी आयो प्रवल, तऊ आप सकुचेन ॥४९॥

नाम बिजै-गिर गंध गज, ता परि चढ़िया आप।
शत्रु मान मोडन सदा, धारचां अतुल प्रताप ॥५०॥

असनिवेग इक नाम गज, ता सिरि चढ्यो अयांन।
काष्टांगारिक नीच नर, उद्धत अपजस वांन ॥५१॥

भयो परसपर जुद्ध अति, हत्यो चक्र करि सोय।
इहै चक्र सामानि है, नही सुदरसन होय ॥५२॥

मूवो लखि अघरूप कौं, भागे ताके लोक।
तव स्वांमी अति शांत ह्वै, मेट्यो सवकौ सोक ॥५३॥

करी दिलासा सवनिकी, अभै घोषणा देय।
भाइनि सौं अति नेह करि, मिले वगल मैं लेय ॥५४॥

कियो विनै विरधांनि कौ, उपजायो संतोष।
आये जिन मंदिर जवै, जीवंधर गुण कोष ॥५५॥

करी महा पूजा तवै, प्रभु की मंगल रूप।
दिये दांन दीनांनिकौं, कीरति भई अनूप ॥५६॥

राज्याभिषेक--

नर नायक आये वहुत, अर आयो जषिराय।
कियो राज अभिषेक तिन, दियो तिलक लगि पाय ॥५७॥

परनी रतनवती महां, उछव सौं भूपाल।
अर गंधर्वदत्ता करी, पटरानी सुभ चाल ॥५८॥

नंदाढ्यादिक भेजिकैं, लई वुलाय सुमात।
अर रानी परनी हुती, ते आंनी सुखदात ॥५९॥

सव कटुंव भेला प्रभू, अति ऐश्वर्य सुरूप।
अंतर वाहिज सत्रु के, जेता अधिक अनूप ॥६०॥

न्याय थकी परजा सकल, पाली परम दयाल।
भोग भोगये इद्र से, लीला करी रसाल ॥६१॥

एक दिवस सुर मलय पवन, क्रीडा हेत क्रिपाल ।
गये हुते वरधर्म मुनि, देखे तहां विसाल ।।६२।।

नमसकार करि साध कौं, सुन्यों तत्व विज्ञान ।
अणुव्रत ले सम्यक सहित, धारचो धर्म,सु ध्यांन ।।६३।।

नंदाढ्यादिक भ्रात सव, भये अणुव्रत धार ।
सम्यक जुत धरमातमा, असुभ रहित अविकार ।।६४।।

श्रावक धर्म वर्णन—

सम्यक अर अणुव्रतकौं, सुनौं सुरूप सुजांन ।
धरौ आपने चित्त मैं, लहो सुगति मतिवांन ।।६५।।

देव जिनेसुर जगत वर, गुर मुनिवर व्रतधार ।
धर्म दयामय जांनिये, सौ सम्यक व्यवहार ।।६६।।

अपनौं आतम देव हैं, गुर आतम ही होय ।
वस्तु सुभाव हि धर्म है, इह निश्चै अव जोय ।।६७।।

अनंतानुवंधी महा, क्रोध मान छल लोभ ।
वहुरि तीन मिथ्यात ए, सात प्रकति अति श्रोभ ।।६८।।

इनकौ उपसम क्षय वहुरि, अर षय उपसम होइ ।
तव प्रगटै सम्तक त्रिविधि, मूल व्रत कौ सोय ।।६९।।

सात उपसम्यां उपसमी, क्षयतै क्षायक जांनि ।
एक उदै व्है सातमी, सो वेदक परवांनि ।।७०।।

भेदक हे सम्यक्त के, अव सुनि व्रत के भेद ।
महाव्रत अर अणुव्रता, व्रणाता द्वै विधि अथ छेद ।।७१।।

हिंसा मिथ्या वचन अर, चोरी नारी संग ।
परिग्रह त्रिश्ना पंच ए, पाप कुमति के अंग ।।७२।।

सकल पाप कौ सर वृथा, त्याग महाव्रत जांनि ।
किंचित त्याग अणुव्रता, इह निश्चै परवांनि ।।७३।।

महाव्रत मुनि धर्म है, अणुव्रत श्रावक धर्म ।
श्रावक धर्म ग्यारह विधि, ताकौ सुनि अव मर्म ।।७४।।

त्यागै कुविसन सर्वही, तजे अभक्ष अहार ।
सम्यक द्रिग निरमल धरै, पहली पडिमा धार ।।७५।।

वसुमद वसुमल आयतन, षट अर मूढ़त तीन ।
ए पचीस सम्यक मला, तजे प्रथम परवीन ।।७६।।

दूजी पडिमा धार फुनि, धरै अणुव्रत पंच ।
तीन गुण व्रत च्यारि फुनि, सिक्षा व्रत सुभ संच ।।७७।।

त्रस हिंसा परघात वच, परधन अर परनारि ।
अप्रमांण परिगह तज्यां, ह्वै अणुव्रत सुखकारि ।।७८।।

दसौं दिसा परमांण जो, भोगुपभोग प्रमांण ।
अनरथ सवही त्यागिवौ, तीन गुण व्रत जांण ।।७९।।

तीनों संध्या जिन भजन, पोसह च्यारि प्रमांनि ।
अतिथि विभागर नेम निति, चउ सिक्षा व्रत जांनि ।।८०।।

अंतकाल सल्लेखणा, इह व्रत प्रतिमा रीति ।
सुनि तीजी सामायका, धरि करि उर मैं प्रीति ।।८१।।

सामायक समये महा, मुनि सम थिरता होय ।
सो तीजौ श्रावक कह्यो, लहै सुगति सुख सोय ।।८२।।

षट चउ द्वै घटिका प्रमा, व्है सामायक काल ।
सोलह वारह वसु पहर, इह पोसह की चाल ।।८३।।

सामायक की सी दसा, पोसह समये होय ।
चौथी पडिमा धार सो, श्रावक सुभमति सोय ।।८४।।

सचित त्याग है पंचमी, छट्ठी दिन तिय त्याग ।
अर निसि कौं भोजन तजन, धारैं ते वड भाग ।।८५।।

सदा सर्वथा नारिकौ, त्याग सप्तमी जांनि ।
तजन सकल आरंभ कौ, ताहि अष्टमी मांनि ।।८६।।

नवमी परिगह त्याग है, सुनि दसमी की चाल।
लौकिक वचन न भासई, जीवदया प्रतिपाल ॥८७॥

एकादसमी द्वै विधि, क्षुल्लक ग्रैलि वखांनि।
वनवासी दोऊ सुधी, मुनिवत भोजन मांनि ॥८८॥

क्षुल्लक खंडित वस्त्र इक, अर कोपीन प्रवांनि।
केस मुडावै अरवहै, नहि करपात्र वखांनि ॥८९॥

करपात्री है ग्रैलि सुभ, वस्त्र एक कोपीन।
लोच करै केसांनि कौ, रहै धर्म लवलीन ॥८०॥

क्षुल्लक लौं च्यारचौं वरण, धरै व्रत्त सुभ रूप।
ग्रैलि अर्यका मुनिवरा, तीनहि वर्ण अनूप ॥८१॥

ए एकादस विधि कही, श्रावक की भगवांन।
तिनमैं दूजी आदरी, जीवंधर गुणवांन ॥९२॥

भाइनि जुत वारह वरत, सम्यक सहित धरेय।
गये आपनैं घरि नृपति, नर भव सफल करेय ॥९३॥

सुखसौं वीतै काल अति, नृप सबके सुखदाय।
एक दिवस वन देखिवा, गये गुणनि के राय ॥९४॥

वनविहार—

वन असोक रमणीक अति, तहां परसपर जुद्ध।
देख्यो वांदर वर्ग मैं, तबै भये प्रतिवुद्ध ॥९५॥

देखौ देखौ जीव जग, करि करि तीव्र कषाय।
भमैं सदा ‥व वन विषैं, धरि धरि नौतन काय ॥९६॥

कोइक वड़ भागी पुरिष, लहि जिन मारग सार।
लिखकैं आतम तत्व कौं, उतरै भवजल पार ॥९७॥

जग विरकत मत जैन कौ, सधै न घरकैं मांहि।
मोह जाल है घर विषै, या मैं संसै नांहि ॥९८॥

धंधा विनु नहि होय घर, सो हिंसा कौ मूल।
हिंसा श्री जिनधर्म तैं, है अति ही प्रतिकूल ॥९९॥
इह विचार नृप कै भयो, तव ही ता वन मांहि।
एक ठौर देखे मुनी, चारण ऋद्धि धरांहि ॥१००॥

संसार से विरक्ति—

है प्रशस्त वंकजु महा, मुनि कौ नाम रसाल।
अवधिज्ञान धारक गुरु, जीवदया प्रतिपाल ॥१०१॥
तीन प्रदक्षरण देय नृप, करि वंदन कर जोरि।
सुनें हुते खग मुख भवा, मुनि मुख सुनें वहोरि ॥१०२॥
जाय धरैं जिन पूजि करि, वढ़ी सुद्धता जोर।
सुन्यों राव सुभ भावनैं, वीर मोह मद मोर ॥१०३॥
वरधमान सनमति प्रभू, महावीर अतिवीर।
अंतिम तीरथ नाथ जो, तिष्ठै गुण गम्भीर ॥१०४॥
वन सुर मलय विषै विभू, तव आयो तिह ठौर।
जीवंधर धरणीवती, वदे त्रिभुवन मौर ॥१०५॥
सुनि वांनी जगदीस की, उपज्यो अति वैराग।
जगत भोग अर देह तैं, तूटौ मन कौ राग ॥१०६॥
पटरांनी कौ पुत्र जो, नाम वसुंधर ताहि।
सौंपी आप वसुंधरा, लख्यो नीति घर जाहि ॥१०७॥
व्है निरमोही सवनितैं, करि सव परिगह त्याग।
आठौं ससुरा आदि वहु, राजनि जुत वड़ भाग ॥१०८॥
मधुरादिक नंदाढ्य जुत, लीयो चारित भार।
भये महाव्रत धारमुनि, जीवंधर जगतार ॥१०९॥
वड पुरषनिकी रीति इह, तजि करि जग के भोग।
करि निरवांछक भाव अति, धारैं उत्तम जोग ॥११०॥

विजया माता अर सवैं, सासू आठौं जांनि ।
अर रांनी आठौं महा, सब ए गुण की खांनि ।।१११।।

भई अर्यका त्यागि घर, चंदनवाला पासि ।
तारै जीव अनेक कौं, एक जीवगुण रासि ।।११२।।

इह जीवंधर मुनि कथा, कहि बोले गणधार ।
श्री सुधर्म स्वामी तवै, श्रेणिक सौं निरधार ।।११३।।

तुम पूछ्यो सो मुनि इहै, महा तपोनिधि वीर ।
सांप्रत है श्रुतकेवली, द्वादसांग धरधीर ।।११४।।

च्यारि घातिया घात करि, लहसी केवलज्ञान ।
होसी अग्रह केवली, जगदीसुर जग जांन ।।११५।।

वरधमांन भगवांन कै, साथहि करिजु विहार ।
च्यारि अघाति यहू हते, पासी भवजल पार ।।११६।।

विपुलाचल परवत थकी, जासी जग कै सीस ।
अष्टगुणादि अनंतगुण, धारी अविचल ईस ।।११७।।

ए सुधर्म गणधर तनें, वचनामृत नृप पीय ।
श्रेणिक त्रिप्त भयो महा, जनम सुकारथ कीय ।।११८।।

छप्पै छन्द

जे गंधर्वदत्तादि, अष्टरानी गुन वांनी ।
दुल्लभ और निकौंजु, तेहि परनी सुखदांनी ।।
तात घात को शत्रु, दुष्ट अति काष्टांगारी ।
सो जानें रण मांहि, मारि डारचो दुखकारी ।।
राज कियो जु कितेक दिवसां, फुनि परिगह तजिया सवैं ।
अष्ट कर्म से दुष्ट काटे, सकल विरद जिनकौं फवै ।।११९।।

भेदि तिमिर अज्ञान, छेदि करि सर्व विभावा ।
लहि मुकति श्री संग, सोहई सुद्ध सुभावा ।।

जो जीवंधर राय, पंचकायनि तैं न्यारौ।
जगत सिरोमणि देव, जगतजित जग कौ प्यारौं।।
नमौं ताहि कर जोरि सिरनमि, भकति भाव उरलाय कैं।
सत्यंधर विजया सुनंदन, सीझ्यो सनमति पाय कै।।१२०।।

कथा का सार—

षोडस दिन परमांन, हंस कौ बालक जानैं।
निज माता तैं भिन्न, राखियो कुमति प्रवानैं।।
पूरव भव कै मांहि, ताहि तैं षोडस वर्षा।
मा सौं भयो वियोग, मात नहि पायो हर्षा।।
इह उर मैं धरि भव्य जीवा, सुजन विछोहा जिन करौ।
सकल जीव हैं आप सरिखा, इह जिन आग्या उर धरौ।।१२१।।
भई तात की मृत्यु, जनम जिन लह्यो मसांना।
भयो सेठ आगमन, सेठ घरि पल्यो सुजानां।।
जषणी कौ उपगार, जक्ष से मित्र विवेकी।
चढ्यो अधिक परताप, शत्रु मारचौ अविवेकी।।
दैव गती है प्रवल अतिही, लखौ बात परतक्ष ए।
जीवंधर कौ सुनि चरित्ता, धरौ जैन मत पक्ष ए।।१२२।।
साध हुवां विन सिद्ध, हुवो नहि जग मैं कोई।
तातैं साध समांन, आंन उत्तम नहि होई।।
गहौ साध कौ पंथ, जोहि सिवपुर सुखदाई।
पंच प्रकार आचार, धर्म दस लक्षण भाई।।
संजम वारह भेद धारौं, तप द्वादश विधि आचारौ।
अट्ठावीस जु मूलगुण हैं, ते नीकी विधि आदरौ।।१२३।।
उत्तर गुण चौरासि, लाख हैं आनंदकारी।
सहन परीसह वीस, दोय अधिका अघहारी।।

मिथ्या मोह मदादि, तिन महँ एक न राखौ ।
सम दम यम अर नेम, ध्यान अमृत रस चाख्यौ ।।
तजौ प्रमाद विषाद सारा, नांहि विवाद जु उरधरौं ।
भवतन भोग विरत्त चित्ता, दिढ़ वैराग जु अनुसरै ।।१२४।।

जिन आज्ञा उर धारि, धरौं रतनत्रय विमला ।
लखौ आपनौं रूप, शुद्ध बुद्ध जु अति अमला ।।
किये कुमरण अनंत, अब धरौ परम समाधी ।
अक्षय पद आनंद लहौ, तजि जगत उपाधी ।।
इह जीवंधर चरित पूरन, भास्यों महापुरान मैं ।
श्री सुधर्म गणधर महंता, ल्याये याहि वषांन मैं ।।१२५

इति श्री जीवंधर स्वामि चरित्रे ससुरगृहात् निजगृहे गमन परमोत्साह, काष्टांगारिक प्रछन्न कोप, मंत्रिवचनादुपशांति, रत्नवती स्वयंवर, चंद्रक वेध वेधन, वरमाला गृहण, काष्टांगारिक रणोद्यम तात मृत्यान्प्रति पत्रिका प्रेषण, सुभटागम, रणे काष्टांगारिक हनन, राज्य लाभ, विजया माता आगमन, सर्व कुटुंव मिलन, प्रजापालन सुखानुभवन, सुरमलयोद्याने क्रीडा हेतु गमन, वरधर्म मुनि दर्शन, भ्रातृ सहित अणुव्रत गृहण, अशोक वने कपि युद्धावलोकन, संसार देह भोग निर्वेगता तत्रैव वने एकान्त स्थाने प्रशस्त वंक नामा चारण मुनि दर्शन, पुनर्भव श्रवण. गृहे गमन, जिन पूजारचन, सुरमलयोद्याने श्री वर्द्धमान स्वामि समवसरणाभिमन श्रवण तत्रागमन, ससुर भ्रातृ मातृ भार्यादि सहित दीक्षा गृहण, केवलोत्पत्तिमोक्ष गमन वर्णनो नाम पंचमोध्यायः ।।५।।

कवि परिचय—

कौंन भांति इह ग्रंथ, देव भाषातैं भाषा ।
भयो सु सुनौं धरि चित्त, इक ठौहर राखा ।।
मध्य लोक कै मांहि, सोहए जंवूदीपा ।
सकल दीपकौ एह, दीप मानौं अवनीपा ।।

जामैं क्षेत्र जु भरथ है इह, ता मांही षट खंड है।
पांच मलेछ जु खंड कहिया, इक आरिज परचंड है ।।१।।

आरिज खंड मझार, देस कहिये जु अनेका।
तिन देसनि कै मांहि, देस मेवाड़ जु एका ।।

उदियापुर ता मांहि, राजधानी अति सोहै।
जगतसिंह महरांण, पाट सीसोदिन को है ।।

मडी धांन की नगर मांही, जहां जैन मंदिर महा।
तहां टहलवा पंडितो इक, खेतसीह नामा कहा ।।२।।

दौलतरांम उकील, पुत्र आंनद कौ होई।
ढुंढ़ाहड़ पतिराज, तिनौं कौ सेवक सोई ।।

वासी वसवा कौ जु, जाति कहिये जु महाजन।
गोत कसिलीवाल, मांहि खंडेल जु वालन ।।

कुल श्रावक कै जनम पायो, कछुयक श्रुत परचै जिसै।
महारांण कै निकट कूरम, महाराज भेज्यौ तिसै ।।३।।

रहै रांण कै पास, रांण अति किरपा करई।
जानैं नीकौ जाहि, भेदभाव जु नहि धरई ।।
सो जिन मंदिर आय, वांचई जिन मत ग्रंथा।
सुनैं विवेकी जीव, सरदहै जिनवर पथा ।।
कैयक कै रुचि वहुत नीकी, आगम अध्यातम तनी।
वांचे ग्रंथ कितेक तानैं, सैली अति सोभित वनी ।।४।।

वांच्यो महां पुराण, वीस हज्जार सिलोका।
जाकै अति अनूप, वीर चरित जु गुण थोका ।।
जामैं कथा रसाल, स्वामि जीवंधर केरी।
सुनि करि हरषे भव्य, स्तुति कीनी जु घणेरी ।।
तवै वोलियो अग्रवाला, वासी कालाडहर कौ।
चतुर चतुर भुज नांम चरची, ग्रंथ पंथ सिव सहरकौ ।।५।।

देव भाष गंभीर, संसकृत विरला जांनैं ।
पंडित करैं वषांन, अलप मति नांहि वषांनैं ।।
जौ ह्वै ग्रंथ अनूप, देस भाषा कै मांही ।
वांचै वहुत हि लोक, या महै संसै नांही ।।
सव गिरंथ की वनि न आवै, तौ इह जीवंधर तनी ।
अवसिमेव करनी सुभाषा, प्रथीराज भी इह भनी ।।६।।

सुनी चतुर मुख वात, सोहि दौलति उरधारी ।
सेठ वेलजी सुधर, जाति हूंमड हितकारी ।।
सागवाड है वास, श्रवण की लगनि घणेरी ।
सव साधरमी लोक, धरै श्रद्धा श्रुत केरी ।।
तिननैं आग्रह करि कही फुनि, दौलति कै मन मैं वसी ।
संसकृत तैं भाष कीनी, इहै कथा है नौर सी ।।७।।

संवत ठारहसै जु पंच, आषाढ़ सु मासा ।
तिथि दोईज गुरवार, पक्ष सुकल जु सुभ मासा ।।
तीजै पहर सु एह, ग्रंथ सुभ पूरण हूवो ।
श्री जिनधर्म प्रभाव, सकल भव भ्रमतैं जूवो ।।
नंदौ विरधौ जगत मांही, जौ लग चंद दिवाकरा ।
तिष्टौ भव्यनि के हिये मैं, नवरस वरणन तैं भरा ।।८।।

इति श्री जीवंधरस्वामि चरित्रं सम्पूर्णं सुभं भवतु-कल्याणमस्तु ।।६।।

"भग्न पृष्ठि कटि ग्रीवा वक्रदृष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेम् परिपाल्यताम् ।।"

———

विवेक विलास

रचना काल :—१८वीं शताब्दि

रचना स्थान :—उदयपुर (राजस्थान)

अथ श्री विवेक विलास भाषा

दोहा

निज धाम वर्णन—

प्रणमि परमर्स (ऋषि) शांत कौं, प्रणमि धर्म गुरु देव।
वरणौं सुजस सुसील कौ, करि सारद की सेव ॥१॥

सील व्रत कौ नाम है, व्रह्मचर्य सुख दाय।
जाकरि प्रगटे व्रह्मपद, भव वन भ्रमण नसाय ॥२॥

व्रह्म कहावै जीव सहु, व्रह्म कहावै सिद्ध।
व्रह्म रूप केवल महा, ज्ञान सदा परसिद्ध ॥३॥

व्रह्मचर्य सौ व्रत्तनां, न परम व्रह्म सौ कोय।
व्रतिन व्रह्म लवलीन सौ, तिरै भवोदधि सोय ॥४॥

विद्या व्रह्म विज्ञान सी, नहीं जगत में जांनि।
विज्ञ नहीं व्रह्मज्ञ से, इह निश्चैं परवांनि ॥५॥

व्रह्म वासना सारिखी, और न रस की केलि।
विषै वासना सारिखी, और न विष की वेलि ॥६॥

आतम अनुभव सिद्धसी, और न अमृत वेलि।
नहीं वोध सौ वलवता, देहय मोह कौ ठेलि ॥७॥

अध्यातम चरचा समा, चरचा और न कोय।
अरचा जिन अरचा समा, नहीं जगत में होय ॥८॥

चरचाकारक लोक मैं, नहिं गणधर से धीर।
अरचा कारक इन्द्र से, नांहि दूसरे वीर ॥९॥

लोक न चेतन लोक सौं, विश्वविलोक निरूप।
निज अवलोकनि जा विषै, केवल तत्व स्वरूप ॥१०॥

परकासक दुति धार को, अति दैदप्यि जु मान।
भाव सोइ निज दीप है, भरचो अनन्त निधान ॥११॥

विश्व प्रदीपक भाव सौ, दीप न सुख की खानि।
क्षेत्र न कोई स्वक्षेत्र सौ, अक्षय अभय प्रवांन ।।१२।।

खण्डन भाव अखण्ड सौ, परमानन्द निवास।
स्व प्रदेश सौ देश नहिं, जहां अनन्त विलास ।।१३।।

पुर न अभैपुर सारिखो, जहां काल भै नाहि।
निराकार निज रूप सौ, नृप धर नांहि कहांहि ।।१४।।

पुरपति निज चिद्रूप सौ, और न दूजो भूप।
पुरपति पटरानी महा, सत्तासीन सुरूप ।।१५।।

सत्ति अनतानंत सौ, अन्तहपुर नहि कोइ।
महिमा अतुल अपार सौ, सखी समूह न जोइ ।।१६।।

सखा न समरस भाव सौ, एकीभाव लखांहि।
पासवांन परिणाम से, नांहि जगत कै मांहि ।।१७।।

निज विशेषता शुद्धता, अति अनन्तता कोइ।
वहु विस्तीरणता सदा, ता सम सेनन होइ ।।१८।।

अति प्रतापमय भाव जे, महा प्रभाव स्वरूप।
उमरावन तिन सारिखे, अद्‌भुत अचल अनूप ।।१९।।

नहि प्रधान निज ज्ञान सौ, व्यापक सव में सोइ।
नहिं प्रोहित आनन्द सौ, धर्म मूरती होय ।।२०।।

नहिं अनन्त वीरज जिसौ, सेनापति जयरूप।
अगम अगोचर भाव सौ, और न दुर्ग अनूप ।।२१।।

नहिं गम्भीर स्वभाव सी, खाइ अति गम्भीर।
निश्चल अजित स्वभाव से दुर्गपाल नहिं वीर ।।२२।।

द्वारन आतम ध्यान सौ, अध्यातम कौ सार।
निरव्रति रूप अनूप है जग परव्रति कै पार ।।२३।।

भाव अछेद्य अभेद्य से, और न कोइ कपाट।
दरसन वोध चरित्र सौ, और न दूजो वाट ।।२४।।

भाव अनन्त चतुष्टया, तिसे न चौहट और ।
व्यापारीन सुभाव से, नहि पुर में झकझोर ॥२५॥

सुद्ध परिणमन सारिखो, व्यापारन है वीर ।
अविनश्वरता भाव सौ, धन अटूट नहि धीर ॥२६॥

गुण परणति पर्याय निज, नाना भाव सुभाव ।
पर जातिन सम और नहि, द्वैत न भाव लखाय ॥२७॥

भावनि के हि प्रभाव जे, अति प्रभास मय जेहि ।
तिसे न परजा घर विमल, अति सुख पूरण तेहि ॥२८॥

भरयौ भाव सौ पुर महा, वसैं जगत कै कूट ।
ईति भीति नहीं पुर विषै, नहीं कपट अर कूट ॥२९॥

निज अवकास वरावरी, और न है दौ रास ।
निज उद्यौत विकास सौ राज तेज नहि भास ॥३०॥

सुर नर नारिक पसुनि के, सव ही रूप विरूप ।
विघटि जाहिं क्षण एक में, जामण मरण सरूप ॥३१॥

वस्तु अरूप समान कौ, और न रूप अनूप ।
निजपुर मांहि अरुप सव, जहां न कोइक रूप ॥३२॥

मूरति सूरति याकै नहि, जगत जीवकी कोइ ।
घूरत भाव धरै महा, रागादिक वसि होय ॥३३॥

आतम भाव अमूरता, अदभुत सूरतिवंत ।
राजा परजा एक से, जहां न भेद कहंत ॥३४॥

आतम राजा गुण प्रजा, और न राजा रैति ।
सस्त्र न भावै प्रचंड सौ, जाकरि नृप की जैति ॥३५॥

प्रवल स्वभाव वरावरी, कोटवाल नहि कोय ।
चोर न मन इन्द्रीन से, तिन को नाम न होय ॥३६॥

चोरी होय न पुर विषै, जहां न कोई चोर ।
जोरी जारी नांहि कछु, होय न कवहू सोर ॥३७॥

सार भूत निज वस्तु सौ, और न नृप भंडार।
भंडारी अस्तित्व सौ, और न सरवसु धार ॥३८॥

नहीं धनी सौं दूसरौ, सदा धनी कै पासि।
सब सामग्री जा कनैं, महा सुखन की रासि ॥३९॥

शुध पारणामीक सा, नहीं पारषद कोय।
कदे न छांडै नृप सभा, सदा हजूरी सोय ॥४०॥

क्षायक सम्यक सारिखा, नहीं महाभड भाव।
राज शुद्ध भावानि को करै निकंटिक राव ॥४१॥

वाधा रहित स्वभाव सौं अंग रक्ष नहिं वीर।
नित्य निरंतर भाव से, मित्र न कोई धीर ॥४२॥

श्रेष्ठी श्रेष्ठ सुभाव सौ, नहीं दूसरौ और।
सोभा पुर की जा थकी, चौहट को सिर मौर ॥४३॥

सर्वोत्तम निज भाव सौ, नहिं सिंहासन कोइ।
तापरि राजै राजई, सव को नायक सोइ ॥४४॥

आतप हरण स्वभाव से, छत्र न कोई जानि।
निर्मल भाव तरंग से चमरन दूजे मानि ॥४५॥

चेतनता निज चिह्न से, नहि निसांन परवांनि।
विस्व विहारी भाव से, अस्व न और बखांनि ॥४६॥

मगन महा गलतान से अति उतकिष्ट स्वभाव।
तिसे न मत्त मतंगजा, धरै अतुल प्रभाव ॥४७॥

रथ नहिं तत्वारथ जिसे, पुरुषारथ तिन मांहि।
परमारथ परिपूरणां, यामें संसै नांहि ॥४८॥

अनुचर अतिसय से नही, विचरैं विश्व मझारि।
नहि शिवका शिव भाव सी, थिर अर सकल विहार ॥४९॥

सुख न अतिन्द्रिय सारिखौ, सो सुख जहां अनन्त।
दुख को नाम न दीसई, जहां देव भगवंत ॥५०॥

दुख नहिं इन्द्री भोग सौ, ताको तहां न लेस ।
केवल परमानंदमय, वरतै देस असेस ।।५१।।

आतम अनुभव अम्रता, तिसौ न अम्रत आन ।
खान पान नहिं ता समां, इह निश्चै परवांन ।।५२।।

भोजन तृप्ति समांन नहि, सदा तृप्ति वह देस ।
स्वरस सुधारस पीयवौ, नहि त्रसना कौ लेस ।।५३।।

क्षुधा तृषा वाधा नहीं, नहीं काल को जोर ।
जन्म जरा मरणादि नहि, नहीं रैनि नहि भोर ।।५४।।

रागादिक रजनीचरा, तिनकौ नहिं संचार ।
मोह पिशाचान पुर विषै, रोग न सोग लगार ।।५५।।

काम लोभ परपंच ठग, तिन कौ तहां न नाम ।
वसै महा सुख सों सवै, आनंदी अभिराम ।।५६।।

धर्म न वसतु स्वभाव सौं, धर्म रूप पुर सोय ।
राजा परजा धर्म मय, नांहि अधर्मी कोय ।।५७।।

दान न सकल प्रत्याग सौ, त्यागी सव ही भाव ।
रागी कोइ न दीसइ, वीतराग है राव ।।५८।।

सील न विमल स्वभाव सौ, जो अति उजल रूप।
सील रूप राजा प्रजा, नहिं विकार स्वरूप ।।५९।।

तप नहिं वांछा रहित सौ, तहां न वांछया होय ।
भाव अनन्त अपार है, जहां कुभाव न कोय ।।६०।।

निज भावन की रम्यता, वहु मनोज्ञता जोय ।
ता सम नन्दन वन नहीं, निज उपवन है सोय ।।६१।।

कहै अमर वन सूत्र में, ताकौ नाम मुनीस ।
रमै अमर वन मैं सदा, चिदानन्द जगदीस ।।६२।।

सघन स्वभावनि सारिखों, अम्रत व्रक्ष न और ।
ता वन में ते लहलहैं, रमै राव सिरमौर ।।६३।।

रही वेलि विस्तरि जहां, शुद्धातम अनुभूति ।
ता समान नहि सुध लता, केवल भाव विभूति ।।६४।।

परम सुभाव पियूष फल, निज रस पूरण जेहि ।
तिन से नांहि सुधा फला, फलि नु रहे अति तेहि ।।६५।।

सदा प्रफूलित भाव से, फूलन और सुगन्ध ।
फूलि रहे महकै महा, राजै राव अवन्ध ।।६६।।

व्रछ वेलि फल फूल ए, तिन करि वन अति रम्य ।
जहां न गम्य विभाव की, वस्तु न एक अरम्य ।।६७।।

माया वेलि न है तहां, जहां न विकलप जाल ।
क्रोधादिक कंटिक नहीं, निज वन महा रसाल ।।६८।।

नाहि शुभाशुभ कर्म से, विष तरु विश्व मभारि ।
तिन को लेस न है जहां, दुख फल नांहि लगार ।।६९।।

दुख फल से नहिं विष फला, देहि जगत कौ पीर ।
मानफूलि से फूल विष, तहां न जानौं वीर ।।७०।।

सुख सरवर सौ सर जहां, भरचौ सहज रस नीर ।
तरवर सघन स्वभाव से, तहां विराजै धीर ।।७१।।

केवल कला कलोलनी, वहै निरन्तर शुद्ध ।
क्रीडा करै महा सुखी, राजै राजा बुध ।।७२।।
अथग स्वभाव पयोनिधी, स्वच्छ महा गम्भीर ।
तिसौ न सागर खीर है, रमै गुणांबुधि वीर ।।७३।।
अति उल्हास विलास मय, आतम सक्ति प्रकास ।
ता सम लीला और नहिं, यह भासै जिनदास ।।७४।।
अचल उच्च थिर भाव सौं, क्रीड़ा गिर नहिं कोइ ।
क्रीड़ा करै कला निधी, जगत सिरोमणि सोइ ।।७६।।
ज्ञान चेतना परणती, निज सक्ती वहुनाम ।
तासौं कमला वुध कहै और न कमला नाम ।।७७।।

सिद्ध अनन्ता सर्व ही, राज करै या रीति ।
निज निज भाव प्रजा सहित, विलसैं सुख जगजीत ।।७८।।

जहां न जन्म जरा मरण, जहां न इष्ट वियोग ।
रोग न सोग न भोग तन, नहिं अनिष्ट संयोग ।।७९।।

भूख न प्यास न पाप पुनि, त्रिविध ताप नहिं कोइ ।
सद्रूपा आनन्दघन, वस्तु अमूरत होइ ।।८०।।

नारि न पुरषन संढ को, नांहि तृषातुर कोय ।
लोक शिखर निज क्षेत्र में, शुद्ध सिद्ध अवलोय ।।८१।।

रहित नाम वहु नाम जे, रहित रूप अति रूप ।
ते हमकौं निज बोध द्यौ, चिदानन्द चिद्रूप ।।८२।।

लघुता गुरता रहित जे, सदा अगुर लघु जांनि ।
सिद्ध अनन्ता सर्व सम, तिन से और न मांनि ।।८३।।

ते भगवन्त जिनेश्वरा, तेहि महेश्वर देव ।
शुद्ध वुद्ध योगीश्वरा, करै सुरासुर सेव ।।८४।।

सर्व व्यापका विष्णु ते, भजै तिनै सुर राय ।
लखै ज्ञेय कौ ज्ञान में, तातें कृष्ण कहाय ।।८५।।

सकल वस्तु अवलोकिवौ, रहिवो सब तें भिन्न ।
वसिवो आतम भाव में, कवहूं खेद न खिन्न ।।८६।।

सिव कल्याण स्वरूप ते, परम ब्रम्भ परतक्ष ।
सदा परोखि अज्ञान कौं, तातै कहै अलक्ष ।।८७।।

ईश्वर समरथ सार जे, परमातम परवीन ।
मुक्त सर्व गत विमल ते घट घट अन्तरलीन ।।८८।।

परम पुरुष परवान ते, परम जान भगवांन ।
महादेव महिपाल ते, महाराज गुणवांन ।।८९।।

रहित रजोगुण राव जे, रहित तमोगुण भाव।
रहत सुभासुभ संत ते, निर्गुण है निरदाव ॥९०॥

महा महंत अनंत ते, सर्व गुणनि के नाथ।
गुण पर्याय स्वभाव गण, सदा धरचा निज साथ ॥९१॥

रमि जु रहे निज भाव में, तातैं तिनकौ राम।
कहिये सूत्र सिधंत में, रहित क्रोध अर काम ॥९२॥

तीन भुवन के चंद ते, तीन भुवन के सूर।
तीन भुवन के नाथ ते, गुण अनंत भरपूर ॥९३॥

जैसें चिंतामणि वहुत, सब कौं एक स्वभाव।
तैसे सिद्ध अनंत ही, समभाव दरसाव ॥९४॥

भये अनंता सिद्ध प्रभु, होसी सिद्ध अनंत।
सब कौ मेरी वंदना, सेवैं साहु महंत ॥९५॥

करै आप सम दास कौं, वड़े गरीव नवाज।
रहित कामना कलपनां, भजै जिनैं मुनिराज ॥९६॥

निज दौलति विलसैं सदा, महाप्रभू निजरूप।
वसै भावपुर मैं प्रगट, परमानंद स्वरूप ॥९७॥

नाम भावपुर कौ भया, कहै अभैपुर साध।
वसै सासतौ सुख मइ, जहां न कोइ वाध ॥९८॥

निश्चै वास स्वभाव मैं, व्यवहारैं जगसीस।
उपचारै घट घट विषै, व्यापक सदा अधीस ॥९९॥

सब कौ सादि सभाव है, तातैं एकहि ईस।
कहिए ग्रंथनि कै विषै, चिदानंद जगदीस ॥१००॥

है अनन्त सब एकसे, तातैं एकहि ध्यान।
करै महामुनि भाव सौं, ते पावै निज ज्ञान ॥१०१॥

सिद्ध भक्ति इह भाव धरि, पढै सुनै नर नारि।
ते निरवेद दसा लहैं, जिन आज्ञा उर धारि ॥१०२॥

निश्चै देव निजातमा, व्यवहारै गुरदेव ।
तिरैं भवोदधि ते नरा, करै निजातम सेव ॥१०३॥

जैसे चेतनराव सौं, और न दूजो राव ।
तैसे व्रत में सील सौ, और न कोइ कहाव ॥१०४॥

॥ इति निजधाम निरूपणं ॥

आगै ठग ग्राम का वर्णन करै है ।

दोहा

ठग ग्राम वर्णन—

ग्राम ठगनि केतैं प्रभू, काढै त्रिभुवन राय ।
पहुँचावै निजपुर विषै, ताहि नमूं सिर नाय ॥१०५॥

रे जन तू निज नगर में, यह ठगनि को गांम ।
ठग मोहादि अनन्त है, कौ लग कहिए नाम ॥१०६॥

मोह महा वंचक कुधी, सकल ठगनि कौ राव ।
ठगै कर्म ठग सवनि कौं, मोह राव परभाव ॥१०७॥

मोह पासि सी है नहीं, फांसी जग मैं आन ।
दे फांसी जग जीव कै, हरै मोह गुण प्रान ॥१०८॥

नहीं मोह निद्रा जिसी, दीरघ निद्रा कोइ ।
सोवै सब जग मोह वसि, ज्ञान चेतना खोइ ॥१०९॥

मोह प्रिया ममता महा, तिसी न ठगनी जोइ ।
ठगै सुरिन्द्र नरिन्द्र कौं, महा मोहनी सोइ ॥११०॥

मायाचारी मोह ठग, इसौ न जगत मझार ।
मोहै महा मुनीनि कौं, सुर नर कपा विचार ॥१११॥

वडे ठगनि मैं दोय ठग, राग दोष विड़ रूप।
तिनके भुज परताप तैं, मोह जगत को भूप ॥११२॥

राग समांन न राग कर, और सिकारी कोइ।
वस करि सुर नर पसुनि कौ, मारै पापी सोइ ॥११३॥

हरै ज्ञांन से प्राण जो, हरै ध्यांन सौ माल।
लीयां कपट अर कालिमां, करै बहुत वेहाल ॥११४॥

राग प्रीया जु सरागता, जाहि कहै जग प्रीति।
जासौं करि अप्रीति मुनि, हौंहि मुक्ति जग जीति ॥११५॥

विषै प्रीति अनुरागता, अदभुत ठगनी सोइ।
ठग चक्र वर त्यान कौं, वचै कहां तक कोइ ॥११६॥

दोष समान न दुष्टधी, जगत विरोधी जानि।
करै दौर त्रय लोक में, दौरौ खरौ प्रवानि ॥११७॥

हरै शुद्धता भाव जौ, हरै दया सौ दर्व।
महा निरदयी दुरमती, धारै अतुलित गर्व ॥११८॥

दोष प्रीया दुर्जन्यता, महा दुष्टता होय।
ठगै जु असुरिन्द्रादि कौ, हरि प्रति हरि कौं सोय ११९॥

काम नाम ठग अति प्रवल, तासम नांहि कुचील।
करै फैल वद फैल वहु, हरै जगत कौं सील ॥१२०॥

कंवर समान जु मोह कै, महा पाप कौ धाम
ठगै देव दैत्यानि कौं, नर पसु सव कौं काम ॥१२१॥

काम प्रीया रति अति वुरी, भव भरमावै सोय।
अनुपम ठगनी है भया, व्रत तप हरणी जोय ॥१२२॥

कंटिक कोइ न क्रोध सौं, हरै प्राण तहकीक।
हरै वुद्धि सौ धन महा, वोलै वचन अलीक ॥१२३॥

उघडौ हथ मारो इहै, महा मोह उमराव।
करता हरता मोह कै, धारै कुवुधि कुभाव ॥१२४॥

ठगै वास देवादि कौं, रुद्रादिक कौं सोय।
ठगै सुरासुर वर्ग कौं, वचै कहां तै कोय ॥१२५॥

क्रोध प्रिया हिंसा महा, काल रूपणी जोय।
ठगै सर्वनि कौं सर्वदा, उवरै मुनिवर सोय ॥१२६॥

नांहि कठोर गुमान सौ, चढि जु रह्यो गिरमान।
गनै तुछ सवकौ सदा, खोसै गुन से प्रान ॥१२७॥

हरै विनै धन सर्वथा, करै वहुत विपरीत।
ताकै वलि नृप मोह खल, होय रह्यो जु अजीत ॥१२८॥

अति सम्मान गुमान कौ, मोह राज दरवार।
ठगै फनिन्द्र महिन्द्र कौं, यह ठग असि वलधार ॥१२९॥

मान प्रीया ठगनी वुरी, नाम अहंता होय।
अहंकार लीयां सदा, भयंकार अति सोय ॥१३०॥

ठगै जु अहमिंद्रादि कौं, ठगै मुनिनि कौ एह।
काइक उवरै सांत धी, धारै दसा विदेह ॥१३१॥

कपट समान न कुटिल कौ, सो नृप को परधांन।
अति छल वल परपंचमय, पाखंडी परवांन ॥१३२॥

ठगै सदा सव कौ सही, करै जगत कौं वाध।
कोइ उवरै साधवा, करै जु निज आराध ॥१३३॥

कपट प्रिया है कालिमा, कुटिलाई कौ धाम।
ठगैं नारदा दानि कौ, वचैं मुनी तिह कांम ॥१३४॥

नहीं लुटेरा लोभ सौ, लूटै त्रिभुवन जोहि।
सो सेनापति मोह कै, अति कोड़ीभड़ होहि ॥१३५॥

सुरपति नरपति नागपति, खगपति दलपति जेहि।
सर्व लुटावैं लोभ पैं, डंड़ लोभ कौं देहि ॥१३६॥

लूटै सवकौं सर्वथा, लोभ सर्वदा वीर।
कोइक लूटे जांहि नहिं, संतोषी मुनिधीर ॥१३७॥

लोभ प्रीया तृष्णा महा, जगत द्रोहणी सोइ ।
सर्व भक्षणी पापणी, मुनि ठगनी है सोइ ॥१३८॥

काइक मुनिवर उवरै, श्री जिनवर परताप ।
तजै भोग त्रिश्ना सवै, सेवै धर्म निपाप ॥१३९॥

निज प्रतीति हर भरम कर, ठग न मिथ्यात समान ।
सो स्वरूप है मोह कौ, कुवुधी पाप निधान ॥१४०॥

प्रीया मिथ्यात मलीन की, महा अविद्या जानि ।
ठगै थावरा जंगमा, जग ठगनी परवानि ॥१४१॥

नहीं सोच सौ कष्ट कर, सुख हिरदै संताप ।
सोच प्रीया चिंता अरति, उर जावै वहुताप ॥१४२॥

भैकारी है भय महा, मारै चहुँगति मांहि ।
व्याकुलता है भय प्रीया, जामैं आनंद नांहि ॥१४३॥

रोग महाबल तन हरण, मरण करण दुखदाय ।
आधि व्याधि रोग प्रीया, कवहु नहीं सुखदाय ॥१४४॥

सोक हरै आनंद कौं, करैं सबनि को दीन ।
सो प्रीया संतप्तता, करै जगत को छीन ॥१४५॥

अव्रत और असंजमा, विकथावाद विवाद ।
मोह राव के रावता, हर्ष विषाद प्रमाद ॥१४६॥

सव ठग सव पासीगरा, सर्व लुटेरा नीच ।
सव दौरा सब चोर ए, भरे कालिमा कीच ॥१४७॥

ऐ सब ही जु पिसाच हैं, भूत राक्षसा एह ।
दैत्य दानवा दुरमती, एही असुर गनेह ॥१४८॥

ए अजगर अष्टापदा, मत मतंग सिंह सर्प ।
एहि व्याघ्रा है सदा, जीतै मुनि नरसिंह ॥१४९॥

ए भिंडि पाव अनादिका, ए भेरुंड वित्रुंड ।
दुष्ट एहि चीला महा, एइ मगर प्रचंड ॥१५०॥

ए दावानल द्रुमइ, ए दुख सागर जांनि ।
इन से दुरजन और नहि, इह निश्चै उर आंनि ॥१५१॥

सत्रु एहि मोहादिका, ए किरात दुखदाय ।
एहि पारधी धीवरा, एहि अहेरी राय ॥१५२॥

एवा गुर अति दोष भर, महा पाप के रूप ।
हिंसक निर्दय दुरजना, ठग पुर मांहि विरूप ॥१५३॥

नांहि ठगोरी लोक मैं, विषै वासना तुल्य ।
महा ईरषा आदि वहु, विष करि पूरण कुल्य ॥१५४॥

भोग भावना सारिखी, भुरकी जग सिर डारि ।
खोंस लेंहि सब ज्ञान धन, डारै नरक मझारि ॥१५५॥

वात वनाय धिजा पते, विषै ठगोरी डारि ।
लैं हैं ज्ञान छिपाय धन, तातैं जतन[1] विचारि ॥१५६॥

जतन न कोई दूसरौ, करौ निज पुरी वास ।
विलसौ निज धन सासतौ, धारौ अतुल विलास ॥१५७॥

कैसे पहुँचै निज पुरी, लंघि ठगनि कौ ग्राम ।
सो उपाय सुनि चित्त धरि, करहु आतमाराम ॥१५८॥

मोह विदारक सम्यका, राग विड़ार विराग ।
संत भाव है दोष हर, धारैं जाहि सभाग ॥१५९॥

कांम विड़ार विवेक है, मार्दव मान निवार ।
मार्दव कहिये मैंण सौ, नरम भाव अविकार ॥१६०॥

क्रोध निवारक है क्षमा, आर्जव कपट निवार ।
आर्जव कहिये विमलता, महा सरलता सार ॥१६१॥

लोभ विड़ारक लोक में, नहिं संतोष समान ।
पाप विड़ारण तप जिसौ, कोइ न दूजौ आन ॥१६२॥

---

१ मूल पाठ चेतन है ।

मोहादिक दोषीनि के हरण हार सुखदाय ।
है अनेक जोधा महा, कौ लग कहै बनाय ॥१६३॥

तिनकौं लारै लेय तू, लंघि ठगनि कौ गाम ।
निजपुर मांहि असौ महा, जहां न ठग कौ नाम ॥१६४॥

ठग ग्राम को वर्णना, पढै सुनै जो कोय ।
ठग ग्राम कौं लंघि कै, निजपुर वासी होय ॥१६५॥

निज दौलत विलसै महा, रमै सदा निज मांहि ।
जामरण मरण करै नहीं, ममता मोह नसाहिं ॥१६६॥

॥ इति ठग ग्राम वर्णनं ॥

निज वन निरूपण—

दोहा

निज वन में क्रीडा करै, क्रीडा सिंधु कृपाल ।
ताहि नमू कर जोरि कैं, जाहि न व्यापै काल ॥१६७॥

वन नहिं निज वन सारिखौ, है अमरण वन एह ।
अमरोद्यान कहैं जिसै, परमानन्द अछेह ॥१६८॥

सही अभैवन ए सही, सदा अभैपुर पासि ।
अति रमणीक मनोहरा, सुख अनन्त की रासि ॥१६९॥

इह केली वन हंस कौ, हिंसा रहित अनूप ।
रमै सांत रस धारका, परमहंस चिद्रूप ॥१७०॥

नहिं कोइल संसार में, आतम कला समान ।
रसीया आतम केलि के, निज वन वंसिया मानि ॥१७१॥

ज्ञान अभै वन मारगा, ज्ञानी जीव विहंग ।
तेहि रमै निज वन विषै, क्रीडा करै अभंग ॥१७२॥

नहि सरवर सम भाव से, निज रस पूरित जेह ।
कमलन भाव अलेप से, सदा प्रफुल्लित तेह ।।१७३।।

भमरन भाव रस जसे, भमैं तिनौं परि भूरि ।
इहै रंग वन है भया, सव कुरंग तैं दूर ।।१७४।।

म्रग नहिं चपल स्वभाव से, ते यामें नहि कोय ।
दुष्ट भावमय दुष्ट पसु तिनकौ नाम न होय ।।१७५।।

मोह दैत्य कौ वास नहि, नाहि किरात कषाय ।
असुर दुराचार न जहां, लोभ चोर न रहाय ।।१७६।।

नहीं दंभ वल छिद्र ठग, नहीं धूर्त पाखंड ।
न परद्रोह दौरा कदे, दौर करैं परचंड ।।१७७।।

पाप रूप परपंच नहि, इन्द्री भूत न कोय ।
मदन पिसाच रहै नहीं, अद्भुत वन है सोय ।।१७८।।

नहीं एक कंटिक जहां, जहां न विकलप जाल ।
विष वेलि न मायामयी, सो वन महा विसाल ।।१७९।।

विष वृक्ष न अघ कर्ममय, नांहि कुपक्षि कदाचि ।
जहां क जीवन एक है, रहे ज्ञान घन राचि ।।१८०।।

नहिं दुख फल नहिं दोष दल, नांहि विषै विषफूल ।
सो वन सेय सुजाण तू, जो सव सुख कौ मूल ।।१८१।।
रागादिक रजनीचरा, विचरै तहां न कोय ।
तरवर सघन स्वभाव जे, तिन करि पूरण सोय ।।१८२।।
ते स्वभाव पीयूष तरु, सदा अमर फल दाय ।
यह निज वन रमणीक है, रमैं जहां निजराय ।।१८३।।
शुद्धातम अनुभूति सी, अम्रत लता न कोय ।
सदा प्रफुलित भावमय, अति सुख फल है सोय ।।१८४।।
भाव भवातप हरण से, और पत्र नहिं होय ।
तिन करि सोभित तरलता, अदभुत वन है जोय ।।१८५।।

निरमलता सी वापिका, अर निज रस से कूप ।
निज वन तिन करि सोहइ, अम्रत मइ अनूप ।।१८६।।

केवल कला कलोलनी, जामें सरस कलोल ।
ता सम नाहिं कलोलनी, निज वन मांहि अडोल ।।१८७।।

या सम नंदन वन नहीं, वंदन जोगि विसाल ।
इह तीरथ निज धाम है, हरै सकल जंजाल ।।१८८।।

रमै सदा या वन विषै, तेहि लहै आनंद ।
या सम रमिवा जोग्य नहि, यह अति रस कौ कंद ।।१८९।।

ज्ञान संपदा सासती, सो निज दौलति जांनि ।
निज संपति विलस्यां विनां, वन केलि न परवानि ।।१९०।।

इह निज वच वर्णन वुधा, पढै सुनै जो कोय ।
निज कानन क्रीड़ा करण, कर्म हरण सो होय ।।१९१।।

।। इति निज वन निरुपणं संपूर्णं ।।

निज भवन वर्णन—

दोहा

भव वन सौ वन नांहि को, गहन विषम अघरूप ।
जहां न रंचहु रम्यता, दीसै महा विरूप ।।१९२।।

भव वन भ्रमण निवारिकै, देय अभयपुर वास ।
वंदौं देव दयाल कौं, करैं आप सम दास ।।१९३।।

भैकारी भ्रम तम भरयौ, है हिंसा कौ धाम ।
असुरन हिंसक भाव से, वसै वहुत तिह ठाम ।।१९४।।

दैत्य न दुष्ट स्वभाव से, ते विचरै घन घोर ।
चोर न चाहि स्वभाव से, है तिनकौ अति जोर ।।१९५।।

दैत्य सिरोमणि निरदयी, महा मोह छलवांन ।
ता सम कोइन दुरजनां, सो वन पति वलवांन ।।१९६।।

दुराचार सौ दूसरो, असुभ अवर नहिं कोय ।
सो जुगराज महीप कै, कहां भलाई होय ।।१९७।।

राग दोष रजनीचरा, तिसे न राखिस और ।
तेहि मोह नरपति नखै, सुभटनि के सिर मौर ।।१९८।।

पाप समान पिसाच नहिं, सो नृप कै परधान ।
सपत विसन सेना सपत, सेनापति अज्ञान ।।१९९।।

नहिं अपराध वरावरी, महा पारधी कोइ ।
सो प्रोहित भूपाल कै, दया कहां तै होय ।।२००।।

परे जगत के जीव सहु, मौह पासि कै मांहि ।
पंथ नगर निरवान कौ, नृप चलिवा दे नांहि ।।२०१।।

करि सथान भव वन विषै, वैठो मोह भूपाल ।
काल समो विकराल नहिं, सो नृप कै कुटवाल ।।२०२।।

करै राज कानन विषै, कुवुधि कुटिल कुरूप ।
मोह राव को राज सव, लखिये पाप स्वरूप ।।२०३।।

ममता पटरांनी महा, मोह भूप कै जांनि ।
धरै ममत्व स्वभाव सो, कुवुधि भूल परवांनि ।।२०४।।

पाप व्रति समान को, और नहीं अन्याव ।
वरतै तहां अन्याव ही, मोहराव परभाव ।।२०५।।

विष व्रक्षन वसु कर्म से, जे अति कंटिक रूप ।
मरण देहि भव भव विषै, छाया रहित विरूप ।।२०६।।

तिन करि पूरण भव वना, मन मरकट की केलि ।
फैलि रही माया तहां, तिसी न विष की वेलि ।।२०७।।

शुवातम अनुभुति सी, अम्रत लता न कोइ ।
महा अगोचर है जहां, मरण हरण है सोई ।।२०८।।

सदा सधन अति मगन जे, भाव सुद्ध उपयोग।
तिनमै अम्रत तरु नहीं, तिनकौ दुर्लभ जोग ।।२०६।।

नाहि कुपत्र कुसूत्र से, तिनही कौ विसतार ।
नाहि सुपत्र सुसूत्र से, तिनकौ तुछ विचार ।।२१०।।

मानफूलि धनफूलि जो, राजफूलि मनफूलि ।
त्रिषै फूलि से विष पहुप, और न जानौं मूलि ।।२११।।

फूलि रहे तेइ तहां, दुखफल फलै अनंत ।
दुख फल से नहि विषफला, इह भासै भगवंत ।।२१२।।

सदा प्रफूलित सहज ही, जे केवल निज भाव ।
तैसे फूलन सुख मइ, तिनकौ अलप लखाव ।।२१३।।

परम भाव अति रस मइ, तिसे सुधा फल नांहि ।
ते अगम्य भव वन विषै, जिन करि सव दुख जांहि ।।२१४।।

शांत भाव सौ मिष्ट जल, अम्रत रूप न कोय ।
सो भव मै मिलवौ कठिन, जा करि तिरपत होय ।।२१५।।

विषै वासना सारिखौ, और न विष जल वीर ।
सो भव वन मै वहुत है, क्षार मलिन जो नीर ।।२१६।।

भरचो कपट मय कीच सौ, जाकरि त्रिषा न जाय ।
सो पीवै वन जन सवै, मरै रोग दुख पाय ।।२१७।।

मृग त्रिशरणा नहि भ्रांतिसी, सो अत्यंन्त लखाय ।
इह वन म्रग तिष्णा मई, सव जन सदा भमाय ।।२१८।।

वांसिनि मैं मोती दुलभ, त्यौं भव वन मैं साध ।
कोइक पइए धर्मधी, केवल तत्व अराध ।।२१९।।

गिरन कठौर स्वभाव से, तिनकी भलो न तौर ।
ते भव वन मै मुख्य हैं, महा कष्ठ कौ ठौर ।। २२०।।

नला न नीच प्रवृति से, रह्यो तिनौ तैं पूरि ।
स्थालन का परभाव से, ते पावन मै भूरि ।।२२१।।

म्रग नहिं मूरिख जीव से, फसै फासि कै मांहि ।
करि अनुराग जु राग सौं, व्रथा जीव सौं जांहि ॥२२२॥

अहंकार ममकार से, नांहि अहेरी कोइ ।
भयंकार विचरैं सदा, अंतक सम हैं सोइ ॥२२३॥

जाल न विकलप जाल से, इह वन जाल स्वरुप ।
अति जंजाल भरचो सदा, महा भंष विड रूप ॥२२४॥

जीवनि के कुल जाति जे, अर नाना विधि वंस ।
तिन सेवां सुन और को, नहि कुभाव से कंस ॥२२५॥

भरचो वंस अर कंस तैं, अंस मात्र सुख मांहि ।
लुटै पंथ निरवांन कौ, वहु पंथी विनसांहि ॥२२६॥

सम्यक दरसरण सोइ करण, ता विनु पर की आस ।
घास सोइ तासौं भरचो, भव वन कष्ट निवास ॥२२७॥

नहि कंटिक क्रोधादि से, तिन करि पूरण एह ।
क्रूर भाव से सिंघ नहि, भव वन तिन कौ गेह ॥२२८॥

दुरनयवादी जीव से, नांहि कुपक्षी कोय ।
या संसार असार मैं, करै सोर अति सोय ॥२२९॥

नही अजगर अज्ञान सौ, ग्रसै जगत कौं जोय ।
वसै सही भव वन विषै, वचै कहां तैं कोय ॥२३०॥

मद अष्टनि से और कौ, अष्टापद नहि वीर ।
भव अटवी मैं ते रहै, तिनैं नहीं पर पीर ॥२३१॥

अति उदमाद प्रमाद सौ, मत्त गयन्द न और ।
सो वनगज भव वन विषै, दुष्टनि कौ सिर मौर ॥२३२॥

रहै सदा उनमत महा, काल स्वरूप विरूप ।
थिर चरसे नहि वन चरा, वसै तहां भय रूप ॥२३३॥

पीडै पाप पिसाच अति, दुष्टनि कौ सरदार ।
भूतन इन्द्री पंच से, तिन कौ तहां विहार ॥२३४॥

छल छिद्रनि से और को, नांहि छलावा होय ।
फिरै छलावा वन विषै, वचै कहां तै कोय ।।२३५।।

भव कांतर असा रहै, अति दुष्टनि कौ वास ।
नहि उलूक मिथ्यात सौ, ताकौ तहा विलास ।।२३६।।

काम लोभ परपंच से, ठग नहि कोइ ओर ।
सदा ठगै भव वन विषै, करै जगत कौ चोर ।।२३७।।

वटयारौ दौरौ बुरो, नहि परद्रोह समान ।
दौर करै परधन हरै, धरै बहुत अभिमान ।।२३८।।

नहि अंधेरि सुभाव से, सुसा औ रहै वीर ।
सिथिल मन्द भाव से, गेंडा जानि न धीर ।।२३९।।

भय दायक भावनि से, और नहि भिड़ि पाव ।
भव अरण्य भीतरी भया, तिनको सदा लखाव ।।२४०।।

वाधाकारी भाव से, नाहि वघेरा कोय ।
हठ ग्राहक भावनि से, सूकर और न होय ।।२४१।।

अविवेकी भावनि से, महिष अरण्य न और ।
इत्यादिक खल जीव गण, दीसै ठौर जु ठौर ।।२४२।।

लोक गमार अजाण जे, तिसे न सांभर रोभ ।
सदा रहै भ्रम भाव मैं, धरै न तप व्रत वोभ ।।२४३।।

इत उत डोलत ही फिरै, अति हि भकोला खाय ।
चितवति चंचल रूप जो, निश्चल कबहु न थाय ।।२४४।।

ता सम और न लौंगती, भव कांतार मभार ।
विचैंरे भ्रांति भरी सदा, धरै न थिरता सार ।।२४५।।

उड़े फिरै चंचल महा, जे जग के परिणाम ।
तिसे नभे रूंडा गरूड़, तिनकौ भव वन धाम ।।२४६।।

परमहंस मुनिराज से, हंस और नहि कोय ।
तिनकौं भव कानन विषै, दरसन दुरलभ होय ।।२४७।।

नहि सरवर सुख सरसमो, सम रस पूरित नीर ।
ताके भेदी भव्य जन, विरला जांनौ वीर ।।२४८।।

नही वाय जग वायसी, जगत उड़ावा जोइ ।
वाजै अति असराल सो, कंपै थिर चर लोय ।।२४९।।

काय टापरी वापरी, यापै टिकै न कोय ।
निज पद परवत आंसिरौ, पकरै उवरै सोय ।।२५०।।

नहि कोपल सारिखी, दावानल विकराल ।
सर्व चराचर भस्म कर, महा तापमय ज्वाल ।।२५१।।

लागि रही भव वन विषै, तापैं वचिवौ नांहि ।
वुझै शांत रस नीर मैं, सो दुर्लभ भव मांहि ।।२५२।।

निज गुर अंवुधि मैं वसै, ताहि न याकौ ताप ।
तातैं सकल विलाप तजि, सेवो आपनि पाप ।।२५३।।

वषै पंच इंद्रीनि के, कालकूट विष तेहि ।
विष कौ मूल भयंकरा, भव कानन है एहि ।।२५४।।

नहि लुटेरा काल सौ, लूटै सरवसु जोहि ।
संक न मानैं काइ की, हरै प्राण धन सोहि ।।२५५।।

रागादिक रजनीचरा, विचरै अह निसी वीर ।
रोकै पंचम गति पथा, करै जगत कौं पीर ।।२५६।।

दैति सिरोमणि मोह कौ, राज महा विपरीत ।
छोटे कौ मोटो गिलै, वसै लोक भैभीत ।।२५७।।

पर पंचक पाखंड से, और दूसरे नांहि ।
तिनकौ अति अधिकार है, मोह राज कै मांहि ।।२५८।।

राज करै पापी जहां, दैत्यनि कौ सिरदार ।
कैसैं चालै धर्म कौं, मारग तहां जु सार ।।२५९।।

दरसन ज्ञान चरित्र से, और न निज पुर पंथ ।
या मारग ह्वै तत्व कौं, पावैं मुनि निरगंथ ।।२६०।।

मोक्षि मारगी मुनि जिसे, और न जांनौ कोय ।
मोह मांन हरि ज्ञांन धरि, निज पुर पहुंचे सोय ।।२६१।।

संजम तप वैराग व्रत, निरव्रिति विषै कषाय ।
संवर निर्जर सुभट ए, भैहारी सुखदाय ।।२६२।।

इन सेवौ लावा नही, भव भै गनै न मूल ।
पहुँचावें निरवांन ए, कवहु न ह्वै प्रतिकूल ।।२६३।।

क्षायक सम्यक केवला, वीरज और अनंत ।
वर दृग वोध अनंत सुख, द्वै तन भाव कहंत ।।२६४।।

शुद्ध पारिणामीक ए, साथी प्रवल प्रचंड ।
इन से साथी और नहि, धारै साथ अखंड ।।२६५।।

नहि सेरी जिनवानि सी, दरसिक गुरसे नांहि ।
नगर नही निरवांन सौ, जहां संत ही जांहि ।।२६६।।

भव कांतार वहैतरी, पढै सुने जो कोय ।
सो भव कानन लंघि कैं, निज पुर नायक होय ।।२६७।।

लहै सासती दौलती, फेरि जु भव वन मांहि ।
उपजै मरण करै नहीं, निज पुर मांहि रहांहि ।।२६८।।

।। इति भव वन निरूपणं ।।

———

भाव समुद्र वर्णन—

दोहा

चिदानंद चिनमूरती, चेतनराय नरेस ।
रमैं सदा सुख सिंधु मैं, नमैं जाहि जोगेस ।।२६९।।

ताहि प्रणमि नमि मुनिमहा, प्रणमि सार सिद्धान्त ।
निज समुभ्र वर्णन करूं, जा सम और न सांत ।।२७०।।

चेतन सागर सारिखौ, और न सागर क्षीर ।
यह अम्रत सामर महा, हरै दाह दुख पीर ॥२७१॥
विमल भाव सौ जगत मैं, होय न निर्मल नीर ।
भर्यौ विमल जल भाव सौं, गुण सागर गंभीर ॥२७२॥
लहरिन परमानंद सी, जामै लहरि अनंत ।
नंदी न निज परणति जिसी, इह भासै भगवंत ॥२७३॥
वहै अखंडित धार जे, निज परणति रस धार ।
ते सब निज सागर विषै, मिलै महा अविकार ॥२७४॥
रतनन दरसन ज्ञान से, है रतनाकर एह ।
भर्यौ भाव रतनांनि तैं, अंबुधि अचल अछेह ॥२७५॥
मुक्त सकल परपंच तैं, जे आतम परिणाम ।
ते मुक्ताफल निरमला, सागर तिनकौ धाम ॥२७६॥
उजल उत्तम भाव से, परम हंस नहिं कोय ।
यह हंसनि कौ सागरा, अद्भुत अंबुधि होय ॥२७७॥
अस्ति सदा सत्ता धरैं, वस्तु रूप अतिसार ।
चेतनता आनंदता, ए निज भाव अपार ॥२७८॥
भाव मइ सागर यहै, भाव समुद्र कहाय ।
सुख सागर रस सागरा, नाम अनंत धराय ॥२७९॥
सुख नहिं विषयादिक विषै, सुख आतम रस सार ।
मन इंद्री वरजित महा, अविनासी अविकार ॥२८०॥
सुख समुद्र है सासतो, निज गुण रूप अरूप ।
लौकिक गुण तैं रहित जौ, गुण सागर सद्रूप ॥२८१॥
नांहि मगन भावानिसे, वन उपवन जग मांहि ।
ते सब याकै तीर हैं, यामैं संसै नांहि ॥२८२॥
अम्रत वेलि न लोक मैं, निज अनुभूति समान ।
सोइ फलि रहि जलधि तटि, अमरण फलर समांन ॥२८३॥

जड सुभाव जलचर नही, चेतन सागर मांहि।
मोह मांन मन मदन छल, मगर न एक रहांहि ॥२८४॥

मृत्यु कारणं दुष्टते, इन से दुष्ट न और।
रस सागर रतनागरा, नहीं तिनौ की ठौर ॥२८५॥

धरै पक्ष मिथ्यात की, दया भाव तैं दूर।
तेहि कुपक्षी नहिं तहां, सागर है सुख पूर ॥२८६॥

जीभ लोलपा मांछला, निठुर काछिवा जेहि।
वृथा विवादी मींडका, सागर मैं नहिं तेहि ॥२८७॥

तुछ भाव जे झींगरा, कीट कालिमा रूप।
जल सर्प जग भावजे, सागर मैं नवि रूप ॥२८८॥

जग जंजाल अनेक जे, ते जल देवत जांनि।
तिनकौ तहां न ठाम है, यह निश्चै परवांनि ॥२८९॥

मलिन भाव ही काग जल, जलनिधि में नहि कोय।
मद मछर माछर नहीं, अदभुत सागर सोय ॥२९०॥

पर पीड़ा कर क्षुद्र जे, परिणामा जग मांहि।
तेहि डांसरा दुष्ट धी, रस सागर मैं नांहि ॥२९१॥

विषय वासना सारिखी, नहि वासना कोय।
निज सागर मैं सो नहीं, सुख सागर हैं सोय ॥२९२॥

विष तरु राग विरोध से, मा पासी विष वेलि।
नहि अमृत सागर नषैं, सागर रस की रेलि ॥२९३॥

कृपण भाव कोड़ी नहीं, नांहि मिथ्याती संख।
द्विविधा सीप नहीं जहां, निज सागर मधि वींभ ॥२९४॥

विषम पवन जग वायसी, और न कोइ असार।
सो वाजै नहि जलधि मैं, उदधि अथाह अपार ॥२९५॥

वड़वानल वांछा जिसी, नहीं विश्व के मांहि।
सो नहि विमल पयोधि में, खल नहि कोइ रहांहि ॥२९६॥

कल हंसन निज केलि से, जिनकौ सदा निवास ।
लहि सरिस समभाव से, तिनकौ सदा विलास ।।२६७।।

राज हंस रिषराय से, और न जानौं वीर ।
क्रीड़ा करैं सदा तहां, जहां सहज रस नीर ।।२६८।।

अवर विहंगम मारगा, हौंहि सुभाव विहंग ।
तेहि सुपक्षी जलधि मैं, लीला करैं अभंग ।।२६६।।

हिंसा भाव नहीं जहां, है हंसन की केलि ।
सीत न ताप न रैनि दिन, जल निधि रस की रेलि ।।३००।।

क्षार भाव से क्षार जल, जलधि थकी अति दूर ।
सो रतनागर सागरा, गुण अनंत भरपूर ।।३०१।।

नहि विभाव वितर जहां, असुभ असुर नहि कोय ।
मायाचार न चोर छल, अनुपम सागर सोय ।।३०२।।

पापाचार स्वरूप खल, परिणामा सिंघादि ।
सागर तीर न पाइए, मद परिणाम गजादि ।।३०३।।

कायर चंचल भाव मय, एक न कोइ मृगादि ।
सागर तीर न देखिये, दोष रूप दैत्यादि ।।३०४।।

लोभ लुटेरा नहिं जहां, लूटि सकै नहि कोय ।
दुखदायक दुरभाव नहि, सुखसागर है सोय ।।३०५।।

क्रीड़ा भाव सुभाव ही, क्रीड़ा नात्र अनूप ।
क्रीड़ा करै पयोधि में, परमातम निज रूप ।।३०६।।

नाम अनंत पयोध के, महिमां अगम अपार ।
भाव नगर के निकट ही, भाव उदधि अविकार ।।३०७।।

आतम भाव हि नगर है, आतम भाव पयोधि ।
आतम राम ही राव है, यह निज घट मैं सोधि ।।३०८।।

और न भाव प्रपंच कछु, केवल चेतन भाव ।
यह निज सागर वर्णनां, उर धारैं मुनि राव ॥३०९॥

॥ इति भाव समुद्र वर्णनं ॥

दोहा

भव समुद्र वर्णन—

या संसार असार में, श्री भगवान अधार ।
तेहि उधारैं गुण निधी, करैं भवोदधि पार ॥३१०॥

नहिं संसार समुद्र सौं, सागर और विरूप ।
यह विष सागर दुख मइ, महा भयंकर रूप ॥३११॥

भोग कामना कलपना, भर्म वासना तेह ।
अति कुवासना सौं भर्यौ, भव सागर है एह ॥३१२॥

दुख सागर सद्रूप इह, है अत्यंत असार ।
क्षार महा विष जलमइ, तै भव पारावार ॥३१३॥

विषै सारिखो जग विषै, और न है विष नीर ।
भव भव उपजावैं मरण, देय सदा दुःख पीर ॥३१४॥

भाव कालिमा सारिखौ, कीच न जग में कोय ।
कीच कालिमा सौं भर्यो, भव सागर है सोय ॥३१५॥

मल नहि मोह ममत्व सौं, यह मल सागर पूर ।
छल सागर छल सौं भर्यो, खल सागर सुख दूर॥३१६॥

भोग भावना अति तृषा, उपजावै संताप ।
विषै नीर सौं नहिं बुझै, विरथा विषै विलाप ॥३१७॥

आतम अनुभव सारिखौ, और सुधारस नांहि ।
सो अति दुर्लभ है भया, भव सागर के मांहि ॥३१८॥

लहरि न लोभ तरंग सी, ते भव मांहि अनंत।
विषै तरंगनि सौं भरयो, दुख दोषनि कौ कंत ॥३१९॥

नंदी न आसा सारिसी, आकुलता जल पूर।
मिलै सकल भव सिंधु में, रहै जीव अति क्रूर ॥३२०॥

भवरान भ्रम सौं और को, उहै भवरा भ्रम रूप।
भव समुद्र विड़रूप अति, कहै महामुनि भूप ॥३२१॥

याकै तटि तरवर विषा, विषम भाव अघ रूप।
तिसे कुव्रक्षन और को, कंटिक रूप कुरूप ॥३२२॥

वाधा सी विष वेलि नहि, विकलप से नहि जाल।
ते भव सागर कै नषै, दीखै अति विकराल ॥३२३॥

वन उपवन दुख फल भरे, भव सागर के तीर।
माया ममता मूरछा, वन देवी है वीर ॥३२४॥

अमृत तरु सम भाव जे, ते सागर तटि नांहि।
अमरण फल कौ नाम नहि, मरण सदा भव मांहि ॥३२५॥

अमृत वेलि न विश्व मैं, निज अनुभूति समांन।
सौ भव सागर सौं सदा, है अति दूर निधान ॥३२६॥

संसै विभ्रम मोहमय, धारै असुर अपार।
अति अथाह गम्भीर है, फैकट फे न असार॥ ३२७॥

आदि न अंत न मध्य है, भव सागर कौ वीर।
कोइक उवरै धीर नर, तिरै भवोदधि नीर ॥३२८॥

मींनन लम्पट चपल से, तिनकौ अति विस्तार।
मीन व्वज से धीवरन, पाय सुरूप अपार ॥३२९॥

धारयां विकलप जाल जे, भाव महा विकराल।
पकरैं चपल मन मीनकौं, करैं वहुत वेहाल ॥३३०॥

नहि दादर दुरवुद्धि से, वकवादी चल भाव।
तिनकौ तहां निवासि हैय,ह भासैं मुनिराव ॥३३१॥

निष्ठुर भाव कठोर जे, तेहि काछिवा जांनि ।
भरयो जलचरादिक थकी, ...जल निधि मांनि ॥३३२॥

अति आलस परमाद से, सूंसि और नहिं कोय ।
कर्म वंध पर वंध से, नहिं तांतूणि जु होय ॥३३३॥

मगर मछ नहि काल सौ, गिलै जगत कौं जोय ।
भव सागर मैं सो रहै, वचै कहां तें कोय ॥३३४॥

महा नून व्रति तुछ व्रति, हीन दीन भव भाव ।
तेहि झींगरा जानियें, तिनकौ बहुत लखाव ॥३३५॥

कीट न विषै कषाय से, महा मलिन दुख दाय ।
काई कर्म कलंक सम, और न कोई कहाय ॥३३६॥

कूड कलंक कलेस मय, भव सागर भय सिंधु ।
कोइक उधरे साधवा, रहित सकल परवंध ॥३३७॥

मांछर मछर भाव जे, डांसर दुसह सुभाव ।
सागर तीर अपार हैं, यह दुख कौ दरियाव ॥३३८॥

थलचर जलचर नभचरा, थिरचर जग के जीव ।
भरयो सदा सव भूत तें, जामैं वहुत कुजीव ॥३३९॥

जामण मरण करैं सदा, दुख देखैं मति हीन ।
कोइक मुनिवर पार ह्वै, निज आतम लवलीन ॥३४०॥

त्रिविधि ताप संताप तुल, वड़वानल नहि कोय ।
सोही भवानल भव विषैं, सदा प्रज्वलित होय ॥३४१॥

जैसैं जल कौं सोसइ, वडवानल जल मांहि ।
तैसैं इह जीवन जला, सोसै संसै नांहि ॥३४२॥

इह नांही रतनाकरा, दोषाकर दुख रूप ।
खानि महा मछानि की, मकरा कर विड़रूप ॥३४३॥

दुरनय पक्षी सारखे, नांहि कुपक्षी कोय ।
करैं तेहि अति कुसवदा, सदा सोर अति होय ॥३४४॥

रहित ज्ञान धन जड़ता, जे मिथ्या परिणाम।
तिन से संख न और को, भव जल तिनकौ धाम ॥३४५॥

संखोल्यो सागर यहै, महा संख अति भंग।
उतरैं पार पुनीत नर, जे निसंक नहि कंप ॥३४६॥

कृपण व्रति सम लोक मैं, कौड़ी और न कोय।
भरचौ भवोदधि तिन थकी, नहीं रम्य है सोय ॥३४७॥

कौडचौ सागर है सही, नहीं कौड़ी कौ एह।
गुण मांणिक के पारखी, तजैं या थकी नेह ॥३४८॥

सीपन द्विविध व्रत सी, है द्विविध्या की खांनि।
सीपोल्यो सागर यहै, रमि वाजे गिन जांनि ॥३४९॥

कागन कोइ कुभाव से, है तिनकी ह्यां केलि।
वुग नहि ठग भावानि से, तिनकी रेलि जु पेलि ॥३५०॥

जड़ स्वभाव जडतामई, वरजित सम्यक ज्ञान।
नहि तिनसे जल देवता, रोकैं पथ निरवांन ॥३५१॥

रागादिक अति राक्षसी, दुष्ट भाव दैत्यादि।
पाप स्वरूप पिसाच वहु, विंतर है विषयादि ॥३५२॥

ते संसार समुद्र में, वसैं सदा विकराल।
कैसे प्रोहण चलि सकैं, वहै वाय असराल ॥३५३॥

वाय न मिथ्या वायसी, जा करि जग उड़ि जाय।
गिर नहीं थिरता भाव से, जे निश्चल ठहराय ॥३५४॥

नांहि कुपर्वत लोक मैं, कठिन भाव से कोय।
कर्कस कटु कषाय धर, निष्टुर निर वृण होय ॥३५५॥

तैं भवसागर कै विषैं, नाव विहारक वीर।
अवरहु विघन वहौत हैं, यह सागर गंभीर ॥३५६॥

ग्रोहरण लूटै जल विषैं, सव कौ सरवसु लेय ।
जल दौरा लालच महा, जग कौ वंद करेय ।।३५७।।

तसकर त्रिष्णा भाव जे, चौरैं अह निसि माल ।
मालन ज्ञान विराग सौं, हरे जगत जंजाल ।।३५८।।

अभख भक्षका हिंसका; तेहि सिंघ व्याघ्रादि ।
अति दोषी विष का भरचा, जेहि जानि सर्पादि ।।३५९।।

सदा भवोदधि कैं तटैं, मद परिणांम गजादि ।
विचरैं कायर चंचला, भाव सुसा मृग आदि ।।३६०।।

वाधक भाव कुभावजे, तेहि व्याध अति होय ।
अपराधी परिणाम जे, तेहि पारधी जोय ।।३६१।।

मूल महा दुख कौ सदा, भव समुद्र भय रूप ।
जामैं रंच न रम्यता, दीसै वहुत विरूप ।।३६२।।

है अछेह अघ गेह यह, लंघे याहि अनेह ।
तजैं गेह देहादिस्यौं, मोह मुनिंद विदेह ।।३६३।।

रतनन निज गुण रतन से, दरसन ज्ञान स्वरूप ।
सत्ता चेतनता महा, आनंदादि अनूप ।।३६४।।

ते अगम्य अति दुर्लभा; जिन करि रोर नसाय ।
रौरन रस अनरस समा, इह निहश्चै ठहराय ।।३६५।।

नहीं रतन की वात ह्यां; कौड़िन कौ व्यौपार ।
संख सीप वहुती सदा, संखनि कौ सरदार ।।३६६।।

निज मणि प्रापति अति कठिन, कोइक पावे धीर ।
सो नर है भव सिंधु में, तजै तुरत भव नीर ।।३६७।।

विमल भाव परकास मय, निरमल ज्योति सरूप ।
ते मुक्ताफल जानियैं, वस्तू अरूप अनूप ।।३६८।।

तिनकौ दरसन दुर्लभा; भव सागर कै मांहि ।
उज्जल उत्तम भाव जे, हंस न यहां रमांहि ।।३६९।।

नाव न मुनि व्रति सारिखी, विरकत भाव निधांन ।
मंडित मूलोत्तर गुणनि, पहुँचावै निरवाण ॥३७०॥

नाम नांव ही कौ महा, भाषैं लोक जिहाज ।
जति व्रत रूप जिहाज मैं, राजैं श्री मुनिराज ॥३७१॥

छिद्रण दूषण ग्रहण से, ते न नाव कै कोय ।
इंह अछिद्र नौका महा, भव जल तारक होय ॥३७२॥

संग रहित संजम मई, जव वाजै सुध वाय ।
जति व्रतरूप जिहाज तव, भवसागर तिरिजाय ॥१७३॥

खेवटिया न गुरु समा, जिनके नाहि प्रमाद ।
आप तरैं तारैं रखी, रहित विषाद विवाद ॥३७४॥

श्री भगवान सुजान से, और न सारथवाह ।
भवसागर भय रूप मैं, तेइ करैं निवाह ॥३७५॥

नित्य स्वरूप विलास सौं, वरदवान नहि वीर ।
निज चेतन धन ले मुनि, पहुँचे निजपुर धीर ॥३७६॥

धर्म नाव गुर खेवटया, सारथवाह जु देव ।
यह वरणन व्यवहार है, निश्चै आतम एव ॥३७७॥

आतम भाव अनूप जो, ता सम और न दीप ।
भव सागर कै पार है, दिपै सदा दैदीप ॥३७८॥

ताहि कहैं निरवांन अर, मोक्ष हु कहै मुनिंद ।
कहै अभैपुर भावपुर, सिवपुर कहैं अतींद ॥३७९॥

ए निजपुर के नाम सव, फवै जाहि सव वोय ।
नग्र निरूपम निर्मला, है निरलेप अछोय ॥३८०॥

वसै दीप सव कै सिरै, जहां न जम कौ जोर ।
चोर न जोर न जार कौं, होय न कवहू सोर ॥३८१॥

दौलति रूप अनूप सौ, दीप दोष तैं दूर ।
संपति ज्ञान विभूति जो, हैं तातैं भरपूर ॥३८२॥

निजपुर वासी होय कैं, भाव समुद्र विलास।
लहैं भवोदधि तैं सदा, दूर रहैं सुखरास ॥३८३॥

भव समुद्र भव वन इहै, एहि भाव नल रूप।
अंध कूप विड़रूप इह, तिरैं महामुनि भूप ॥३८४॥

भव समुद्र वर्णन भया, उर धारै जो धीर।
सो न परै भव सिंधु मैं, तिरै तुरत भव नीर ॥३८५॥

॥ इति भव समुद्र वर्णन ॥

दोहा

ज्ञान निरूपण—

अचल अटल अति विमल है, जगदीस्वर जस रासि।
ताहि प्रणामि नमि सूत्र कौं, श्री गुरु गुण परकासि ॥३८६॥

भाषौ सुथिर सुभावमय, गिरवर अचल सुभाव।
क्रीड़ानिधि क्रीड़ा करे, जा परि चेतन राव ॥३८७॥

अचल सुथिर सुभाव से, क्रीड़ा गिर नहि कोय।
रतनाचल रम्याचला, ताहां न कंटिक जोय ॥३८८॥

अति उतकिष्टे उत्तमा, उच्च सवनितैं जेहि।
अचल भाव ते अचल हैं, और न अचल गनेहिं ॥३८९॥

रतन न निज गुण रतन से, अस्ति स्वभाव अनत।
चेतनता आदिक महा, थिर गिर मांहि रहंत ॥३९०॥

परम पुनीत पदार्थ जे, है तिनकौ यह थान।
जहां मगन भावानि से, सघन वृक्ष रसवांन ॥३९१॥

भरचो सदा रस वस्तु तै, अम्रत रूप अनूप।
जहां कुपक्षी एक नहिं, चंचल भाव स्वरूप ॥३९२॥

उज्जल निर्मल भाव से, परमहंस नहि और।
इहै ज्ञानगिर धर्मगिर, है हंसनि की ठौर ॥३९३॥

निज धारा कल्लोलनी, वहै अखंडित धार।
ता सम ए तटिनि और नहिं. जाकौ पार न वार ॥३९४॥

सो उतरै या गिर थकी, सुख सागर कै मांहि।
सदा समावै सासती, यामैं संसै नांहि ॥३९५॥

गिर परि समरस सरवरा, गिर निज पुर कै पासि।
सदा ज्ञान अनुभूतिमय, वेलि रही परकासि ॥३९६॥

सदा प्रफुल्लित भावमय, फूल रहे अति फूलि।
महा सुधारस भावफल, फलैं हरैं भ्रम भूलि ॥३९७॥

क्रोध अगनि कामागनी, लोभ मोह मय आगि।
देखत ही भावाचला, तुरत जांहि सव भागि ॥३९८॥

ज्ञानागनि ध्यानागनी, धूम रहित परकास।
तेज अगनि प्रज्वलित है, जा करि भर्म न भास ॥३९९॥

धूम न कर्म कलंकसौ, ताकौ तहां न नाम।
नहीं वाय चल भाव मय, यह परवत निज धाम ॥४००॥

दुष्ट कठौर कुभावजे, पाहण तेहि वखाण।
यह क्रीड़ा गिर थिर गिरा, रमणाचल कहवाय ॥४०१॥

या गिर मैं नहि पाहणा, कंकर कोइ न होय।
क्षुद्र रंक भावानि से, कंकर और न जाण ॥४०२॥

वहै व परि सुसंगता, तिसी न सुन्दर वाय।
है रतननि कौ पर्वता. आपहि मांहै सोय ॥४०३॥

अति हि कृपणता नांन्हपन, जाचकता जग मांहि।
तिसी न नांन्ही कांकरी, ते या गिर परि नांहिं ॥४०४॥

सठ पसु नहि कामीनि से. ते गिर परी न लगार।
दुष्ट पसु न पिसुनानी से, तिनकौ नहिं संचार ॥४०५॥

पसु न कहावैं पापिया, गहै दोष पर जेहि ।
पिसुन न पेखैं पर्वता, थिरता रूपक देहि ।।४०६।।

गिर परि हिंसा नाम नहि, नहिं हिंसा परिणांम ।
यह पहार निज धाम है, रमैं आतमा राम ।।४०७।।

खल नर खल तिर खल असुर, लखि न सकैं गिरराज ।
दिव्य भाव निज तेहि सुर, तिनके तहां समाज ।।४०८।।

फूलि रहे भावा कमल, अमल अलेप स्वरूप ।
समरस सरवर कै विषै, थिर गिर परि सद्रूप ।।४०९।।

निज रस वेदक भावजे, तेहि भमर भ्रम दूरि ।
ते रमणाचल उपरैं, रमैं सदा भूरपूरि ।।४१०।।

आतम अनुभव केलिसी, और न कोइल कोइ ।
सो गिर ऊपरि है धनी, अति सुखदायक सोय ।।४११।।

माया जाल न है तहां, जहां न विकलप जाल ।
विष तरु अघ कर्मन जहां, पर्वत वहुत विसाल ।।४१२।।

विष वेलि न ममता तहां, समता अतुल अपार ।
जे विषफल दुख दोष मय, गिर परि ते न लगार ।४१३।।

नहीं काल अजगर जहां, और न अघकर कोइ ।
है सुखकर इह पर्वता, निजपुर निकट हि होय ।।४१४।।

नहिं कंटिक क्रोधादिका, नहि मन मरकट केलि ।
मोर प्रमोद स्वभाव से, तिन की रेल जु पेलि ।।४१५।।

गुफा ज्ञान मय ध्यान मय, तिन करि सोभित एह ।
सिखर सुधा भावानि से, धारैं अचल अछेह ।।४१६।।

या पर्वत की तलहटी, शुभाचार शुभ रूप ।
अशुभ दैत्य दूरै रहैं, थिर गिर अमल अनूप ।।४१७।।

महा मुनिंद्र गिरंद्र परि, राजै शांत स्वरूप ।
रहैं राज हंसा सदा, आतम राम अनूप ।।४१८।।

सुख की वात अनन्त है, दुख की एकहु नांहि ।
यह सुख सिखरी सर्वथा, नहिं भव सागर मांहि ॥४१६॥

इहै भाव गिर भूप गिर, भाव नगर कै पासि ।
विना अभैपुर थिर गिरा, नहि भव वन मैं भासि ॥४२०॥

इह निज क्रीड़ा गिर कथा, उर मैं धारै संत ।
सो क्रीड़ा गिर उपरैं, क्रीड़ा करै अनंत ॥४२१॥

क्रीड़ा नाम न और को, क्रीड़ा निज अनुभूति ।
जो निज सत्ता मैं रमैं, विलसै ज्ञान विभूति ॥४२२॥

वस्तु अमूरति चेतना, है अनूपम अविकार ।
आपहि निज गिर निजपुरा, आपहि सिंधु अपार ॥४२३॥

आपहि निज सर निजवना, आपहि है रसकूप ।
निज विभूति वापी विषैं, केलि करै चिद्रूप ॥४२४॥

॥ इति ज्ञान निरूपणं ॥

दोहा

गर्व गिरि वर्णन—

मोह न मान न मनमथा, मन न वचन नहिं देहि ।
गेह न नेह न राग रिस, राजै राव अछेह ॥४२५॥

ताहि प्रणमिन भारती, अनेकांत अविकार ।
भाषीं मान मही धरा, नमि मुनि संजमधार ॥४२६॥

नहीं मांन गिर सारिखौ, और विष गिर कोय ।
महानीच यह गर्व गिर, नीचन को घर होय ॥४२७॥

नर्दय दुष्ट स्वभाव से, और न खल तिरजंच ।
या पर्वत परि वहु रहैं, जिनकै दया न रंच ॥४२८॥

क्रूर दिष्टि कोपाधिका, तेहि केसरी आदि।
जानहु भाव विकार मय, विष भरिया सरपादि ॥४२९॥
उड़ते रहैं विभाव मैं, धरहि कुपक्ष कुभाव।
तेहि कुपक्षी हिंसका, तिनकौ तहां प्रभाव ॥४३०॥
कायर चपल सुभाव जे, वन पसु तेहि मृगादि।
विचरैं गिर परि भै भरे, भावहि विषय त्रिणादि ॥४३१॥
पातिक से नहि पारधी, अति परपंच स्वरूप।
ते परवत परि अह निसी, फिरैं महा विड़रूप ॥४३२॥
कठिनि कठोर स्वभाव से, और न पाथर जोय।
है पाथर कौ पर्वता, रतन कहां तैं होय ॥४३३॥
कुटिल कुव्रत्ति कुभाव से, कंकर कोइ न और।
प्राणिनि कौं पीड़ा करैं, यह गिर तिनकी ठौर ॥४३४॥
औरन कौं नीचै गनैं, इहै नीच व्रति होय।
क्षुद्र व्रति ते कांकरी, नांन्ही निश्चै जोय ॥४३५॥
पाथर कांकर कांकरी, तिनसौं भरचौ पहार।
महाकष्ट कौ थान इह, तू मति करै विहार ॥४३६॥
है कंटिक क्रोधादिका, मद गिर मांहि अपार।
सदा विपक्षी ह्यां रहैं, मिथ्यात्वादि विकार ॥४३७॥
सोर विपक्षनि कौ सदा, सोर पसुनि कौ वीर।
जोर कुजीवनि कौ तहां, जहां न अमृत नीर ॥४३८॥
नहिं अविद्या सारिखी, विषवल्ली विषरूप।
सो गिर परि विस्तरि रही, दुखदायक दुख रूप ॥४३९॥
जाल न माया जाल सौं, यह गिर जाल स्वरूप।
भरचो आल जंजाल कौं, विकलप रूप विरूप ॥४४०॥
विष तरवर नवि भाव से, धरै अनेक विकार।
यह विष वृक्ष मइ सदा, गरव पहार असार ॥४४१॥

है विषफल नरकादि जे, यह गिर विषफल रासि ।
सुभ कौ लेस न है इहां, नहिं गुण मणिया पासि ॥४४२॥

विषै फूलि धन फूलि से, और न विष के फूल ।
फूलि रहे तरु तिन थकी, तहां जाय मति भूल ॥४४३॥

सदा कुपत्र परे इहां, महा अपात्र स्वरूप ।
मिथ्या सूत्र कुवाय तैं, उड़े फिरैं जड़ रूप ॥४४४॥

नहि अध्यातम तन्त्र से, अमृत तरु गिर मांहि ।
नहि अध्यातम व्रति सी, अमृत वायु लखांहि ॥४४५॥

नांहि मानगिर कै विषै, सदा प्रफूल्लित भाव ॥
नांहि सुधाफल परमफल, यह गिर विषम लखाव ॥४४६॥

नांहि शुद्धता सारिखी, गिर परि अमृत वेलि ।
विमल भान हंसानि की, तहां न कबहू केलि ॥४४७॥

नहिं अमृत सरवर जहां, समरस भाव सुरूप ।
भरे शांत रस [नीर तैं, दाह हरण सद्रूप ॥४४८॥

भाव अलेय अछेय से, तहां सरोज न कोय ।
सर विनु होय सरोज क्यौं, यह निश्चै अवलोय ॥४४९॥

भावरसज्ञ से विज्ञसे, भमर न भमैं कदाचि ।
काहै मद गिर ऊपरैं, रहे मूढ जन राचि ॥४५०॥
नहीं मगनता भाव मय, या परवत परि मोर ।
नहि कोइल कलकंठ ह्यां, अमृत धुनि मन चोर ॥४५१॥
या गिर तैं नहि नीसरैं, अमृत सरिता सार ।
ज्ञानामृत धारामइ, आनदी अविकार ॥४५२॥
या गिर तैं आसा नदी, वांछा रूप विसाल ।
निकलै ममता मूरती, मानो परतबि काल ॥४५३॥
इहा भरे दुख सरवरा, विष जल तैं विकराल ।
विचरैं चोर निरंतरा, मन इंद्री असराल ॥४५४॥

ठग न धूर्त भावानि से, इहै ठगनि को थांन ।
पर वाधक अपराध मय, वसैं व्याध वलवान ।।४५५।।

असुर न असुभाचार से, दुराचार के राय ।
यह असुरनि कौ आश्रया, असुराचल कहवाय ।।४५६।।

दैत्य दानवा दुष्ट जन, दगादार सौ काहि ।
परदुख दायक दुरित धर, रहैं वहुत गिर मांहि ।।४५७।।

नहि पिसाच पापानि से, भूत न भर्म समांन ।
विंतर नहि विपरीत से, तिनकौ घर गिर मांन ।।४५८।।

इह भूतनि कौ पर्वता, है दैत्यनि की केलि ।
सदा पिसाचनि कौ पुरा, रहे निसाचर खेलि ।।४५९।।

रागादिक रजनीचरा, परवत के सिरदार ।
मोहासुर असुरेस कौ, जिनकी भुज पर भार ।।४६०।।

मदगिर मैं माया गुफा, करै मूर्छा भाव ।
द्रोह सिखर संसै मइ, तहां धरै मति पांव ।।४६१।।

महा वधिक वाधा करा, पशू धार का क्रूर ।
विचरैं दुर्जन भाव अति, यह गिर सुख तैं दूर ।।४६२।।

यहै पापगिर तापगिर, कवहू न क्रीड़ा जोगि ।
वसैं रौद्र भावादिका, पसु नर असुर अजोगि ।।४६३।।

मंगलकारी मूलि नहि, सवै अमंगल भाव ।
यहै विघन गिर विषम गिर, धारै वहुत विभाव ।।४६४।।

काम अगनि क्रोधागनी, लोभानल विकराल ।
दोष अगनि दुख अर्गनि अति, काल अगनि असराल ।।४६५।।

मोह अगनि सव मैं सरस, जा करि जगत जलाय ।
यनसी अगनि न लोक मैं, भव भव ताप कराय ।।४६६।।

सप्तार्चा एइ सही, विनु समरस न वुझाय ।
सो समरस नहि गिर विषै, सदा अगनि भवकाय ।।४६७।।

यनसी नांहि दवानला, नहिं वडवानल होय।
नहि वज्रानल विश्व मैं, नहिं प्रलयानल कोय ॥४६८॥

मोहादिक मोटी अगनि, सदा प्रज्वलित रूप।
यह गर्व गिर अगनि मय, दाह रूप विड़ रूप ॥४६९॥

भ्रांति समान न वाय को, वाजै जहां असार।
कहिए झंझा जाहि कौं, धारै महा विकार ॥४७०॥

नहि वन उपवन सुखमई, इहां न रस कौ नाम।
इहै मान अज्ञानमय, नहीं ज्ञान कौ काम ॥४७१॥

लंघि मान गिर मुनिवरा, लेय भाव भड़ लार।
पहुँचै निजपुर धीर धी, जहां न एक विकार ॥४७२॥

यहै मान गिर दोष गिर, भव वन मांहि अनादि।
सिवपुर सौं दूरौ सदा, जहां वसैं विरसादि ॥४७३॥

मानाचल की तलहटी, समल सुभाव समस्त।
मानाचल कैं आंसिरौ, होय ज्ञान रवि अस्त ॥४७४॥

वर्णन गर्व पहार कौ, पढैं सुनै जो कोय।
सो मद गिर परि नहि चढै, बढै ज्ञान सुख होय ॥४७५॥

॥ इति गर्व गिर वर्णनं ॥

दोहा

निज गंगा वर्णन—

गुण समुद्र गुणनायको, सतजन सेवैं जाहि।
सो सर्वेसुर सनमति, नमसकार करि ताहि ॥४७६॥
निज सरिता वर्णन करू, जामैं स्वरस प्रवाह।
जाहि लखें सव दुख मटैं, उपजैं अतुल उछाह ॥४७७॥

नित्य निरंतर निर्मला, निज परणति रस धार।
वहै अखंडित धार जो, ता सम नदी न सार ।।४७८।।

केवल कला कलोलनी, सदा सहज रस पूर।
रमैं जा विषै राग हर, निज रसिया भ्रम दूर ।।४७९।।

नहि तरंगनि रंग जसी, उठै तरंग अपार।
नहीं अंत तटिनि तनौं, यह तटिनी अविकार ।।४८०।।

तट अनेकता एकता, ए द्वय अदभुत रूप।
भरी शांत रस नीर तैं, नदी अनूप सिवरूप ।।४८१।।

पंक न पाप समान को, या मैं पंक न लेस।
हरै पाप संताप सहु, सरिता रहित कलेस ।।४८२।।

रंक भाव जे झींगरा, नांहि नदी मैं कोय।
डांसर मांछर विकलपा तिनकौ नाम न होय ।।४८३।।

जड़ता भाव जु जलचरा, ते न कदाचित जानि।
जल देवत जग भावजे, कवहु तहां न मानि ।।४८४।।

मगरमछ नहि मोह सौं, महा पाप कौ धाम।
सो न पाइए ता विषै, रमैं निजातम राम ।।४८५।।

मिथ्या मारग पक्ष धर, तेहि कुपक्षी क्रूर।
तिनतैं रहित महानदी, सर्व दोष तैं दूर ।।४८६।।

है निकलंक निराकुला, अमृत रूप अवाध।
निज गंगा तासौं कहैं, निज रस रसिया साध ।।४८७।।

कर्म कलंक समान को, और न होय कलंक।
कर्म भर्म हरैं नदी, सेवैं साधु निसंक ।।४८८।।

कंकर भाव कठोर जे, कृमि कुभावना रूप।
ते न कदे धारैं नदी, अमृत रूप अनूप ।।४८९।।

लोलुपता मय मीन जे, कूरम करकस भाव।
दुरवादी दादर भया, सरिता मैं न लखाव ।।४९०।।

सरिता तटि तरवर सघन, मगन भावमय होय।
विप्रतरु रूप न भाव खल, कंटिक एक न कोय ॥४६१॥

समता रूप लता महा, जिसी न अमृत वेलि।
सो तटनी तटि लहलहैं, है हंसनि की केलि ॥४६२॥

शुद्ध स्वभावमइ महा, परम हंस मुनिराय।
तजें न तटिनी कौ तटा, भव आताप वुझाय ॥४६३॥

माया वेलि न विषमइ, नहीं कलपना जाल।
नांहि कलिमा कीट अर, संसै रूप सिवाल ॥४६४॥

उठै परम द्रह मांहि तैं, मिले महोदधि मांहि।
इह अमूर्ति गंगा भया, चेतन पुरुष लहांहि ॥४६५॥

नांहि रजोगुण रूप रज, नांहि तमो गुण मैल।
नदी निकट नहि नीच नर, नांहि कोइ वद फैल ॥४६६॥

नदी अनादि अनंत इह, छेह न जाकौ होय।
वहै भाव की भूमि मैं, विरला वूझै कोय ॥४६७॥

सरिता सत्ता रूप यह, अति कल्लोल स्वरूप।
केलि ठौर चिद्रूप की, एक न जहां विरूप ॥४६८॥

महा रतन की खांनि इह, महा सुखनि की खांनि।
गुण मानिक की रासि इह, रस रूपा परवांनि ॥४६९॥

हरै जनम मरणादि भय, हरै पाप संताप।
हरै रोग रागादि सहु, यह तीरथ निहपाप ॥५००॥

याहि गगन गंगा कहैं, निज रस रसिया धीर।
मगन हौहि जे या विषैं, ते न लहैं भव पीर ॥५०१॥

निरमल नभ सम रूप निज, तामैं करैं विहार।
तेहि विहंगम दुर्लभा, सरिता तीर अपार ॥५०२॥

कमल समान कलंक विन, विमल भाव जे होय।
तेइ सरिता मैं रमैं, अदभुत सरिता सोय ॥५०३॥

नांहि प्रपंच स्वरूप ठग, मायाचार न चोर।
लोभ लुटेरा नहिं जहां, नहीं काहू कौ जोर ॥५०४॥

मांन मनोभव मन महा, मै वासी भव मांहि।
ते तटिनी तटि दुरमती, कवहू दौरैं नांहि ॥५०५॥

आसा रूप जु आसुरी, असुभ असुर जे कोय।
वांछा रूप जु वितरी, वितर विषय जु होय ॥५०६॥

रसना रक्ति जु राक्षसी, रक्ष सरोज जु धूत।
भ्रांति रूप जो भूतनी, भर्म स्वरुपी भूत ॥५०७॥

दुरजनता जो दैत्यनी, दैत्य दंभ दोषादि।
पातक अति पिसाचनी, फुनि पिसाच पिसुनादि ॥५०८॥

एनहि निज सरिता नषै, सरिता निज पुर पास।
इनि पापिनि कौं सर्वथा, भव वन मांही वास ॥५०९॥

क्रूर भाव जे केसरी, व्याघ्र विभाव स्वरुप।
व्याधि रुप जे व्याध खल, हिंसक महा विरुप ॥५१०॥

अर अपराधी पारधी, अति निरदय परिणाम।
विषै दर्प सर्पादि फुनि तिनकौ तहां न काम ॥५११॥

फूलि रहे तटनि तहौं, भाव प्रफुल्लित फूल।
भमैं विचक्षण भाव अलि, रसिक भाव के मूल ॥५१२॥

है निज धाम नदी महा, रमैं आतमाराम।
सुधा रूप सरिता यहै, संतनि कौं विश्राम ॥५१३॥

गुण अणंत मणिकी महा, ऊर्मि मालिनी खानि।
परम स्वरूप पयोधि मैं, करै प्रवेस प्रवानि ॥५१४॥

निज अनुभूति अनूपमा, अमर दौलति होय।
निज अनुभूति लख्या विना, सरिता केलि न कोय ॥५१५॥

निज समीप गंगा सदा, वहै अखंडित धार।
करै सनान जु ता विषै, सो पावै भव पार ॥५१६॥

॥ इति निज गंगा निरूपणं ॥

दोहा

आशा वैतरणी विष नदी वर्णन—

आसा नांहि धरै प्रभू, सब वांछा तैं दूर।
वंदौ परमानंद जो, गुण अनंत भरपूर ॥५१७॥

विष कलोलनी विश्व मैं, नहि वांछा सी कोय।
विष नहि विषै विकार सौं, भव भव दुख दे सोय ॥५१८॥

आसा सी न तरंगनी, त्रिषा सी न तरंग।
भवरण न संसै सारिखौ, नहि तिरिवै कौ ढंग ॥५१९॥

भरी चाह विष नीर तैं, नहीं ताप हर एह।
कपट कीच कालिम मइ, भवि जन करै न नेह ॥५२०॥

विकलप संकलपानि से, और नहीं दुख रूप।
सो द्वय तट धारै सदा, आसानंदी विरुप ॥५२१॥

विष वन विषम विभाव से, और नहीं जग मांहि।
सो याकैं तटि दीसइ, जिनमै छाया नांहि ॥५२२॥

विष वेलिन ममता जिसी, सो आसा कै तीर।
फलै सदा दुख विपफला, जहां न अमृत नीर ॥५२३॥

उपजावै जड़ता इहै, राग दोष की खांनि।
क्षार महा दुरगंध है, प्राण हरा परवानि ॥५२४॥
वाजै जहा विरुप अति, भ्रांति रुप जगवाय।
सोइ उडावै जगत कौं, इह भासैं मुनिराय ॥५२५॥

निकसै गिर अभिलाष तै, आसा तटिनि एह।
पइसै सागर सोच मैं, धारैं अति संदेह ॥५२६॥

वहै सदा भव वन विषैं, आसा अति असराल।
रोकै सिवपुर कौ यथा, नदी महा विकराल ॥५२७॥

मोखहू की आसा महा, मोख मोह दे नांहि।
कैसैं भव भोगानि की, आसा दोष हरांहि ॥५२८॥

आसा आकुलता भरी, वांछा विकलप रुप।
त्रिश्ना ताप मई महा, तजैं सदा मुनि भूप ॥५२९॥

तुछ व्रति झींगर जहां, भाव लोलपी मीन,
मींडक वाचाली तहां, व्रथा वकै मति हीन ॥५३०॥

भाव कठोर जु काछिवा, कृमि कुभाव मय मांनि।
कीट कालिमा सौं भरी, आसा नंदी प्रवानि ॥५३१॥

काम क्रोध लोभादि से, और न धीवर नीच।
ते डारैं भ्रम जाल खल, आसा तटनी बीच ॥५३२॥

मृत्यु समान ना लोक मैं, महा मगर नहि कोइ।
विचरै आसा मैं सदा, निगलै सबकौं सोइ ॥५३३॥

तिमर सारिखै तिम नही, तिनकौ तहां निवास।
जड़ सुभाव जलचर घने, करैं आस मैं वास ॥५३४॥

नांहि अविद्या सारिखी, जलदेवी खल भाव।
वसैं आस मैं सासती, धारैं अतुल कुभाव ॥५३५॥

मैं वासी नहि मोह सौ, मारे मारग मोष।
दौरे दुष्ट सदा जहां, हरै प्राण धन कोष ॥५३६॥

नाहि विभावनि से भया, जग मैं वितर कोय।
वसै आस मैं सासती, इह निश्चै अवलोय ॥५३७॥

पर वस्तुनि के ग्राहका, अभिलाषी परिणाम।
तिन से चोर न वंचका, आसा तिनकौ धाम ॥५३८॥

कुपख धारका कुसवदा, जेहि कुपक्षी क्रूर ।
ते सव आसा तीर हैं, दया भाव तैं दूर ।।५३९।।

हिंसक कुटिल कुभाव जे, ते सिंघादिक जीव ।
सदा आस तटिनी तटैं, विचरैं महा कुजीव ।।५४०।।

सर्पन कंदर्पादि से, तिनकौं तहां निवास ।
सदा कुवस्तुनि सौं भरी, यहै तरंगणि आस ।।५४१।।

मल नहिं राग विरोध से, आसा अतिमल पूर ।
विमल भाव हंसा महा, ते तटिनी तैं दूर ।।५४२।।

आसा तटि मुनिवर महा, रहैं न कवहू धीर ।
अति अपराधी पारधी, विचरैं दुर्जन कीर ।।५४३।।

वैतरणी है न या समा, आसा नदी असार ।
उतरैं कोइक साधवा, महाव्रती अणगार ।।५४४।।

अध्यातम विद्या जिसी, और न उत्तम नाव ।
पार उतारैं सो सही, वायु विराग प्रभाव ।।५४५।।

वैठन हारे नाव के, सम्यक दृष्टि धीर ।
तिन से तेरू और नहिं, ते उतरैं भव नीर ।।५४६।।

आसा मैं वूडे घनें, वूडैंगें जु अनंत ।
पार उतारैं मुनिवरा, कोइक संजमवंत ।।५४७।।

गुण नहि दरसन ज्ञान से, तिन करि जकरी नाव ।
रहित परिग्रह भार तैं, उतरैं गरु प्रभाव ।।५४८।।

तिरि आसा मुनिवर महा, त्यागि जगत जंजाल ।
वसैं निराकुल होय कैं, निजपुर मैं ततकाल ।।५४९।।

निजपुर सौ नहि कोइ पुर, जहां काल भय नांहि ।
गुण अनंत निज पुर विषै, सुख अनंत जा मांहि ।।५५०।।

इह आसा कल्लोननी, संकट रूप सिवाल ।
कंटिक विषै कषाय से, वहुत कलपना जाल ।।५५१।।

तहां जाय मति मित्र तू, तजि आसा कौ तीर।
विष सरिता आसा जिसी, और न जांनौ वीर ॥५५२॥

इह आसा वर्णन भया, जे धारैं उर मांहि।
ते बूडै नहि आस मैं, सुख संतोष लहांहि ॥५५३॥

निज दौलति अविनश्वरा, सत्ता रूप अनूप।
विलसैं चेतनपुर विषैं, चिदानंद चिद्रूप ॥५५४॥

॥ इति आसा वैतरणी विष नदी वर्णनं ॥

——

दोहा

भाव सरोवर वर्णन —

सुख सरवर मैं जो रमैं, दमैं दोष दुख देव।
नमैं नाग नरनाथ मुनि, करैं सुरासुर सेव ॥५५५॥

ताहि प्रणमि नमि भारती, भाषित भगवंत भूप।
करि प्रणाम गुरु देव कौं, भाषौं निज सरूप ॥५५६॥

सरवर समरस सौ नही, भरयौ सहज रस नीर।
तरवर सघन स्वभाव से, तहां विराजै धीर ॥५५७॥

अति सोभित सुख सरवरा, हरै दाह दुख दोस।
पालि जु सत्ता सारिखो, अचल अटल निरदोस ॥५५८॥

इह सर सत्ता मांहि हैं, उठै लहरि आनंद।
वस्तु न दूजी जा विषैं, केवल परमानंद ॥५५९॥

कीच न कर्म कलंक सौ, नहि कलंक कौ काम।
या सम अम्रत सर नहीं, यह सरवर निज धाम ॥५६०॥

नीर जु निर्मल भाव सौ, जा करि तृषा बुझाय।
इह सरवर सूकै नहीं, रस भरपूर रहाय ॥५६१॥

भाव अलेप अछेप से, अदभुत अंवुज होय।
सदा प्रफुल्लित सर विषै, तिन से कमलन कोय ॥५६२॥

निज लक्षण मय लक्ष्मी, भाव सरोजनि मांहि।
वसै सदा सुख सासती, जा सम कमला नांहि ॥५६३॥

सुख नहि निर-विकलप समो, आतम अनुभव रूप।
जहां न इंद्री मन वचन, वुधि न वस्तु अनूप ॥५६४॥

केवल अनुभव केलि सी, और न अम्रत वेलि।
परम भाव फल फलि रही, निज सर तटि रस रेलि ॥५६५॥

भमर जु भाव रसज्ञ से, अति रस रसिया जेहि।
भाव अलेप सरोज परि, केलि करैं निति तेहि ॥५६६॥

हंस न उजल भाव से, स्वपर विवेकी वीर।
यह हंसनि को सरवरा, हिंसा हर गंभीर ॥५६७॥

परमहंस मुनिराज जे, अंस न धरैं कलंक।
ते यामैं क्रीड़ा करै, निस वासर निहसंक ॥५६८॥

सार भाव से सारिसा, तजैं न इह सर कोइ।
चकवा चेतन भाव से, कवहु न विरही होय ॥५६९॥

जहां निसा नहि भ्रांति मय, चकवी कौ न वियोग।
नहि चकवी निज शक्ति सी, रहै सदा संजोग ॥५७०॥

ज्ञान भान भासिजु रह्यौ, जाकौ अस्त न होय।
यह अदभुत सरवर भया, वरणि सकै नहि कोय ॥५७१॥

गुण रतननि की रासि यहै, रहित रजोगुण रेत।
वर्जित तामस तापसहु, संतनि कौं सुख देत ॥५७२॥

इन्द्री सुख दुख तै सदा, यह सर दूर अनादि।
भाव अतिंद्री अति धरै, जहां नही रागादि ॥५७३॥

निज पक्षनि कौ धाम इह, सर्व कुपक्ष वितीत।
है पवित्र पीयूष सर, रमैं पुरिष जगजीत ॥५७४॥

रहित शुभाशुभ शुद्ध सर, भाव प्रवुद्ध स्वरूप।
महा मोह मगरन जहां, तहां न एक विरूप ।।५७५।।

काइ काम किरोध मय, सर कौ फरसि सकै न।
सर्व विभाव विकारमय, वितर एक रहै न ।।५७६।।

जाचक भाव समान नहि, नून भाव जग माहि।
तेइ झींगर जानियै, तिनकौ नाम हु नाहि ।।५७७।।

दादर व्रथा विवाद जे, मछी वकल स्वभाव।
कदरज भाव जु काछिवा, सर मैं नांहि लखाव ।।५७८।।

कीट कलपना जाल जे, डासर दुष्ट कुभाव।
मांछर मछर भाव जे, तिनकौं तहां अभाव ।।५७९।।

नानाविध वर्णादिका, जड़ता भाव अनेक।
ते जलचर नहि ता विषै, भाव असुद्ध न एक ।।५८०।।

विषै विकार विनोदमय, विष व्रक्षन सर तीर।
विष वेलिन विभ्रांतता, भाव विषमता वीर ।।५८१।।

मायाजाल न है जहां, ममता मोह सुरूप।
पाप वासना रहित सर, आप स्वरूप अरूप ।।५८२।।

जहां न भय कौ नाम है, अभै सरोवर एह।
अभै नगर कै निकट ही, परमानन्द अछेह ।।५८३।।

दुराचार दुरभाव जे, दुरविकलप दुखदाय।
दुरित रूप ते दानवा, तहां धरैं नहि पाय ।।५८४।।

असु प्राणनि कौ नाम है, हरै प्राण पर जेहि।
असुर असुचि अति हिंसका, भाव न सर मैं तेहि ।।५८५।।

विषै रागरत राखि सा, रसनां लंपट भाव।
रमणीरत रजनीचरा, तिनकौ तहां अभाव ।।५८६।।

यंद्री भोगमयी भवा, भाव भूत भ्रम रूप।
ते न कदे सरवर लखैं, जहां छाह नहि धूप ।।५८७।।

आसा नाम जु आसुरी, सर कौं नाम न लेय।
पर निंदा जु पिसाचनी, पाव न तहां धरेय ॥५८८॥

अमल न कोइ मिथ्यात सौं, जहां न मिथ्या भाव।
जोग सदा आनंद कौं, सम्यकज्ञान प्रभाव ॥५८९॥

वंचक नांहि प्रपंच से, चोर न चित से कोय।
ठग नहि छल पाखंड से, सब तैं वर्जित सोय ॥५९०॥

नाहि विपरजै भाव से, वटपारे विपरीत।
मारैं मारग मोक्ष कौ, धारैं सदा अनीत ॥५९१॥

तिनकौ नांही वसाय हैं, राजै चेतनराय।
लूटि सकै नहि लोक कौं, लोभ लुटेरा आय ॥५९२॥
दौरा दौरि सकै नहीं, दंभ दोष दुख आदि।
अणाचार अपराध मय, जहां न जल कागादि ॥५९३॥

भाव विराधक कुटिल अति, आरति रौद्र कुध्यान।
वुगतेही गनि ठग महा, जहां नहीं छलवान ॥५९४॥

अविधि अजोगि अरीति नहि, निज तडाग तटि कोइ।
शुद्ध वुद्ध आनंदमय, सिद्धनि कौ सर सोय ॥५९५॥

त्रिविध तापहर पापहर, हरण सकल संताप।
इह निज सर सुखधाम है, रमैं आप निहपाप ॥५९६॥

परम मनोहर सर सदा, रतन सरोवर एह।
राज सरोवर है महा, क्रीड़ा जोगि अछेह ॥५९७॥
स्वरस स्वसंवेदन समो, नहीं और रस स्वाद।
अमर अनूपम सर इहै, जहां न हर्ष विषाद ॥५९८॥
मरैं न काहू काल ही, निज सरवर रस पीव।
रहैं मगन निज भाव मैं, सदा सरवदा जीव ॥५९९॥
भाव नगर कै निकट ही, भाव सरोवर होय।
रम्य महा रमणीक अति, सुंदर सरवर सोय ॥६००॥

शुद्ध सरोज निवासिनी, निज सत्ता अनुभूति ।
करै केलि सुखसर विषै, केवलज्ञान विभूति ॥६०१॥

इह समरस सर वर्णना, पढ़ै सुनै जो कोय ।
सो अविनासी पद लहै, निज दौलति पति होय ॥६०२॥

॥ इति श्री भाव सरोवर वर्णनं ॥

दोहा

विभाव सर वर्णन—

चेतन भावमइ सदा, चिदानंद चिद्रूप ।
सर्व भाव वितीत जो, ज्ञानानंद स्वरूप ॥६०३॥

सीतल विमल अनंत गति, धर्म धुरंधर देव ।
शांतभाव सब कर्महर, करैं सुरासुर सेव ॥६०४॥

जाकी भगति प्रभाव सौं, उपजै आतम बोध ।
लखै आप मैं आपकौं, करै करम कौ रोध॥६०५॥

काढ़ै विकलप सर थकी, निर विकलप रस पाय ।
टारै मनमथ मोह मल, सौ त्रिभुवन कौ राय ॥६०६॥

ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि सार सिद्धांत ।
विकलप सर वर्णन करूं, तजैं जाहि मुनि शांत ॥६०७॥

विषसर विकलप सर समो, नहिं संसार मझार ।
महाविषम सर मलिन सर, जामैं रंच न सार ॥६०८॥

अति संकल पर विकलपा, तेइ विष जल वीर ।
भरचौ सदा विष नीर तैं, विषतरु ताकै तीर ॥६०९॥

विषतरु विषै कषाय से, और न जानौं कोइ ।
सर्व विभाव विकार मय, सदा मरण दे सोइ ॥६१०॥

पाप पालितैं वंधियौ, इहै ताप सर आप ।
महा विकट सर भर्म सर, देय सदा संताप ।।६११।।

नहीं दाहहर दोसहर, नहीं रम्य सर एह ।
हंसन शुद्ध स्वभाव से, करैं न यासौं नेह ।।६१२।।

कीचन काम कलंक सौ, यहै पंक तैं पूर ।
अम्रत जल निज अनुभवा, सदा या थकी दूर ।।६१३।।

अम्रत वृक्ष न वोध से, फलैं विमल फल भाव ।
ते विकलप सर तीर नहिं, यह निश्चै ठहराव ।।६१४।।

निज प्रवृत्ति भव निरव्रती, ता सम सुधा न वेलि ।
सो विष सरवर तटि नही, जामैं रस की रेलि ।।६१५।।

अशुभ कर्म से वृक्ष विष, विषै वुद्धि विष वेलि ।
तिनकी विकलप सर निकट, दीखै रेलि जु पेलि ।।६१६।।

जल कागन जड़ भाव से, तिनकौ तहां निवास ।
वुग नहि पाखंडीनि से, तिनकौ सदा विलास ।।६१७।।

वुद्धि वियोगी वहिरमुख, वहिरातम भव भाव ।
तेइ चकवा ता विषै, विरह रूप दरसाव ।।६१८।।

निसि न अविद्या सारखी, तिमर रूप दरसाय ।
तामैं चकवी चेतना, कवहु लखी नहि जाय ।।६१९।।

जगत वासना सारिखी, और न कोइ कुवास ।
फैलि रही विषसर विषै, रोग सोग परकास ।।६२०।।

मल नहि राग विरोध से, इह मलसर छलपूर ।
खलसर अखिल विभाव से, सुंदरता सौं दूर ।।६२१।।

मिथ्या मारग पक्षधर, हिंसक दुष्ट सुभाव ।
तेहि कुपक्षी कुसवदा, तिनकौ सदा प्रभाव ।।६२२।।

मीन नदी न स्वभाव से, अति मलीन मतिहीन ।
ते विचरैं विषसर विषै, अति चंचल अघलीन ।।६२३।।

अथा वकैं वितथा लपैं, लोभी लंपट भाव ।
तिन से भेक न और को, धरैं विवेक अभाव ।।६२४।।

दादर डेड़र भेक ए, हैं मींडक के नाम ।
यह मींडक कौ सरवरा, काल नाग कौ धाम ।।६२५।।

मुह मीठी बातैं करैं, पीछैं अति ही कठोर ।
तेहि काछिवा सर विषै, जहां असुभ कौ जोर ।।६२६।।

नांन्हौ मन नांन्ही दसा, कृपण सदा परिणाम ।
तेइ झींगर जानियें, मलसर तिन कौ धाम ।।६२७।।

धीवर कुकरम भाव जे, चालैं अधरम चाल ।
ते विचरैं विषसर नखैं, धारैं विकलप जाल ।।६२८।।

मगर न होइ मही विषै, महा मोह सौ कोइ ।
सुर नारक नर तिरन कौं, निगलै पापी सोइ ।।६२९।।

वसैं सदा विषसर विषै, रूप महा विकराल ।
अवरहु जलचर भावखल, जामैं अति असराल ।।६३०।।

सोर कुपक्षनि कौ सदा, सारिस जुगल न कोय ।
सारिस दरसन ज्ञान से, और न जग मैं होय ।६३१।।
दुखदाइ दोषीक जे, दया रहित परिणाम ।
दैत्य दांनवा ते महा, खलसर तिनकौं धाम ।।६३२।।

दुष्ट व्रती दुरजन दसा, दुरगति दाइ रीति ।
तेहि दैत्यनी वहु वसै, मलसर मैं विपरीति ।।६३३।।
असुचि असुभ अव्रतमयी, अरि समान अघ भाव ।
असुर असंजम रूप जे, तिनकौं तहां प्रभाव ।।६३४।।
अकुलत अविवेकता, आसा आरति रूप ।
वसैं अविद्या आसुरी, विषसर विषै विरूप ।।६३५।।
रमैं राग धरि भोग मैं, जग अनुरागी भाव ।
रस अनरस ते राखिसा, तिनकौ तहां वसाव ।।६३६।।

रति अरति अति राषिसी, रसना लोलप रीति।
सर्व कुरीति लीयां वसै, विष सर मैं विपरीति ॥६३७॥

भय विभ्रममय भाव जे, तेहि भूत भ्रमजाल।
यह भूतिन को सरवरा, रहैं भूत विकराल ॥६३८॥

भोग भावना भूतनी, भ्रांति स्वरूप विरूप।
भ्रमैं सदा भ्रमसर विषैं, भयकारी विड़रूप ॥६३९॥

परदारा परधन हरा, परद्रोही परिणाम।
ते पिसाच पापी करै, विषसर मैं विश्राम ॥६४०॥

पराधीनता पापिनी, मिथ्या परणति रुप।
पापव्रति पिसाचिनी, भवजल मैं भय रूप ॥६४१॥

सर्व विभाव विकार जे, विषै विनोद असेस।
ते वितर विषसर विषै, वैरी वसैं विसेस ॥६४२॥

व्रति अव्रत्तनिकी सदा, निरव्रति धरै न सोइ।
वै वितरी वलवती, मल सरवर मै होइ ॥६४३

दुराराध्य दुरनीति धर, दुरजय दुसह सुभाव।
ते दौरा दौरैं सदा, अति दोषादि कुभाव ॥६४४॥

अति प्रपंचमय वंचका, माया मदन मनादि।
पूति सरोवर तीर हो, वचैं विश्व अनादि ॥६४५॥

भाव चलाचल चपल गति, त्रिश्ना रूप विरूप।
ते तसकर कुतड़ाग तहि, चोरी करैं कुरूप ॥६४६॥

लोभादिक लंपट महा, तेहि लुटेरा वीर।
लूटैं सर्वहि लोक कौं, कोइक उवरैं धीर ॥६४७॥

वटपारे कुविसन महा, जूवा मद मांसादि।
वेस्या परधन हरणता, परदारा हिंसादि ॥६४८॥

रोकैं पथ निरवान कौं, रहैं पापसर पालि।
तिन करि जग के जीव ए, सकै नहीं संभालि ॥६४९॥

ठग नहि जग के भाव से, ठगैं ज्ञान सौ माल ।
वसैं सदा छलसर निकट, करैं वहुत वेहाल ॥६५०॥

अति ठगनी भव भावना, ठगै सुरासुर सोय ।
कोइक उवरैं साधवा, संजम जिनपैं होय ॥६५१॥

अभख भक्षका हिंसका, करैं कुसील विहार ।
तिन से अपराधी नही, ते सर तीर अपार ॥६५२॥

यह सरवर नहि केलिकौ, कवहू रमन न जोगि ।
तहा जाय मतिमत्र तू, सवही बात अजोगि ॥६५३॥

है पिसाच सर पिसुन सर, विकट सरोवर वीर ।
कीट सरोवर क्षार सर, करै महादुख पीर ॥६५४॥

कीट न कलुष स्वभाव से, यहै कलुषता पूर ।
रहैं पारधी पातकी, जे शुभ तैं अति दूर ॥६५५॥

तामस सौ नहि तिमर है, राजस सम रज नांहि ।
यह राजस तामस मइ, सव दुख याके मांहि ॥६५६॥

कमल न भाव अलेप से, तिनकौ सदा अभाव ।
कंटिक नांहि कषाय से, तिनकौ महा प्रभाव ॥६५७॥

कंकर क्षुद्र स्वभाव जे, दीखै तेहि विसेस ।
नही रतनन की वात ह्यां, लखिए असुभ असेस ॥६५८॥

भमर न भावर संज्ञ से, तिनकौ नाम हु नांहि ।
दुष्ट भाव डांसर घने, रंच न सुख सर मांहि ॥६५९॥

मछर भावहि मांछरा, माखी मलिन सुभाव ।
कृमि कुभाव रूपी महा, सर मैं बहुत लखाव ॥६६०॥

भव वन मैं विकराल इह, भ्रमसर भयकर होय ।
है विभाव-सर विषम-सर, विषसर इसौ न कोय ॥६६१॥

शुद्ध निजातम भाव तैं, भिन्न जेहि भव भाव ।
राग दोष मोहादि रिपु, ते कहिये जु विभाव ॥६६२॥

सदा विभाव तड़ाग तटि, थावर जंगम जीव।
लूटे जांहि अनेक जन, कूटे जांहि कुजीव ॥६६३॥

कोइक मुनिवर उवरै, जिनवर कौ जन होय।
सर विभाव सो विषमसर, और न जग मैं जोय ॥६६४॥

इह विकलप सर वर्णना, उर धारै जो वीर।
सो विकलप सर लंघि कै, निरविकलप है वीर ॥६६५॥

निज स्वभाव सत्ता महा, सो निज दौलत्ति होय।
और न संपति सासती, यह निश्चै अवलोय ॥६६६॥

॥ इति विभाव सर वर्णन ॥

दोहा

अध्यातम वापिका वर्णन—

देव दयानिधि देव जो, दिव्य दृष्टि भगवान।
दरसावै निजसंपदा, सो सरवज्ञ सुजान ॥६६७॥

वंदनीक सव लोक गुर, सकल लोक कौ ईस।
रमैं निजातम भाव मैं, नमूं ताहि नमि सीस ॥६६८॥

नही ब्रह्म विद्या जिसी, वापी अमृत रूप।
वापी मैं पापी नहीं, मोह पिसाच विरूप ॥६६९॥

अध्यातम सौ लोक मैं, अमृत और न कोय।
अध्यातम ये वापिका, त्रिविध तापहर होय ॥६७०॥

नहीं सिवाल संसै जहां, पाप पंक नहि लेस।
नहि व्याकुलता भाव कृमि, मेटै सकल कलेस ॥६७१॥

भरी शांत रस नीर तैं, परमानंद स्वरूप।
हरै दाह दुख दोष सव, रमै तहां चिद्रूप ॥६७२॥

नहि विभाव व्यंतर जहां, भर्म भूत नहि होय ।
रागादिक राक्षस महा, तिनकौ नाम न जोय ।।६७३।।

नहीं अविद्या वासना, सम कुवासना कोय ।
सो न जा विषे है सही, सम रस निर्मल तोय ।।६७४।।

दुख कौ लेस न है जहां, निज सुख पूरण सोइ ।
नाहि कलपना जालमय, काई कलमख कोइ ।।६७५।।

उज्जल निरमल भाव से, परम हंस नहि और ।
केलि करैं तामैं सदा, जा सम और न ठौर ।।६७६।।

जहां सिवाण प्रमाण से, अप्रमाण अति रम्य ।
अचल अखंड अनूपमा, नहिं अजाण को गम्य ।।६७७।।

जोर न इंद्री चोर कौ, सोर न कहूं सुनाव ।
ठगनि सकैं परपंच ठग, शुद्ध राव परभाव ।।६७८।।

भागैं वंचक तसकरा, वापी कौ सुनि नाम ।
रतन वापिका इह सही, गुण रतननि को धाम ।।६७९।।

वटपारे न विकार से, काम लोभ से वीर ।
तिनही न सूझै वापिका, रमैं महामुनि धीर ।।६८०।।

फूलि रहे भावा कमल, अमल अलेप स्वभाव ।
रमण भाव रूपी भमर, भमैं सदा निरदाव ।।६८१।।
ताकै तटि तरवर सुधा, भाव अछेदि अभेदि ।
सीतल सघन सुवास अति, डारैं दाह उछेदि ।।६८२।।
समता रूप सुधा लता, धरै विमलता जोय ।
फूलि रही अति फलि रही, सदा लहलहै सोय ।।६८३।।
परम भाव अम्रत फला, भाव प्रफुल्लित फूल ।
पल्लव भाव प्रकासमय, पत्र तापहर मूल ।।६८४।।
वेलि वृक्ष पीयूषमय, वापी तीर विसाल ।
माया वेलि न विषमइ, एकन विकलप जाल ।।६८५।।

नांहि कुपक्षी कुसवदा, विष वृक्षन विषयादि।
नहि कंटिक क्रोधादिका, नहि निसिचर मदनादि ॥६८६॥

हैं अंतता एकता, ए द्वय तट रमणीक।
भोग भुजंग नहीं जहां, आतम सुख तहकीक ॥६८७॥

मलिन भाव मछली नहीं, भेक न भ्रांति स्वरूप।
जहां कर्म कूरम नही, वस्तु न एक विरूप ॥६८८॥

कालिम कीट नहीं जहां, नहीं काल कौ जोर।
अभै नगर कै निकट है, जहां न कवहू सोर ॥६८९॥

नहि दुर्जनता भाव मय, डांसर मांछर मूर।
क्षुद्र भाव झींगर नहीं, वापी सव दुख दूर ॥६९०॥

दंभ भाव वुग नहि जहां, नांहि वियोगी कोक।
सारिस दरसन ज्ञान जुग, केलि करैं विनु सोक ॥६९१॥

कागन भाव कलंक मय, राग रोग नहि होय।
शुद्ध स्वभाव मइ इहै, नांहि शुभाशुभ दोय ॥६९२॥

इह अध्यातम वावरी, तामैं करै सनान।
सो भव दाह निवारिकैं, पावै पद निरवान ॥६९३॥

॥ इति संपूर्ण ॥

दोहा

विषय वापी वर्णन—

वसै वुद्धि कै पार जो, हरै कुवुद्धि कुभाव।
वीतराग सरवज्ञ जो, तीन भुवन कौ राव ॥६९४॥

प्रणमूं ताहि प्रमोद करि, प्रणमैं जाहि सुरेस।
नमैं नाग नर सुर असुर, विद्याधर राजेस ॥६९५॥

वुधि वावरी जीव की, विषै कषाय स्वरूप ।
तिसी न विष की वावरी, और महा दुख रूप ।।६९६।।

विष नहि विषै विकार सौं, भव भव मरण प्रदाय ।
इह विष वापी पाम है, पापी मोह रहाय ।६९७।।

विषै वासना सारिखी, नहि कुवासना जोय ।
अति कुवासना सौं भरी, धर्म नासना होय । ६९८।।

कर्दम कर्म कलंक सौ, कहैं न कोविद कोय ।
इह कर्दम की वापिका, जहां न अम्रत तोय ।।६९९।।

मल नहि मिथ्या भाव सौ, ता करि पूरण सोय ।
अहंकार ममकार के, धरै विकट तट दोय ।।७००।।

भरी जाल जंवाल सौ, मरी समान विरूप ।
खरी वुरी दोषाकरी, विष वापी विड़रूप ।।७०१।।

जहां सिवाण अपाण से, विषम महा दुखदाय ।
क्रमि कुभाव अति कुलमलैं, जाहि लखैं तरसाय ।।७०२।।

नहि सिवाल संदेह सौं, भाषैं संजम धार ।
भरा सदा संदेह सौं, सुख नहिं जहां लगार ।।७०३।।

वाचाली वादी विकल, दुरवुधी दुरभाव ।
ते दादर कुसवद करैं, धरैं कुकर्म कुभाव ।।७०४।।

रसना लंपट चपल गति, हीन दीन अघलीन ।
मीन तेहि विचरै तहां, काल कीर अघलीन ।।७०५।।

कठिन कठोर सुभाव ही, कहे काछिवा जीव ।
कीट कलंक भरी सदा, जामैं वहुत कुजीव ।।७०६।।

नून भाव अति रंकता, तेहि झींगरा जानि ।
मांछर मछर भाव वहु, डासर खल ता मानि ।।७०७।।

शांत भाव सौ विमल जल, और न जगत मझार ।
सो वापी मै नांहि कहूं, तापहरण रसधार ।।७०८।।

विष वेलिन ममता समा, वापी तीर विसेस।
सुधा वेलि समता मयी, ताकौ तहां न लेस ॥७०६॥

सघन भाव निज मगनता, तेहि सुधा तरु वीर।
ते वापी कै तीर नहि, अघ विषतरु अति तीर ॥७१०॥

दोष दैत्य कौ धाम है, रहैं भूत भ्रमरूप।
छलैं छलावा छलमइ, ठगै कामरति भूप ॥७११॥

मोह निसाचर नृप जहां, पापी वापी वीचि।
रागादिक रजनीचरा, अधिकारी अति नीच ॥७१२॥

पाप पिसाच रहै जहां, जौ धारै परद्रोह।
चारैं चोर चहूं दिसा, राजै राजा मोह ॥७१३॥

धन तृष्णा परिणाम से, तसकर और न कोय।
तिन ही कौ यह थांन है, कहां भलाइ होय ॥७१४॥

इह क्रीड़ा वापी नही, नहिं मनोज्ञता मूरि।
करैं वास वंचक इहां, सदा अमंगल भूरि ॥७१५॥

वंचक और न विस्व मैं, दंभ प्रपंच समान।
पाखंडादि अनेक खल, छल वल भरे गुमान ॥७१६॥

ठगे जांहि इन्द्रादिका, ठगे जांहि चक्रेस।
ठगे जांहि नागिंद्र सुर, ठगे जांहि असुरेस ॥७१७॥

लोभ लुटेरा लूटइ, धर्मरूप धनसार।
क्रोधादिक कंटिक घनें, वापी वहुत असार ॥७१८॥

विषै वासना वितरी, धरै विकार अनेक।
रति ठगनी परपंच करि, खोसै रतन विवेक ॥७१९॥

वापी भववन मैं इहै, पापी अंतक सांप।
वसै सदा सुर नर असुर, पसु निकरै संताप ॥७२०॥

इहै गलकटा वावरी, जानै सव संसार।
रहै निरदयी दुर्जना, क्रूर कुभाव अपार ॥७२१॥

हिंसक पिसुन पसूघना, मिथ्याती मतिहीन ।
परधन परदारा हरा, लोभी लंपट दीन ॥७२२॥

तेइ करैं प्रवेस ह्यां, रहै सनमती दूर ।
कवहु करै मति क्रीड़ तू, यहै कलपना पूर ॥७२३॥

निर्मल भावन हंस ह्यां, वुग ठग भाव अनेक ।
दरसन ज्ञान स्वभाव से, सारिस जुगल न एक ॥७२४॥

रमैं विषै अनुराग से, काग कालिमा रूप ।
विकल विवेक वितीत खल, पापी पाप स्वरूप ॥७२५॥

पापाचारी पारधी, धीवर अघ परिणाम ।
मारैं तिर नर सुर असुर, थिर चर आठौं जाम ॥७२६॥

निज पुर सौं दूरी इहै, वापी अति विकराल ।
वहु वूडै वहु मरि पचैं, दुख देखैं असराल ॥७२७॥

त्यागि कषाय कलंक सव, तजि विषयनि सौ प्रींति ।
गहौ पंथ निजपुर तनौं, दहौं दोष दुख रीति ॥७२८॥

जीति काल कंटिक भया, मारि मोह रिपु राव ।
रहौ मोक्षपुर मै सदा, प्रगट करौ निज भाव ॥७२९॥

मिथ्यामति अति मूढ़ता, रूप वापिका तीर ।
कदे रमै न विचक्षरगा, वमैं विषै रस वीर ॥७३०॥

लहिं निज संपति सासती, ज्ञानानंद स्वरूप ।
करैं केलि निजपुर विषैं, तजि भव वन भ्रम रूप ॥७३१॥

अध्यातम अम्रत भरी, वापी निरव्रति जोय ।
करैं सनान तहा सुधी, लहैं विमलता सोय ॥७३२॥

इहै मूढ़ता वावरी, विषै प्रव्रत्ति स्वरूप ।
नहिं सनान कौं जोग्य हैं, मलिन विकट विष रूप ॥७३३॥

विष वापी वर्णन यहै, पढ़ै सुनै जो कोइ।
सो न परै वापी विषै, घट घट व्यापी होय ॥७३४॥

॥ इति विषय वापी वर्णनं ॥

दोहा

रस कूप वर्णन—

ज्ञान कहै सव भाव कौ, सव सुख दायक देव।
नायक है रस कूप कौ, करैं सुरासुर सेव ॥७३५॥

रस न कूप न निज रूप सौं, परम सुधारस पूर।
है अरूप अनि रूप जो, सकल दोष तैं दूर ॥७३६॥

नाहिं सुधारस ज्ञान सौ, अमरण करण अनूप।
हरै भ्रांति अति शांतिकर, ताप हरण गुण भूप ॥७३७॥

अवरं नाम रस कूप कौ, रतन कूपहू होय।
रोर अवोध मिथ्यात हर, राग रोग सुर सोइ ॥७३८॥

अदभुत गुण मणि सौ भर्यौ, इह मणि कूप महंत।
रमवा जोगि निरंतरा, रमैं मुनीसुर संत ॥७३९॥

अमृत कूपनि कूप इह, निज भावन की केलि।
करै शुद्ध भवि जीव कौं, देय दोष कौ ठेलि ॥७४०॥

याके तटि अति सघन वन, चिदघन आनंद रूप।
इहै कूप निजपुर निकट, जहां राव चिद्रूप ॥७४१॥

कपट कीच नहि या विषै, रहै न मोह पिसाच।
इंद्री भूत न पाइए, मांनि वारता सांच ॥७४२॥

जहां नांहि चिंतामयी, कृमि कीटादिक कोइ।
मीन दीनता भावमय, तिनकौ नाम न जोय ॥७४३॥

नहि अविवेक स्वभाव मय, मींडक चपल विरूप ।
नहीं विषै की वासना, अति कुवासना रूप ।।७४४।।

पर निंदक परपूठि जे, निष्ठुर दुष्ट स्वभाव ।
तेहि काछवा जानिये, तिनको नांहि लखाव ।।७४५।।

मिथ्या मारग पक्ष धर, तेहि कुपक्षी कूर ।
ते न करैं संचार ह्यां, हिंसक भाव न मूर ।।७४६।।

दुर्जन भाव न दोष मय, दुख को नाम हु नांहि ।
सुख की वात अपार हैं, रमण कूप कै मांहि ।।७४७।।

नही सर्प कंदर्प ह्यां, चोरन चाहि स्वभाव ।
छल परपंच न वंचका, विपरीती न विभाव ।।७४८।।

दृष्टि न पसरै देव्य की, दैत्य न काल समान ।
एक न कंटिक पाइए, क्रोध न लोभ न मान ।।७४९।।

रमैं आतमा राम निज, सत्ता रमा समेत ।
केलि कूप है इह महा, संतनि कौं सुख देत ।।७५०।।

लखि दौलति अविनस्वरा, परम भाव फल वेलि ।
निज दोलति लखियां विना, नही होय रस केलि ।।७५१।।

इह वर्णन रस कूप कौ, पढ़ै सुनै जो कोय ।
सो निकसै भव कूप तैं, निज रस रसिया होय ।।७५२।।

।। इति रस कूप वर्णनं ।।

दोहा

भव कूप वर्णन —

प्रभु निकासि भव कूप तैं, पहुंचावै निज थान ।
प्रणमै जाहि पुरंदरा, चक्रेसुर निधिवांन ।।७५३।।

विष कूपन भवकूप सौ, यह दुख कूप विरूप।
अंध कूप यासौं कहैं, महा मुनिनि के भूप ॥७५४॥

जिसी अविद्या वासना, तिसी कुवास न कोय।
भर्यौ महा दुरगंध सौं, विषम कूप है सोय ॥७५५॥

विष नहि विषैं विनोद सौं, मरण अनंत प्रदाय।
यह विष पूरण दुखमइ, जाहि लखैं सुधि जाय ॥७५६॥

नहिं पियूष संसार मै, अनुभव सौं अविकार।
इहां न अमृत वारता, विकलप जाल अपार ॥७५७॥

कीचन कोइ कुभाव सौ, भर्यौ कीच तैं कूप।
लोभ पिसाच रहैं जहां, मोहासुर है भूप ॥७५८॥

विभ्रम भूत घनै तहां, दोष दैत्य कौ थान।
रागादिक रजनीचरा, विचरै पाप निधान ॥७५९॥

नागन पिसुन सुभाव से, तिनकौं तहां निवास।
चोरन चित अभिलाष से, हरैं धरम धनरास ॥७६०॥

ठग नहि छल परपंच से, तिन ही की ह्यां केलि।
फूलि रही अति विषमइ, विषै वासना वेलि ॥७६१॥

याके तटि विष वृक्ष वहु, विषै विकार विरूप।
छाय रहे कंटिक मइ, माया जाल कुरूप ॥७६२॥

ठगे जांहि सुर असुर नर, कोइक उवैर धीर।
ज्ञान विराग प्रसाद तैं, जा ढिग संजम वीर ॥७६३॥

पापी जन पाखंड से, और दूसरे नांहि।
ते लूटैं परगट इहां, रंच न संक धरांहि ॥७६४॥

वटपारे क्रोधादि से, मारैं सुख पुर वाट।
ते डारै दुख कूप मैं, तिनकै क्रूर कुठाठ ॥७६५॥

नहि विसास घाती अवर, मदन सारिखौ कोय।
रंचक भोग दिखाय खल, दे अनंत दुख सोय ॥७६६॥

नहिं सिवाल संसार मैं, संसय सोच समान।
भरयौ आल जंजाल सौ, मलिन कूप मलवांन ॥७६७॥

चितवृति चंचल अति मलिन, कृमि समूह है सोय।
भर पूरित कृमि तैं सदा, तिमर कूप यह होय ॥७६८॥

नहि ड़ेड़र वाचाल से, उछलत फिरैं कुभाव।
मीन जीभ लंपट जिसे, और न चपल सुभाव ॥७६९॥

नहि कठोरता भाव से, कोइ काछिवा और।
अंधकूप भवकूप इह, सदा तिनौं की ठौर ॥७७०॥

नाहिं सुधातरु या निकट, केवल वोध स्वरूप।
नांहि ज्ञान अनूभूति है, अम्रत वेलि अनूप ॥७७१॥

मायाचारी मन मलिन, तेहिं काग ठग जांनि।
तिनही की क्रीड़ा इहां, नाहिं सुपक्षी मांनि ॥७७२॥

नही कोइ सुचि वात ह्यां, सकल असुचि की वात।
काल समान न जालधर, करै जीव को घात ॥७७३॥

परे जीव भवकूप मैं, को काढन समरत्थ।
काढै श्री भगवंत ही, दयावंत वड़ हत्थ ॥७७४॥

ढाराान नय परमाण सौ, नहि निश्चै सी नेज।
निकसैं उद्यमवंत ही, जिनकै रंच न जेज ॥७७५॥

अंधकूप विड़रूप यह, है पाताल जु कूप।
निकसि तहां तैं तुरत ही, होय अभैपुर भूप ॥७७६॥

फेरि न आवै भव विषै, निज मैं करै निवास।
लोक सिखर राजै सदा धारै अतुल विलास ॥७७७॥

निज दौलति निज गुणमइ, सत्ता रूप विभूति।
सो विलसै अति सासती, अविनासी अनुभूति ॥७७८॥

अंध कूप वर्णन यहै, पढै सुनै जो कोय।
सो नर है भवकूप मैं, निज निधि नायक होय ।।७७९।।

।। इति भव कूप वर्णनं ।।

दोहा

अन्तरातमा ज्ञान राज वर्णन—

अंतर गति ज्ञाता गुरू, अंतरजामी देव।
अंतर आतमा ध्यावही, करै सुरासुर सेव ।।७८०।।

ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि महा मुनिराय।
नमि परमागम गुण कहूं, ज्ञानिनि के सुखदाय ।।७८१।।

भ्रमत भ्रमत भव वन विषै, कोइक चेतन राव।
चेतै स्वतह स्वभाव ही, कै श्री गुर परभाव ।।७८२।।

तजि अज्ञान अनादि कौ, ग्रंथि अविद्या भेदि।
धरि सरधा सरवज्ञ की, संसै भर्म उछेदि ।।७८३।।

छांडि भूमि मिथ्यात की, क्रोध लोभ छलमान।
मारि चौकरी प्रथम ही, ले सम्यक गुनथान ।।७८४।।

तथा देसव्रत देस ले, दोय चौकरी डारि।
अप्रमत्त थानक तथा, तीन चौकरी मारि ।।७८५।।

सम्यकपुर कौ आदि ले, क्षीणकषाय प्रजंत।
अंतरातमा राजई, राज करै मतिवंत ।।७८६।।

ता सम भूपन और को, समझवार रिझवार।
सो निकसै भव कूप तैं, पावै पद अविकार ।।७८७।।

पटरानी परवीन है, नाम सुबुद्धि अनूप।
गढ़ सम्यक अति निश्चला, मंत्री ज्ञान स्वरूप ।।७८८।।

गुर विवेक प्रोहित धरम, दरसन चारित्त दोय।
सव उमरावनि कै सिरै, अति कोड़ीभड होय ॥७८९॥

निज स्वभाव उमराव वहु, निज निधि है भंडार।
है वीरज सेनापती, भंडारी स्वविचार ॥७९०॥

संजम तप आदिक सुभट, गुणसेना अति साथ।
द्वारपाल संवर महा, ध्यान खड़ग नृप हाथ ॥७९१॥

व्रत वगतर सील सर, धीरज धनुष महीप।
धारै मनमथ मार नैं, सूरवीर अवनीप ॥७९२॥

अणाचार हर नीतिधर, शुभाचार कुटवाल।
मूलोत्तर गुण है प्रजा, सावधान भूपाल ॥७९३॥

पावन पुण्य स्वभाव से, पासवान परवीन।
टारैं पाप सुभाव कौं, सदा स्वामि आधीन ॥७९४॥

मित्र महा वैराग से, हितकारी नृप पासि।
मदति भगति भगवंत की, दे सव सुख अघ नासि ॥७९५॥

नृप कै अदभुत अनुपमा, सामग्री समतादि।
ह्वारैं जातैं मोह रिपु, डरैं राग दोषादि ॥७९६॥

अव्रतपुर अर देसव्रत, इन माहीं गढ़ रारि।
परमत पुर आगें प्रगट, लेय मोह कौं मारि ॥७९७॥

कैसैं मारै मोह कौं, सो तुम सुनहु उपाय।
अप्रमाद पुर मैं हणौं, सुर नारक तिर आय ॥७९८॥

भाव अपूरव करणपुर, तहां हतै हास्यादि।
अनिवर्त्तपुर मैं हणौं, वेद तीन संढादि ॥७९९॥

पाछैं सूषिम क्रोध अर, मान कपट रिपु काटि।
सांपराय सूषिम धरा, लेय मोह दल ठाठि ॥८००॥

सूषिम क्रोध पछारि कैं, पूरौ पारै मोह।
भंग हौंहि भूपाल पैं, राकिस रागर द्रोह ॥८०१॥

क्षीण कषाय जती यती, क्षीण मोह मुनिराज ।
हतै विघन कौं वेगिदे, सजै सिद्धि के साज ।।८०२।।

दरसन ज्ञानावरण की, परकति सवै विनासि ।
साधक भाव समेटि ले, केवल भाव प्रकासि ।।८०३।।

घाति कर्म कौं घाति कैं, ह्वै कैवल्य स्वरूप ।
अंतरातमा यह थकी, ह्वै परमातम रूप ।।८०४।।

जैसैं राजा नीति करि, महाराज ह्वै वीर ।
तैसैं अंतर आतमा, ह्वै परमातम धीर ।।८०५।।

जानैं लोक अलोक सहु, एक समैं मैं सोइ ।
भानैं संसैं भविन कै, केवल ज्ञानी होय ।।८०६।।

ज्यौं नरिन्द्र राजेंद्र ह्वै, धारि पराक्रम धीर ।
त्यौं जौगिन्द्र जिनेन्द्र ह्वै, आतम वल करि वीर ।।८०७।।

आयु प्रमाण सरीर मैं, तिष्टे सरवगि देव ।
जीवन मुक्त दसा धरैं, करैं सुरासुर सेव ।।८०८।।

करि दरसन मुनि सवद कौं, उत्तम कुल नर देह ।
कैयक तप व्रत धारि कैं, मुनिवर हौंहि विदेह ।।८०९।।

कैयक मानव तिर तथा, धारि अणुव्रत सार ।
स्वर्ग पाय नर होय फिरि, तप करि ह्वै भव पार ।।८१०।।

कैयक सुर अथवा असुर, गहि करि सम्यक ज्ञान ।
करि पूरण थिति होय नर, पावै पद निरवान ।।८११।।

स्वर्ग निवासी देवजे, ते सुर नाम वखानि ।
मध्यलोक पाताल के, देव असुर परवानि ।।८१२।।

देव जोनि के भेद हैं, देव दैत्य द्वय रूप ।
स्वर्ग निवासी वहुसुखी, दीरघ आयु सुरूप ।।८१३।।

मंद कषायी हर्ष अति, अलप विषाद विवाद ।
सव वातनि मैं अति निपुन धारैं अलप प्रमाद ।।८१४।।

असु अलप सुख अलप थिति, तीव्र कषाय प्रचंड ।
अति विषाद अतिवाद हैं, अलप बुधि अति दंड ॥८१५॥

सुर नर असुर विद्याधरा, पंचेन्द्री पसु जेहि ।
नभचर वनचर ग्रामचर, निकट भव्य सुलटेहि ॥८१६॥

होंहि कृतारथ सवद सुनि, करि दरसन वहुजीव ।
कैयक तदभव पार ह्वै, मनुज मुनिंद सुजीव ॥८१७॥

कैयक जनमांतर तिरै, पावैं निजपुर वास ।
सुखदाई संसार मैं, केवल ज्ञान प्रकास ॥८१८॥

तारण तरण दयानिधि, जीवन मुक्त मुनिंद ।
आप मात्र ही गात्र मैं, वसैं देव जोगेन्द्र ॥८१९॥

इन्द चन्द असुरिंद अर, रवि नरिंद नागिंद ।
हरिषिन्द अहमिंद खग, रटैं जतिंद गणिंद ॥८२०॥

आयु लार ही गोत्र कौं, नाम रूप को नासि ।
वादर सूषिम गात्र हरि, वेदनि कर्म विनास ॥८२१॥

कर्म भर्म हरि शुद्ध ह्वै, वसै भावपुर मांहि ।
सो विदेह मुक्तो प्रभू, कहिये संसै नाहि ॥८२२॥

ज्ञान रूप चिद्रूप सो, ह्वै अनूप जग भूप ।
फेरि न जनमैं जगत मैं, ह्वै अविनासी रूप ॥८२३॥

थूल देह अर सूषिमा, वहुरि न धारै धीर ।
ह्वै अनंत स्वरूप निज, चिनमूरति असरीर ॥८२४॥

जगत सिरोमणि भावपति, लोक सिखरि सद्रूप ।
निज सुरूप मै नित्य ही, करैं निवास अरूप ॥८२५॥

अंतर आतम राम की, कथा प्रबोध प्रकास ।
पढै सुनै अर सरदहै, सो पावै सिव वास ॥८२६॥

निज दौलति अनूभूति है, ताहि विलसवे काज।
छाड़ै राज विभूति सव, सो पंडित सिरताज ।।८२७।।

।। इति अंतरातमा ज्ञान राज वर्णनं ।।

दोहा

वहिरातमा दशा वर्णन—

विहिर मुख वहिरातमा, लखैं न जाकौ रूप।
अंतरातमा अति रहैं, सो परमातम भूत ।।८२८।।

करि वंदन ताके चरण, लेय सरण सिद्धांत।
भाषौं वहिरातम दसा, दोस रूप एकांत ।।८२६।।

मूढ़ महा वहिरातमा, धरै द्रिष्टि वहिरंग।
गनैं आपने कर्म जड़, गनैं आपनौ अंग ।।८३०।।

ता सम सठ नृप और नहि, करै राज वेढंग।
वारावाट कुठाट सव, सदा कुवुद्धी संग ।।८३१।।

पराधीन वरतै महा, नहीं राव कौ जोर।
राव मोह के फंद मैं, परयो सहै दुख घोर ।।८३२।।

राजथान नहि निश्चला, भटकै भव वन मांहि।
सुर नर नारक पसु पुरा, थोरे दिन रह वांहि ।।८३३।।

काढैं कर्म महीप कौं, देह वेगतैं वेगि।
सदा भोगवै भूप दुख, नही राज वल तेगि ।।८३४।।

ते गन ज्ञान ज्योतिसी, सो नहिं नृप के हाथ।
कायर कुटिल सुभाव सहु, ते भूपति के साथ ।।८३५।।

काची गढी न कायसी, विना वकै विनसाय।
वसै तामहै भैमयी, अलप काल रहवाय ।।८३६।।

मोह वसाय अनादि कौ, भमैं भूपाल अयाण।
इक छोडैं इक पुर गहै, मोह आण परमाण ।।८३७।।

कुवुद्धि सारिखी और नहि, जग मैं काइ कु नारि।
सो पटरानी राव कै, बैठी राज विगारि।।८३८।।

घर खोवा धरणी इहै, कलह कारणी जोय।
पापारंभ प्ररूपणी, कहां भलाई होय ।।८३९।।

भयौ कुमति कै भूप वसि, नहीं वुद्धि को लाग।
पर्यौ राव परमाद मैं, नहीं धरम सौं राग ।।८४०।।

महा मोह निद्रा जिसी, निद्रा और न नीच।
सोवै सठ भूपति सदा, मोह नींद कै वीच ।।८४१।।

घूमैं नृप वेसुधि भयौ, मोह वारुणी पीय।
परचौ भर्म की पासि मैं, पिरथीपति टुक जीय ।।८४२।।

कुबुधि सुता है मोह की, जाइ ममता मात।
चाहै मोह प्रकास ही, अति अघ सौं न डरात ।।८४३।।

नहि प्रताप पति को चहै, निहिपति कौ विस्वास।
डरैं भूप कुवुद्धि तैं, धरै मोह की आस ।।८४४।।

है कुभाव मंत्री कुटिल, मोह मिलाऊ जोइ।
नृप कोउ दौन वांछइ, स्वामि दरोही सोइ ।।८४५।।
विषयनि के अनुराग मैं, राख्यौ राय लगाय।
रमैं सदा सव कुमति वसि, सुधि वुधि विसराय ।।८४६।।
नहि कुभाव सौकलि विषै, और कुमंत्री कोय।
चौर कों पूठी रखा, कहां भलाई होय ।।८४७।।
चोरन नहीं इंद्रीन से, है तिनही कौ जोर।
ते कुभाव कै वलि सदा, करैं कर्म अति घोर ।।८४८।।
चौरैं अहि निसि नृपति घर, डर नहि राखैं मूलि।
रंच न दीखैं गुण रतन, देखौ नृप की भूलि ।।८४९।।

भंडारन निज ऋद्धि सौ, तीन भुवन मैं जार ।
कुवुद्धि कुभावनि दावियौ, दे भव भोग असार ॥८५०॥

राव ह्वै रह्यौ रंक अति, गुन धन विन नहि चैंन ।
भौंदू भूपति विपति मैं, परयौ वृथा वसि मैंन ॥८५१॥

भूलि रह्यौ नृप आपकौं, होय रह्यौ मतिहीन ।
भाव सुभट सव वुद्धि ढिग, वैठे वोध अधीन ॥८५२॥

सुवुद्धि रहै जु विवेक धरि, वैठी परम उदास ।
राव वात वूझै नहीं, करै कुवुद्धि विलास ॥८५३॥

आतम भाव भटानि कौ, नहि नृप कै संचार ।
मोहराव के राव तनि, दावि लीयौ दरवार ॥८५४॥

मोह राव को है सही, सेवक सदा कुभाव ।
कुवुद्धि पुत्रिका मोह की, चाहै मोह प्रभाव ।८५५॥

भेद न समझै मूलि ही, भौंदू करै विसास ।
मोह तिमर करि अंध नृप, भयौ कुवुद्धि कौ दास ॥८५६॥

निज परणति पर्याय निज, नृप परजा सुखदाय ।
तिनकौ वास न कुमति पैं, वसैं सुवुद्धि वसाय ॥८५७॥

सर्व विभाव विवाद खल, सकल विपरजै भाव ।
अखिल कुपर्याया सदा, वसैं कुवुद्धि प्रभाव ॥८५८॥

जीवक्षेत्र मैं जड़ मयी, रहैं कुभाव अनेक ।
कैसैं आय सकैं महा, सुवुद्धि सुभाव विवेक ॥८५९॥

है मिथ्यात महीप गुर, मोह प्रकृति मति हीन ।
पाप धरै प्रोहत पदा, जो जग माहि मलीन ॥८६०॥

कुवुधि कुभाव प्रभाव करि, राव ह्वै रह्यौ रंक ।
पटरानी राजै महा, राज विगार निसंक ॥८६१॥

आवै असुभ महीप पैं, शुभ कौ देय विडारि ।
शुद्ध भाव की वात हू, जहाँ कीयां ह्वै रारि ॥८६२॥

कायर कृपरा कुचील जो, भाव भूप कै ताहि ।
सेनापति पदवी धरयां, कैसैं राज जमेहि ॥८६३॥

द्वारपाल दरावर मै, परमादी परिणाम ।
रौके नहि अपराध कैं, रोकै विधि कौ नाम ॥८६४॥

दुराचार कुटवाल है, सेठ महासठ भाव ।
वहुरि महा अन्याव से, जहां मीर उमराव ॥८६५॥

कुविसन सेना है जहां, वसती जहां विभाव ।
है फैलाव कुभाव कौ, राव करै नहि न्याव ॥८६६॥

भोग भावना भर्म मैं, भूपही दोयो भमाय ।
करै कामदारौ कुमन, सुमनहु सकै न आय ॥८६७॥

छल प्रपंच पाखण्ड अर, पिसुन धूर्त खल भाव ।
पेसगार ए कुमनके, चांहै कुवुद्धि कुभाव ॥८६८॥

फैलि रहे वद फैल सहु, मैल भरे तहकीक ।
खेल मचि रह्यौ पुर विषै, वोलैं वचन अलीक ॥८६९॥

अपने अपने स्वारथी, नही स्वामि की पीर ।
राज दावि लीयो अरयां, सुभटन नृप कै तीर ॥८७०॥

ज्ञानावर्ण जु कर्म खल, मित्र मोह कौ एह ।
ज्ञाना शक्ति दावै सवै, दे दुख दोष अछेह ॥८७१॥

दरसन आवरणी कर्म, द्रिग अवरोध करेय ।
भाव भड़नि कौ भूप कौ, दरसन होन न देय ॥८७२॥

कर्म वेदनी वलवता, महा मोह कै जोर ।
करै असाता जीवकौं, करवावै अति सोर ॥८७३॥

कबहुक साता देय कैं, तुरत खोसि ही लेय ।
सुखन अतिंद्री होन दे, भव भव कष्ट करेय ॥८७४॥

लाग्यौ काल अनादि कौ, नृप कौ मोह पिसाच ।
थावर जंगम जोनि मै, करवावै वहु नाच ॥८७५॥

एक ठौर रहनें न दे, मोहासुर असुरेस।
कवहुक सुर नर पसु करै, कवहुक नारक भेस ॥८७६॥

आयु नाम है कर्म इक, सहचर मोह नरेस।
जीव अमर सो अलप थिति, करि राख्यो राजेस ॥८७७॥

नाम कर्म नामा करम, नाना देह धराय।
भरमावै नरनाथ कौ, हुकम मोह कौ पाय ।८७८॥

गोत्र कर्म अति भर्म जो, जीवहि मोह वसाय।
ऊंच नीच गोत्रादि मैं, लघु दीरघ करवाय ।८७९॥

अंतराय दुखदाय अति, मोहराय परसाद।
जीवराय कों जगत मैं, करै अनेक विषाद ॥८८०॥

विघन करै आनंद मैं, मगन होन नहि देय।
विसतैं वुरे जु कर्म वसु, भव भव प्राण हरेय ॥८८१॥

क्रोध मान माया मदन, लोभ हासि रति सोक।
अरति जुगपसा मोह के, सुभट रहे हैं रोकि ॥८८२॥

जांन देंहि निज धाम नहि, राखैं जगत मझार।
नरक निगोदादिक दुख, देहि अनंत अपार ॥८८३॥

कृमि कीटादिक जोनि मैं, जामण मरण कराय।
काराग्रह मैं नृप परचौ, दुख देखे अधिकाय ॥८८४॥

छूटि सकै नहि वंधतैं, रहै वहौत वेहाल।
खैंच्यौ विषै कपाय कौ, भटकत फिरै भूपाल ॥८८५॥

टिक न सकै गढ वांधिकैं, लरि न सकै वलहीन।
चउरासी लख जोनि मैं, भ्रमण करै अति दीन ॥८८६॥

निजपुर आतम भाव जे, तहा सकै नहि जाय।
भवकातार असार मैं, भरमैं भौंदूराय ॥८८७॥

काल अनंतानंत मैं, कवहुक सुर पद होय।
सुर भवतैं मांनुष जनम, अति दुर्लभ है सोय ॥८८८॥

ऐकेंद्रीय विकलत्रय, पसु नारक दुख रूप ।
जन्म अनंत निगोदि मैं, धरै मोह वसि भूप ॥८८९॥

कवहुक कोइक जीवकी, भ्रांति दूर ह्वै जाय ।
जानैं निज विरतांत सो, ठांनैं मोख उपाय ॥८९०॥

पूरण भाग प्रभाव तैं, सतगुर दरसन होय ।
करै वीनती तव यहै, सुनैं दयाकरि सोय ॥८९१॥

जीवो वाचा—

स्वामिन इह संसार है, अति असार भ्रमजार ।
भरमूं तामैं मोह वसि, लहूं न भवजल पार ॥८९२॥

कैसें पहूंचूं निजपुरा, भ्रमण मिटै किम नाथ ।
मोह पासि तूटै कवै, अवलोकूं निज साथ ॥८९३॥

सो उपाय भाषौ प्रभु, तुम हौ करुणा सिंधु ।
लूटि सकै नहि मोह खल, छूटि जाय सव वंध ॥८९४॥

॥ इति वहिरात्मा दशा वर्णनं ॥

———

॥ श्री गुरु वाचा ॥

दोहा

श्री गुरु वाचा—

तू अनादि वंध्यौ भया, भ्रम करि भव कै मांहि ।
निज स्वरूप निज भाव भड़, तैं अवलोके नांहि ॥८९५॥

सुवुधि महाराणी शुभा, पतिवरता परवीन ।
ताकी तोहि न सुधि कछू, ता विन तू अति दीन ॥८९६॥

है प्रवोध मंत्री महा, ताकौ तोहि न भेद ।
यक छिन मैं सो सांहसी, करै करम दल छेद ॥८९७॥

भाव अनंत महाभडा, मोह विदारण सूर।
कुवुधि कुभाव प्रभाव तैं, रहै तो थकी दूर ॥८६८॥

वैठे सर्व विवेक पैं, जहां सुवुधि प्रवोध।
तेरे पुर मैं सर्वही, वसै विभाव अवोध ॥८६६॥

पटरानी तेरै वुरी, कुवुध कलंक निवास।
वुरौ कुभाव प्रवान है, धरै मोह की आस ॥६००॥

वैठी सुवुधि अनादि की, घर विवेक कै वीर।
तेरे सुभ चिंतक सवै, है विवेक कै तीर ॥६०१॥

करै राज वेढग तू, निजपुर की सुधि नांहि।
अविवेकी अज्ञान तू, होय रह्यौ भव मांहि ॥६०२॥

छाड़ि कुवुधि कौ संग अव, मेल्हि मोह कै याहि।
निज वसि करि मन चपल कौं, ठाट कुभाव उठाहि ॥६०३॥

वसती काढ़ि विभाव की, कांम क्रोध कौं ठेलि।
तोरि मोह की पासि अव, तज कुवुद्धि की केलि ॥६०४॥

सम्यक गढ़ मैं वास करि, लेहु सुवुधि वुलाय।
करहु दूरि मंत्री कुमन, ज्ञान मंत्रि ठहराय ॥६०५॥

करि विवेक कौं राजगुर, पापहि तुरंत उथापि।
प्रोहित पद दै धर्म कौं, शुद्ध स्वभाव सथापि ॥६०६॥

सेनापति तप संजमा, भड़ करि अपनैं भाव।
निज प्रभाव उमराव करि, इह उपाय है राव ॥६०७॥

शुभाचार कुटवाल करि, दुराचार सहु मेटि।
दरसन रूप उघारि दृग, चारित सज्जन भेटि ॥६०८॥

हरहु प्रभाव विभाव कौं, मोह राव की कांणि।
मति राखौ महिपाल तुम, गुर आज्ञा उर आणि ॥६०६॥

एक न राखौ मोह कौ, मन तन कौ परसंग ।
निज स्वभाव सेना करे, करहु करम दल भंग ।।६१०।।

राज करहु निजपुर विषै, अटल अचल सुख रूप ।
जहां न वस है मोह कौ, नही काल सौ भूप ।।६११।।

राज विगारा दूर करि, राज सुधारा लेहु ।
यहै उपाय करि राय तू, ममता भाव हरेहु ।।६१२।।

काया काची है गढ़ी, जहां काल कौ जोर ।
रहनौं जामैं मोह वसि, वली काम से चोर ।।६१३।।

तजि काया गढ़ सर्व ही, सूषिम और सथूल ।
करि निवास निजपुर विषै, यहै वात सुख मूल ।।६१४।।

सुनी सुगुर की वारता, उर धारी भवि जीव ।
बुद्धि प्रबोध प्रभाव करि, त्यागे भाव अजीव ।।६१५।।

कियौ राज कंटिक रहित, फेरि न विनसै राज ।
इहै वात जे उर धरैं, करैं निजातम काज ।।६१६।।

गुर आज्ञा धारैं नही, तजैं न कुवुद्धि कुभाव ।
ते अभव्य जन जांनियें, तथा दूर भवि राव ।।६१७।।

वहिरातमता त्यागि कैं, अंतरातमा होय ।
सो परमातम पद लहैं, इह निश्चै अवलोय ।।६१८।।

वहिरातम कौ वर्णना, जोहि सुनैं धरि कान ।
सो वहिरातमता तजै, पावै आतम ज्ञान ।।६१६।।

निज लखिमीं लखियां विना, है वहिरातम वोर ।
दौलति निज अनुभूति लखि, तिरैं भवोदधि नीर ।।६२०।।

त्याग जोगि पर वस्तु जे, हेय कहावै तेहि ।
लेन जोगि निज भाव जे, उपादेय हैं एहि ।।६२१।।

हेय उपादेयंनि कौ, जो विचार अविकार ।
सो विवेक भासैं वुधा, ता सम और न सार ॥९२२॥

पढ़ै सुनैं अर सरदहैं, इह जु विवेक विलास ।
सो अविवेक निवारिकैं, पावै निजपुर वास ॥९२३॥

निजपुर सौ नहि कोइ पुर, जहां काल भय नाहि ।
कर्मन भर्मन कलपना, सुख अनंत जा मांहि ॥९२४॥

इति श्री विवेक विलास संपूर्णं ॥ लिखी सवाइ जैपुर में मिती पोस सुदि ३ व्रीसपतवार संवत १८२७ ॥ वाचै जीनै श्री स्वद वंचनां ॥ श्री ॥

अध्यात्म बारहखड़ी

रचना काल :—सं० १७९८ फागुण सुदी २

रचना स्थान :—उदयपुर (राजस्थान)

ॐ नमः सिद्धेभ्यो नमः ।। ॐ नमः परमात्मने ।
अथ भक्त्यक्षर मालिका वावनी स्तवन ।
"अध्यात्म बारहखड़ी"—लख्यते ।।

श्लोक

मंगलाचरण—

वंदे मोक्षाधिपं देवं, मोक्षमार्गप्रकाशकं ।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं, भेत्तारं कर्म्मभूभृतां ।।१।।

गौतमादिमुनीन्वंदे, वंदे तत्वप्ररूपणां ।
वंदे समाधितंत्रं च, त्रयीमूलं तु नाटकं ।।२।।

गुरुमानंदरूपंच, देवं देवेन्द्रकीर्त्तितं ।
वंदे सवात्मरक्षाढ्यं, ज्ञानब्रह्मैकरूपिणं ।।३।।

भक्त्यक्षरमयीमाला, ज्ञानतंत्रेण ग्रंथिता ।
प्रभोर्नाना गुणस्तोत्र, पुष्पै सौरभ्यशालिभिः ।।४।।

मुनयो भ्रमरा यत्र, यांति तृप्तिं महाशया ।
नत्वा जिनांघ्रि पद्मे च, अर्पयामि शिवाप्तये ।।५।।

दूहा

वंदौ आदि अनादिकौं, जो युगादि जगदीश ।
कर्म्म दलन प्रभु जगपति, परमेश्वर चिदधीस ।।६।।

वंदौं केवलभाव कौं, केवल चिनमय ज्योति ।
जाके परसत परम सुख, ऋद्धि सिद्धि सब होति ।।७।।

केवल रूप अनूप कौं, हरिहर विधि रविकंत ।
कहिये श्रुति सिद्धांत मैं, सो श्रीपति अरहंत ।।८।।

शक्ति व्यक्ति धर मुक्तिकर, सदा ज्ञप्तिधर संत ।
वीतराग सरवज्ञ जो, सो गणपति भगवंत ।।९।।

और न दूजो देवता, और न दूजो पंथ।
शिव विरंचि जगनाथ है, जो जिनवर ग्रंथ ॥१०॥

वंदौं केवल राम कौं, रमि जु रह्यौ सव माहिं।
ग्रैसी ठोर न देखिये, जहां देव वह नांहि ॥११॥

व्यापि रह्यौ सव लोक मैं, ग्रर ग्रलोक हू मांहि।
लोक शिखर राजै प्रभू, साधु लखैं निज पांहि ॥११॥

सब वामैं वह सवनि मै, वह है सव ते भिन्न।
वातैं सव ही भिन्न हैं, वह भिन्नोच ग्रभिन्न ॥१२॥

वंधनहर हर नांम धर, यम करि त्रासक सिंह।
वह जु हरी नरहरि धुरी, भवनासक नरसिंह ॥१३॥

कल्याणातम शिव जिको, विधिकारी विधि नांम।
द्वादशांग सूत्र जु रचै, सहि विरंचि सु राम ॥१४॥

रचैं तत्व स्रिष्टी सवं, विरचै ग्रतत नितैं जु।
वहै विरंचि न दूसरो, सही वसै शिवमैं जु ॥१५॥

शिव जु मुक्ति कौ नांम है, सिव कल्याण जु होय।
शिव शंकर जिन देव है, और न दूजो कोय ॥१६॥

कर्त्ता ग्रातम भाव कौ, कर्त्ता शिव को सोय।
हर्त्ता सर्व विभाव कौ, निवसै जो शिवलोय ॥१७॥

रतनत्रय कौ जोग है, तातै जोगी जोय।
ग्रतुल ग्रनंते गुणनि कौ, भोगन हारौ होय ॥१८॥

जोगी भोगी हरि सही, ग्रौर न जोगी जोग।
ग्रोर न भोगी भोग हैं, करि जु न जिन संजोग ॥१९॥

सर्वधांम मैं रमि रह्यो, रहै जु एकैं ठाम।
रम्य सकल मै रमण जौ, रमैं ग्रखिल मै राम ॥२०॥

सर्वग व्यापक विष्णु जो, सर्वज्ञो जिन ईश।
जयकारी जिन नाम है, जो महेश जगदीश ॥२१॥

गणनायक गणिनाथ जौ, शक्ति अनंत मुनिंद।
शक्ति मूल शक्तीश जो, शक्ति रूप जिनचंद ।।२२।।

ज्ञान शक्ति द्रिग शक्ति जो. वीरज शक्ति अनंत।
सुख शक्ती युत जिन प्रभू, अमित शक्ति भगवंत ।।२३।।

अंतर वाहिर तमहरन, भानुपती जिनदेव।
वुद्धि प्रदायक वुद्ध जो, सुगत सहित सुखदेव ।।२४।।

सुमति सुगति दातार जौ, जिन गुरु देव दयाल।
नागर नित्य विसाल जो, थिर चर को प्रतिपाल ।।२५।।

गणपति पति जु समूह कौ, गणधर पूज्य जिनिंद।
नायक सवकौ है प्रभू, रहित जु नायक इंद ।।२६।।

नाम विनायक और नहि, वहै विनायक देव।
सरसुति जाके मुख विषै, करीहौं ताकी सेव ।।२७।।

क्षेत्र जु कहिये द्वै विधी, स्वपर क्षेत्र विनु भर्म्म।
असंख्यात परदेस जो, सो निज क्षेत्र सु मर्म ।।२८।।

पर क्षेत्र जु पर द्रव्य है, लोकालोक अकास।
लोक जु कहिये पुंजधर, सकल द्रव्य परकास ।।२९।।

है जु अलोक सु एकलौ, जा मैं अवर जु नाहि।
स्वपर क्षेत्र पालक प्रभू, क्षेत्रहु पालक हांहि ।।३०।।
क्षेत्र जु कहिये देह कौं, ताकौ पालक जीव।
जीव तणौं पति जिनवरा, क्षेत्रपाल पति पीव ।।३१।।
क्षेत्रज्ञो क्षेत्राधिपो, क्षेत्रपाल जिनदेव।
और न दूजो देव को, एक देव अति भेव ।।३२।।
वंदौं वा गुणधाम कौं, जो ज्ञानामृत पूर।
प्रणति करौं सिर नायकैं, करि मेरे अघ चूर ।।३३।।
सेऊं देव दयाल कौं, कर्म्म हनत अतिशूर।
द्रव्य कर्म्म नोकर्म्म अर, भाव कर्म्म तैं दूर ।।३४।।

पूजौं आतम देव कौं, करै जु आतम सेव।
अयातम जगदेव जौं, देव देव जिन देव ॥३५॥

अतुल गुणातम गुणमई, परगुण रहति जु देव।
निरगुण कहिए जो प्रभू, गुण अनंत निज वेव ॥३६॥

करौं अराधन नाथ की, जो अनंत द्युतिरूप।
अगणित शशि सूरिज विभा, नख सम नांहि अनूप ॥३७॥

गुण पर्यय स्वाभाव जो, सर्व विभाव वितीत।
अनत कला असम जु प्रभा, जगनाथो जगजीत ॥३८॥

आप एकलौ सर्वधर, एकानेक स्वरूप।
अनेकांत आगम प्रगट, अनुभव रसकौ कूप ॥३९॥

वहिरंगा कमला तजें, अमला कमला पासि।
सो कमलापति देव है, काटै जग की पासि ॥४०॥

कमला नाम न ओर है, कमला निज अनुभूति।
हृदै कमल राजै सदा, आतम सक्ति प्रभूति ॥४१॥

कमला निज अनुभूति है, वसै जु जिनकै मांहि।
चरण कमल तजि जाय नहिं, रहै सदा प्रभु पांहि ॥४२॥

नांहि प्रदेश जु भिन्न हैं, कमला अर प्रभूके जु।
द्रव्यर परणति भेद नहि, एक रूप अधिके जु ॥४३॥

जल तरंग दुविधा नहीं, भानु रश्मि नहि भेद।
तैसें कमला हरि विषै, श्रुति गावै जु अभेद ॥४४॥

वह कमलाधर जिन प्रभू, वसै सदा मन मांहि।
मैं मूरख अलगौ रहूं मो सम मूरिष नांहि ॥४५॥

वाही के परसाद तैं, खोलूं मिथ्या ग्रंथि।
तव वास्यौं विछुरूं नही, व्याऊ ह्वै निरग्रंथि ॥४६॥

रहूं सदा मै हरि कनैं, तजौ न हरि कौ संग।
जिन रंगैं रत्ता रहूं, तजिकैं द्विविधा संग ॥४७॥

नमो नमो वा देव कौं, द्रव्य भाव मन लाय।
सवही तैं न्यारो रही, सेऊं वाके पाय ॥४८॥

छंद नाराच

तू कर्म्मनाग केहरी, तुही जुहै नृ–केहरी।
प्रकृत्य भाव दूरगो, तुही जु देव है हरी॥
प्रभू जु केवलात्म को, सही जिनो हरो हरी।
गुण अनंत नायकौ, तु ही गणेश है धुरी ॥४६॥

तुही जिनेश संकरो, सुखकरो प्रजापती।
तुही हिरण्यगर्भ को, अगर्भ को धरापती॥
महा स्वशक्ति पूरको, तुही जिनो रमापती।
रमाजु नांम भांम नांहि, शक्ति रूप है छती ॥५०॥*

तुही विशेष चा विशेष, शक्ति ते अनंत हैं।
सुचिद्विलास ज्ञानशक्ति, दृश्य शक्तिकंत है॥
अवाप्त रोम महाजु सत्व, तू जुहै तमंहरो।
विधिकरो दिनंकरो, शिवंकरो रमावरो ॥५१॥

सुयोगिनाथ नायको, भवंहरो मुधाहरो।
सुधातरो उमावरो, जपै जुता हिमाधरो॥
सुनायको विनायको, सही स्वयोगदायको।
अकाय को अमाय को, सदा सुबुद्ध नायको ॥५२॥

निजंधरो परंकरो, परंहरो यतीस्वरो।
शिवोभ वोधवो सदा, शिवो सही रमाधरो॥
तु ही जिनेंददेव, और दूसरौ जु भेदनां।
सही जु शक्ति व्यक्ति रूप, पाप पुण्य छेदनां ॥५३॥ ×

---

* छंद संख्या ५१ मूल प्रति में नहीं है।
× छंद तो है, पर संख्या ५४ नहीं है।

तु ही मुनीश वृद्धि दो, स्व ऋद्धि दो निरंतरो ।
अनंतभाव व्यक्ति दो, प्रबुद्ध है क्षमंकरो ॥
अनादि ब्रह्मरूप को, अरूप को विसुद्ध जौ ।
महाधि लब्धिमूल जो, निकूप को प्रसिद्ध जौ ॥५४॥

क्षमापरो परापरो, परंपरो वरंकरो ।
हितंकरो मितंकरो, दयाकरो कृपाकरो ॥
महासुदेव तू वही, न और कोय दीसही ।
विभू प्रभू महाप्रभू, स्वभू अभू जगीसही ॥५५॥

तुही तुही तुही सही, न तो समोन्य दूजही ।
जिहां तिहां लखैं जु साधु, एक तोहि पूजही ॥
तु ही यती अनर्भ को, अगर्व को पवर्ग को ।
अवर्ग को सुसर्व को, मुनीश ध्येय सर्ग को ॥५६॥

नराधिपो सुराधिपो, फणाधिपो तुभै भजै ।
अनादि काल के जु कर्म्म, दासतैं परे भजैं ॥
तु ही जु नांहिं बाल है, न वृद्ध है युवा न है ।
अनेक एक ज्ञान रूप, ईश तू निधान है ॥५७॥

जिनोत्तमो जिनोत्तमो, जनोत्तमो जगोत्तमो ।
वरोत्तमो वुधोत्तमो, नरोत्तमो निजोत्तमो ॥
परोत्तमो पुरोत्तमो, धुरोत्तमो गुरोत्तमो ।
सुरोत्तमो सतोत्तमो, सितोत्तमो हितोत्तमो ॥५८॥

सजोग को अजोग को, सवोध को अवोध को ।
अरोग को असोग को, स्वसोध को निरोध को ॥
अलोक को सलोक को, अथोक को सथोक को ।
अनोघ को अमोघ को, विवोध को अरोध को ॥५९॥

नहीं जु सून्य वादि को, जिनो अनादि आदि को।
तुही जु स्यादवादि को, अनंतभेद है इको॥
सदा जु सप्तभंग भास को, अनंत भास को।
अभास है अकास है, अनास है विभास को ॥६०॥

अणाथि को जु आथिकौ, जिनंद लंवहाथ को।
सदा जु सर्वसाथ को, त्रिलोकनाथ नाथ को॥
सही जु तीरथंकरो, तिथंकरो शिवंकरो।
तुही सुवुद्धिदाय को, अपाय को अकिंकरो ॥६१॥

अणाथि को कहतां अणाथि जे निरगंथ साधु त्यां कौ पति छै अथवा आपही वहिरंगा कमलास्यौं अलिप्त सर्व परिग्रह रहित नगन दिगंबर छै अथवा अणाथि जे गरीव लोक त्यांकौ प्रतिपाल छै अथवा अणाथि जे निगोदादि थावर जीव ज्यांकै इंद्री प्राणादिक की आथि थोडी त्यांकौ दयाल छै अथवा अणाथि जो अलोकाकास जहां जीवादि पदार्थ नही शून्य रूप अनंतौ छै। तीहूं कौ ज्ञायक अंतरजामी छै॥ अर आथिको कहतां आस्तिका धणी जो ऋद्धिधारी मुनि त्यां कौ नाथ छै अथवा आप ही अनत ऋद्धि सिद्धि समृद्धि कौ भरयौ छै। अनंत लक्ष्मी कौ नाथ छै अथवा आथि का धणी इंद्र चक्रवर्त्यादिक त्यांकौ नाम छै। अथवा सभाग्या धनवंत लोक त्यांकौ प्रभू छै अथवा इंद्रियादिक की आथि जांकै असा जेवे इंद्री आदिक जंगम जीव त्यांकौ रक्षक दयापाल छै अथवा आथि जो लोकाकास जहां जीवादि पदारथ पाजे तीकौ धनी छै लोक कौ स्वामी छै।

प्रभू जु केवलीस जो, अनादिकाल ज्ञायको।
सुरेश यस्य पायको, तुही जिनो अमाय को॥
सही निजैक्य दायको, तुही अनंत ज्ञायको।
जु सादि औ अनादि रूप, तू जु तत्व नायको॥६२॥

पुराण है, पुनीत है, सही सुयोगि गम्य है।
वीतीत है अतीत है, सही सुलोक रम्य है॥
चिदात्म है सुखात्म है, अनंतभाव स्वात्म है।
भवांत है अघांत है, तमांत है निजात्म है॥६३॥

महा जु विष्णु व्यापको, अव्यापको अलिप्त जो।
तु ही स्वयोग है समाधि, रूपदेव तृप्त जो ॥
निरीह को अनीहको, अतीह को अवीह को।
निरीश्वरो अनीश्वरो, अतीश्वरो नृसीह को ॥६४॥

तु ही जु रांम नाम है, सही विराम कांम को।
तु ही जु सर्वधाम है, सही सु एक धाम को ॥
तुही अनंत ग्रांम है, सही सु एक ग्रांम को।
न ही जु कांम क्रोध रूप, राम है अकाम को ॥६५॥

सुसिद्ध तू प्रसिद्ध तू, विरूद्ध कौ विनाश तूं।
सही जु अर्हंदेव है, सदा स्वचक्षु भासतूं ॥
सुसूरि तू प्रभूरि तू, सदाजु तू अध्यापको।
सु साधु तू अवाध तू, अलोक लोक मापको ॥६६॥

असाध को असाध्य तू, सही जू योग साध्य है।
अराधि तूं उपाधिनां, तूहीं मुनी अवाध्य है ॥
तुही जु नां अराधको, सबैं तुझे अराधहीं।
कभी जुनां विघातको, महा जु साधु साधहीं ॥६७॥

प्रजापती सुगोपती, सदा च गोरखोयती।
तुही अनंतज्ञान दो, सुदत्त है धरापती ॥
सु पौरषो अपार तू, महास्व पौरषेश तू।
सवै प्रकृत्य चूर को, अरूप को जिनेश तू ॥६८॥

अभूरतो अधूरतो, असूरतो निरंतको।
महा अनंत अमूरतो, सवै विभाव अंतको ॥
स्वरूपदो अरूपदो, स्वभावदो विभाश्वरो।
अरंजको निरंशको, अनंतभा प्रभाश्वरो ॥६९॥

सदासुभाव कारको, विभावता विदूरगो ।
महा अभाव भावको, अभाव भाव चूरगो ।।
महा सभाग भाग्यदो, सुशांत भाव पोषको ।
स्वभाव भुक्ति भोगको, सदा विमुक्त मोषको ।।७०।।

अद्वैतभाव मुक्त जो, सद्वैत भाव मुक्त जो ।
अनेक एक दोय रूप, है अरूप युक्त जो ।।
निराकृतो चसाकृतो, विशेष भेव देव जो ।
रमापती जिनाधिपो, शिवाधिपो अभेव जो ।।७१।।

रमाधवो उमाधवो, भजै जु जाहि साधवो ।
शचीधवो धराधवो, जुपै जु जाहि राधवो ।।
सदा सुबुद्धि राधिका, पती मुनीश ईश जो ।
सबै कुबुद्धि खंडकौ, महाव्रती अतीश जो ।।७२।।

इष्याक वंशतारको, सु सोमवंश तारको ।
महाकुरू जु वंशतार, नाथ उग्रपारको ।।
सुविप्र वर्ण तारणो, सुक्षात्र वंश धारणो ।
सुवैश्य वंश तारणो, त्रयी उधार कारणो ।।७३।।

तुही जु शूद्र तारणो, न पुंस ढोर तारणो ।
सुरा सुराच नारकी, जु नारि भी उधारणो ।।
सही जु जन्म अंतिरै, उवारि है विनात्रयी ।
जिके सु सम्यका प्रभू, तुझै जु ध्याय ह्वै जयी ।।७४।।

सुनाभि जो उधार को, सुचक्रनाथ तारको ।
अनादि जोग धारको, सुकर्म्म भूमि कारको ।।
अनंतसौखि सारको, जुगादि नाथ साथको ।
सही जु आदिनाथ है, तुही अनादि नाथको ।।७५।।

महायती अजीत जो, असंभवो च शंभवो ।
सदाभिनंदनो जिनो, मतीशनाथ व्रंभवो ।।
सुपद्मनाभ पद्म जो, निपद्मनाथ नाथसो ।
सही सुपास है प्रभु, रहै जु पासि साथ सो ।।७७।।

सुचंद्रनाथ चंद्रधार, चंद्रकोटि ज्योतिसो ।
अनंतज्योति धार जो, अनंतसूर द्योति सो ।।
सुपुष्प तुल्य दंत यस्य, पुष्पदंत कंत सो ।
सुशीतलो श्रियंकरो, श्रियांसनाथ संतसो ।।७८।।

सदा जु वास वैसुपूजि वासुपूज्य देव जो ।
सुनिर्मलो अनंत जो, सुधर्म्मनाथ सेव जो ।।
सही सु सांतिनाथ है, प्रशांत सर्व्वकारको ।
वही जु कुंथवादि जीव, रक्ष को उधार को ।।७९।।

जु कुंथवादि जीवनाथ, कुंथनाथ देव सो ।
अरो अजो रजोहरो, हमैं जु देऊ सेव सो ।।
सुमल्लनाथ मल्लिनाथ मोहमल्ल मार जो ।
अनंतजीत देव जो, सुव्रतनाथ सार जो ।।८०।।

मुनीशव्रत्तदायको, जिनो मुनीसुव्रत को ।
नमैं सुरासुरीतरा, नमीशनां अव्रत्त को ।।
नहीं च कृष्ण भाव सो, सदा जु कृष्णरूप सो ।
सही जु कृष्ण ध्येय है, सु नेमिनाथ भूप सो ।।८१।।

यदूकुलेशनाथ जो, सु यादवो उधार वो ।
शिवा जु देवि तार को, समुद्रजीत पार को ।।
प्रभो गीरीश नायको, सुराज संविडार को ।
सु बालब्रह्मचारको, सुराजलं उधार को ।।८२।।

सदा जु पासनाथ जो, रहै न जीक नाथ जो।
सही जु वीरनाथ जो, महासुवीरनाथ जो॥

सदा जु वर्द्धमान जो, सही सुवर्द्धमान सो।
मतिकरो गतिकरो, जु सन्मती अमांन सो॥८३॥

अतीव वीर धीरवीर, है प्रभू सुनीर जो।
वसै सदा जु आप मैं, हरै जु सर्व वीर जो॥

जु पासि है अपासि है, प्रभु जु सर्वनाथ सो।
अनंत है जु एक रूप, तीर्थनाथ नाथ सो॥८४॥

इत्यादि है अनंत नांम, एक वीतराग जो।
अनादि है अनंतधाम, वाहिस्यौं जु लाग जो॥

महाविदेह क्षेत्र आदि, एकसौ जु सत्तरी।
त्रिपंच कर्मभूमि माहि, जे विभू महत्तरी॥८५॥

जिके जु अर्द्ध सिद्ध साधु, केवली निरंजना।
गणाधिपा श्रुताधिपा, जिनाधिपा अरंजना॥

सुरंजना सवै जु लोक, भारती जिनोद्भवा।
मुझें जु देऊ शुद्ध तत्व, ईश्वरी मुखोदभवा॥८६॥

दोहा

सरस्वती स्तुति—

सरवग के मुखतैं भई, सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती, सुर नर मुनिजन सेवि॥८७॥

अक्षर जो क्षरि है नहीं, अनिधन अवितप देव।
सोई अक्षर वावनी, प्रकट करै अभिलेख॥८८॥

तेतीसौं विजन जिके, सुर चौदा सव होय।
जिह्वा मूली पुलतजो, गज कुंभा कृति जोय॥८९॥

अनुस्वारो जु विसर्ग है, ए सब बावन अंक।
अ आ इ ई औ लगैं, चौदा सुर जु निशंक ।।६०।।

क का आदि हकारलौं, विंजन है तेतीस।
अं अनुस्वारो जांनियें, अः विसर्ग धर ईश ।।६१।।

पुलतज कहिये उच्चसुर, वह जु त्रि मात्रा जांनि।
गज कुंभा कृति गुरनितैं, जिह्वा मूलि प्रवांनि ।।६२।।

द्वापंचाशत अक्षरा, वहुरि जिके वीजांक ।
संयोगी द्वित अक्षरा, सवकौ प्रगट शिवांक ।।६३।।

सब अक्षर के आदि ही, राजै प्रणव स्वरूप।
ॐकार अपार प्रभु. आपै आप अनूप ।।६४।।

सो अक्षर नहीं और है, अक्षर रूप सु आप।
तातैं ॐ आप है, हरैं सकल संताप ।।६५।।

देव शास्त्र गुरु की कृपा, तातैं आनन्द पूत।
भाषै अक्षर बांवनी, नमि जिन मुनि जिन सूत ।।६६।।

× × × ×

आगैं चउदह स्वर अनुसार विसर्ग। ए षोडसाक्षर त्यामैं मुख्य अकार, अकार विना ककारादि सर्व अक्षर खोडा छै। क असौ शब्द उचार कीजै। तब अइसौ सुर-ककार मैं उचरै। सर्व अक्षरां कौ जीवजोग अकार छै। तातैं प्रथम ही अकार को व्याख्यान करै छै। सा एकाक्षरी नाममाला मैं अ नांम हरिहर कौ कह्यो सो हरिहर जिन भगवांन ही कौ नाम छै। पापां नै हरै। तास्यौं हर सारां का इंद्र तीस्यौं हरियम कुंजर नैं भयकारी। सिंह समांन तीस्यौं। हरि सर्व कर्म्म नैं जीतैं। तिस्यौं जिन सो ए नाम एक श्री जी का छै ।।

श्लोक

अनादिनिधनं वंदे, जिनं हरिहराभिधं।
अलक्षं लक्षणोपेतं, अमरामरमीश्वरं ।।१।।

सोरठा

अकाराक्षर वर्णन—

अक्क कहिये श्रुति मांहि,
हरिहर कौ इह नाम हैं ।
तो विनु अवर सुनांहि,
हरिहर जिनवर देव तू ॥१॥

छंद वेसरी

अणोरणीया महतो महिता,
तू अद्भुत आतम गुण सहिता ।
तू अनंत जितदेव अभीता,
भव संतान अनंत विजीता ॥२॥

अर्द्ध मात्र तेरै नहि शत्रू,
अर्द्ध जु नारीश्वर जग मित्रू ।
तेरै कंटिक अर्द्ध न पइए,
तू अर्द्ध जु नारीश्वर कहियै ॥३॥

*अमल चक्षु तू क्षायक दिष्टी,
अनत चक्षु तू ईश्वर सिष्टी ।
अमित पराक्रम धारी राया,
अतुल सुखातम रूप अकाया ॥४॥

अचल प्रकाश अनंत सुलोकी,
लोकालोक विलोकक थोकी ।
अतुल लब्धि को तूही ईशा,
तू जु अयोनी संभव धीशा ॥५॥

---

* अनत कहतां न्यारौ सर्व प्रपंच सौं न्यारी छै. क्षायक द्रिष्टि जिहकी ॥ अमित कहतां जिह की मरजाद अनंती छै ॥

अनत दांन अर अनत जु लाभा,
अनत सुभोगुपभोग महाभा ।
तेरी समता तू ही सांमी,
तो सौ और न अंतरजामी ॥६॥

अजड अतिंद्रिय ज्ञान अनंता,
तू जु विकल्प प्रवाह हनंता ।
संकल्पा अर सकल विकल्पा,
मेरे मेटि जु देव अकल्पा ॥७॥

अकषाई तूं परम पुनीता,
तू जु अलेसी देव प्रतीता ।
सुख जु अतिंद्रिय देहु जु मोकौं,
धोकौं द्रव्य भाव करि तोकौं ॥८॥

अमलातम तू विमल अरूपी,
अनहारी तू तृप्त स्वरूपी ।
तू जु अतेंद्री देव अजोगी,
तू जु अवेदी वेदक लोगी ॥९॥

अजरातम तू अजरण सांई,
तू जु अमृत्यु अकाल गुसाईं ।
तू जु असेष वितीत अशेषा,
तू अचलातम जन्मन भेषा ॥१०॥

तू जु अचिंत्यातम अति धामी,
चितऊं कैसें तो को स्वामी ।
अलं अलं पूरण अत्यर्था,
तेरै नांही एक अनर्था ॥११॥

तू हि अनर्थी अर्थ न एका,
तू हि जु अर्थी अर्थ अनेका ।
जड़ रूपी अर्थनि तैं न्यारा,
चेतन अर्थ तु ही जग प्यारा ।।१२।।

सकल अर्थ ए जग के झूंठे,
तेरै अर्थियती जगरूठे ।
अदभुत देव तुम्हारी प्रभुता,
तुम अथियोगी भरित सु विभुता ।।
तू जु अनस्वर रूप जिनंदा,
तू अजर्य अजीरण इंदा ।
तू जु अनंत दीप्ति भगवंता,
तू जु अग्रणी श्री अरहंता ।।१३।।

अर्हंन तू अरूजा अचल स्थिति,
तू अक्षोभ विदारक भवथिति ।
अच्युत भू पामोहु उधारौ,
दीनानाथ जु विरद उजारौ ।।
असंभूश्नु है नाम जु तेरा,
मेरा हू करि देव निवेरा ।
तू अरिणष्ट अति सूक्षम विमला,
तू अति निर्म्मल चिदघन अमला ।।१४।।

अनुभव नाथ अधिक तू प्यारा,
तू अशेष कलमष तैं न्यारा ।
मोकौं दै निज अनुभव स्वामी,
निज अनुभूति निवास स्वधामी ।।१५।।

---

१ १३वां तथा १४वां छन्द चार पंक्तियों का है ।

अतिसंगी तू है जु असंगा,
यतिसंगी तू है जु अरंगा ।
रंगनाथ तू है अती रंगी,
लोकनाथ तू कथक त्रिभंगी ।।१६।।

तू अधर्मधक अगनि स्वरूपा,
तू अति धर्म्मी त्रिभुवन भूपा ।
तू अमूरतातम अति ज्ञानी,
तू जु अनंतग अति गतिमानी ।।१७।।

अमृतोदभव अमृत आतम,
तू अशोक ध्वज अति जगदातम ।
तू अशोक घनशोक वितीता,
शोक संताप हरौ मम जीता ।।
तू अगण्य गणती तुझ नांही,
तू अचित्य वैभव समांही ।।१८।।
अभिनंदन अभिनंदनक देवा,
तू जु अपरमेयातम भेवा ।
तू सु अरिंजय फुनि जु अभीष्टा,
तू जु असंस्कृत सब जग द्रष्टा ।।१९।।
त अप्राकृत अवधि जु वासी,
मेरी काटि देव जम पासी ।
तू जु अनाश्वा अशन वितीता,
तू जु अनत्पय अत्पय जीता ।।२०।।
तू जु अव्ययो नाश न तेरा,
व्यय अत्पय नाम जु मरणेरा ।
त अधिकोधि गुरु जु मुनीशा,
तू न अघातम देव अधीशा ।।२१।।

---

१ १८वां छन्द तीन पंक्तियों का है ।

अक्षय तू च अनगु अग्राहक,
अविज्ञेय अवितर्क अवाहक ।
तू जु अगम्य अध्यातम गम्या,
अक्षप्तो तू परम जु रम्या ॥२२॥

तू अमोघ शुभ वाच जु स्वामी,
मोघन तू जु कदापि अकामी ।
मोघ जु नाम कहै सु वृथा को,
तू कवहूं न वृथा वितथा कौ ॥२३॥

तू अमोघ शाशन जगनाथा,
तू अमोघ भाषक जिननाथा ।
तू अमोघ आज्ञादायक है,
तू जु जिनंदा सव लायक है ॥२४॥

तू जु अतींद्रिक उपमाराया,
तू अधिपति अर अधिप अछाया ।
तू अचित्य चितक जगदीशा,
तेरी आज्ञा सवकै सीसा ॥२५॥

अधिदैवत तू अप्रतिघाता,
अप्रतिधो अति जगत विख्याता ।
तू अमुग्ध अति मुग्ध जु लोका,
तेरी सेव न जांनहि वोका ॥२६॥

अमित सुज्योति श्री भगवंता,
तू जु अमोमुह ओज अनंता ।
तू जु अधिष्टानं अप्रतिष्टा,
तेरी सर्वग ख्यात प्रतिष्टा ॥२७॥

अभयंकर तू उद्यतद्योती,
अखिलातम तू अखिल प्रज्योती ।
तू अपरधी अनत सु सक्ती,
कैसैं करिहौं तेरी भक्ति ।।२८।।

तू जु अनिद्रालू जोगेसा,
तू जु अतंद्रालू अतिभेसा ।
तू जु अनामय आमय त्यक्ता,
व्यक्त अव्यक्त सुव्यक्ता व्यक्ता ।।२९।।

अनुभवगम्य सुगम्य अनूपा
अलभ अकथ्य अवाच्य अरूपा ।
अजर अछेद्य अभेद्य अतीसा,
अमर अलभ्य सुलब्ध यतीशा ।।३०।।

अचर अचिंतित तू जु अशब्दा,
अति भवदाह वुझावन अब्दा ।
तू जु अनिंदित वंदित देवा,
परम अनंदी अकल अभेवा ।।३१।।

अतिदुल्लभ अतिवल्लभ स्वामी,
अतिपांवन अतिभांवन नांमी ।
अति सु दयाल अनुत्तर सांई,
अति सु कृपाल अपात गुसांई ।।३२।।

अतिधर्म्मी अभिवंद्य जिनिंदा,
अतिज्ञानी अजरामर इंदा ।
अतिमर्म्मी अथकंद निकंदा,
अतिध्यानी अघचूर मुनिंदा ।।३३।।

अतिदांनी अति सुंदरनाथा,
अत्युत्तर पर अतिगुण साथा।
तू जु अलक्ष अचक्ष अवर्णा,
तू जु अनक्ष अपक्ष अकर्णा ॥३४॥

अतिगति अपरस अतिपति तू ही,
तू अतिचक्षु अवाल प्रभू ही।
तू जु अनंवर अंवर स्वामी,
अक्षजीत तू अति अभिरामी ॥३५॥

तू जु अजीत अभीत अकल्ला,
तू जु अतीत प्रतीत अटल्ला।
तू जु अमूरित मूरति जैना,
तू अति सूरति अदभुत वैना ॥३६॥

अति धीरज तू अतुल अचल्ला,
अमरण अमृत अवश अखिल्ला।
अरज अजो अजरो च अमल्ला,
तू जु अवस्पादेय असल्ला ॥३७॥

अरस अगंध जु रूप न तेरैं,
अफरस तू हि जु शव्द न प्रेरैं।
अग अभयो जु अविक्त गुसांई,
अक्रिय रूपी अमन असांई ॥३८॥

अभिप्राय सु जाकै नही कोऊ,
अभिप्राय जु ज्ञायक इक होऊ।
अपर अपार अजड़ अरनाथा,
अकर अवक्त वि अतिवडहाथा ॥३९॥

तू अविकार अनंजन स्वामी,
तू अनगार अरंजन सांमी ।
अति अधिकार जु एक तुही है,
गति गति ज्ञायक ज्ञायक तूहि सही है ।।४०।।

अवधिगम्य च साय हमारा,
सर्वाधिक्य सुरूप तुम्हारा ।
अक्षातीतं अक्षवितीतं,
अक्षरवीतं परमप्रतीतं ।।४१।।

अक्षर तू अक्षर तैं न्यारा,
अक्षर भासत जगत उधारा ।
अति दुषहर अघहर अभिनंदी,
अति भरपूरण एन निकंदी ।।४२।।

तू जु कर्तृम देव अनादी,
अतिभव कंदन एक अवादी ।
अकलित अखिलित तू जु अनुत्तम, *
तू अतिभार अभार जगुत्तम ।।४३।।

अत्युत्तर तू नाथ अत्युत्तम,
सुखतर उत्तर तू जु जिनुत्तम ।
अभयकरण अतिधरण अनंता,
अजित जिनेश्वर श्रीभगवंता ।।४४।।

अतनु विदार अनंगस्वरूपा,
अतनु जु कहियै कांम अरूपा ।
अनघ प्रचार अहित हत तू है,
अचर अचार अभंग प्रभू है ।।४५।।

---

* अनुत्तम कहतां महा उत्तम सारा उत्तम जिह पाछैं छै ।

तू जु अनंग विवर्जित सांई,
ब्रह्म स्वरूपी देव गुसांई।
असत वितर्जित शील जु तूही,
अदयावर्जित जगतप्रभूही ॥४६॥

अनृतवर्जी अदितवितर्जी,
तू जु अहिंसाप्रेर अगरजी।
अदतन लेवा तू जु अकिंचन,
तू जु अलोक निवार निरंजन ॥४७॥

तू जु अहिंसाराय अमाया,
हिंसावर्जित धर्म्म बताया।
अतत अमत तें सहित जु नाथा,
अदत निकंदा तू वडहाथा ॥४८॥

अमरेश्वर पूजित जिनदेवा,
अहपति गोपनि धारहि सेवा।
चतुर निकायक पायक तेरे,
अर्कपती हरि तिमर जु मेरे ॥४९॥

अहमिंद्रनि करि तू जु पुजानां,
तू अमरेंद्र इंद्र भगवांनां।
अहिपति अधिपति सुरपति जेते,
तव दासनि के दास जु तेते ॥५०॥

*अतिहित अघहत अहिपति तू,
अभगत अतिगति अतिछति जति तू ॥५१।

---

* इसमें अंतिम पंक्ति नहीं है।

अधिपति तू हि जु ओर न कोई,
अवितथ अविगत अवहित होई।
अखलित अचलित भाव जु तेरा,
तू जिनवर जतिवर सब केरा ।।५२।।

तू अरिहंता अर्हं जु मिता,
तू जु अनंता श्रीअरहंता।
अर्हंत तू जु अविद्याहारी,
अर्क अनंत समोद्युति धारी ।।५३।।

तू जु अनंत सुदर्शी ईशा,
तू असपर्शी एक अधीशा ।
अर्द्ध सु चक्री वंद्य तुही है,
तू जु त्रिखंडी नाथ सही है ।।५४।।

अखिल जु चक्री वंदहि तोकौं,
चक्रपती पति दै शिव मोकौं ।
अखिल सु मंडलिका नृप सेवैं,
अनगारा मुनि तोहि जु लेवैं ।।५५।।

अणुव्रत धर श्रावक जे स्वांमो,
तोहि जु पूजहि तू गुणग्रांमी ।
अव्रत समकित धर थुत तू ही,
अमरासुर पूजित्त जगदूही ।।५६।।

असुरसुरा सब तोहि जु ध्यावैं,
अपछर गणसुर धरि गुण गांवैं ।
तू अभिध्येय विकासक देवा,
तू अभिधांन प्रकास अछेवा ।।५७।।

तू अभिधाता अतिगणपाता,
तू जु प्रमाता नाथ अधाता ।
अतिगुण-पूरा अतिसयधारी,
अतिभवदूरा निकट विहारी ।।५८।।

अमरांणी इक तोकौं वंदै,
इक भव धरि वह कर्म निकंदे ।
अमरेस्वर अमरांणी दोऊ,
शची सुधर्मा तो मय होऊ ।।५९।।

अब्रह्मनिंदक अधिक जिनंदा,
ब्रह्मचर्य धर तू जू मुनिंदा ।
अवला निंदक तू जु प्रभूजी,
अवल विलोकइ तू जु विभूजी ।।६०।।

तू जु अगृद्ध सुगृद्धि न तेरै,
अति जु अकिंचन रंच न प्रेरें ।
परम अकिंचन प्रकट करेवा,
अदुरित रूप जु अदुरित देवा ।।६१।।

अवला-तजक अलंपट ज्ञांनी,
अवला अधमपुरी परवांनी ।
अदयावर्जित श्रीपति स्वांमी,
अदया नर्कपुरी पदगांमी ।।६२।।

अधम पुरुष अदया कौं लागैं,
त्यागि अहिंसा पापहि पागैं ।
ते सठ लहहि न शिवपुर वासा,
दुरगति भोग लहैं अघदासा ।।६३।।

अदया अदतन अबला जाकै,
अनृत अब्रह्म गद्धि न ताकै ।
परम अकिंचन है भगवांनां,
अवला संग न जसुधन धानां ॥६४॥

तू जु अशील तणौं अवहाला,
शील स्वरूप अरूप अहीला ।
दु जति हीला एद न तेरै,
शील निरूपक एनन प्रेरै ॥६५॥

तू जु अकेला कर्मदहंता,
तू जु अचेला एक अनंता ।
तू जु अकिंचन मूल गुसाईं,
तू जु अलंध्य असंधि असांई ॥६६॥

तू जु अजंघा वज्र सुजंघा,
तू जु अलंघा किनहिन लंघा ।
तू अभिलाष विवर्जित ज्ञांनी,
अंतरहित अंतरगति जांनी ॥६७॥

अतुल वली अतिभार धरैया,
अनत सुखी अतिभोग करैया ।
अन उपभोग प्रपूरण स्वांमी,
तू जु अयोगी जोग अकासी ॥६८॥

अति तिक्षाहर क्षम इक तूही,
तू जु अमांना अजित प्रभूही ।
तू जु अदंत्रि दंभ न जाकै,
तू जु अचंती कपट न ताकै ॥६९॥

तू जु अमार्दव नासक एका,
तू जु अनार्जव छंड अनेका ।
तू जु अदूज दूजि न तेरै,
अकपट अकपाट सु प्रभु तेरे ॥७०॥

तू जु अनूट अकंट गुसांई,
अनृतवर्जित धर्म्म करांई ।
नाहि अलीक सुशाशन तेरौ,
अतितिक्षा जिनहित जु घणेरौ ॥७१॥

जपैं अनार्जव नाश प्रवीनां,
तोहिन पावहि मार्दव हीनां ।
अनिवन भाव जु तो तैं लहिये,
असत अतत माया तैं रहिये ॥७२॥

तू जु अशौच प्रहार सु सूचा,
पूज अघातु अगात सु ऊचा ।
तू जु अजात न जातक काको,
तू जु अभूप प्रभु सुरमाकौं ॥७३॥

तू जु अनूप अनंद स्वरूपा,
दूरि नही तू दूरि अरूपा ।
तू जु असंयमहर यमधारी,
यम हारी तू संयमहारी ॥७४॥

संयम कारण तू अविकारी,
अति संयमवरनाथ अपारी ।
तू विभूयम भर निय स्वरूपा,
अनियमहारी तप जु प्ररूपा ॥७५॥

अति तपकर अति तपधर स्वामी,
अति तपभर अति तपहर नामी ।
अति तप अनशन आदिक प्रगटा,
अति तप–ज्वर–रोगादिक विघटा ।।७६।।

अति तप विनिंदक अति तप भाया,
अनशन रूप अभूष अकाया ।
अदन नहीं तेरै कबहू जी,
अनशन भास कहै जु विभूजी ।।७७।।

अवमोदर्य प्रसंसक तू है,
तप तेजस्वी तू जु प्रभू है ।
अति वृतिपरिसंख्या क्षायक तू,
अति रसनायक सब लायक तू ।।७८।।

तू अतिरस अर रसपरित्यागी,
अतिरित शय नाशन तप भागी ।
तू विविक्त शय्यासन देवा,
तू जु अकायक लेश अभेवा ।।७९।।

अति हि कायकौं क्लेश देनां,
संकलेस भाव नविलेनां ।
छह विध वाहिर तप तू भाषै,
छह विधि अंतर तप हू राखै ।।८०।।

तू अपवित्र जु भावन राखै,
तू जु पावित्रा तम रस चाखै ।
तेरे प्रायश्चित नहि होई,
पाप लगै नहि तोहि जु कोई ।।८१।।

अभ्यंतर तपों का वर्णन—

तू प्रायश्चित तप दायक है,
तू जु जिनिंदा मुनिनायक है ।
अविनय रूप जु धर्म न तेरा,
विनयप्रकासी तू जु घणेरा ॥८२॥

तू अविनय मुनि कंदक ईशा,
विनयमूल जसु धर्म अवीशा ।
तेरो विनय जु सबको करई,
वे नयभासक तू भवहरई ॥८३॥

अतिथिनि कौं आदेशक तू ही,
अतिथिनि को पति एक प्रभू ही ।
तू जु अवैया व्रत्त करेवा,
अवरनि कौं इह तप जु कहेवा ॥८४॥

अतुलित संयमभर अतिरंगी,
अनघ अचंभी अकलितरंगी ।
अति थुति योग्य जु जे मुनिराया,
वहजु अपूजक तिन करि ध्याया ॥८५॥

अरति विहंडी रतिपति दंडी,
अवगुण छंडी अविनय खंडी ।
अति स्वाध्यायी जे मुनिराजा,
तिन करि ध्येय सदा जिनराजा ॥८६॥

अति पूरण वह आप जिनंदा,
अति श्रुतधारक अति श्रुत इंद्रा ।
अति श्रुतपूरण श्रुति जु उलंघा,
केवल रूपी देव अलंघा ॥८७॥

अति व्युतसर्ग उदेश कराई,
अति व्युतसरगी मूल गुसांई ।
अतिशय ध्यांनी अतिशय ज्ञानी,
अनुपम शुकल प्रपूरण ध्यांनीं ॥८८॥

अध्ययनो ध्यानो इक तेरौ,
ध्यान रूप तू पति सब केरौ ।
अतित्यागी अतिभागी देवा,
अति त्यागोत्तम आप करेवा ॥८९॥

अत्याकिंचन मूलविभू है,
धर्मराज तू एक प्रभू है ।
आप अकिंचन सर्वसु जापैं,
इह अदभुत गति देख कु तापैं ॥९०॥

अपवर्गा कहिये जो मुक्ती,
तू मुक्तीश देहु मुझ भक्ती ।
सर्वसमूहा सर्वमई तू,
सर्व रिद्धिधर कर्म्मजयी जू ॥९१॥

अतिहि सथूला है जु निरंजन,
सिद्धि वृद्धि भरवह जु अकिंचन ।
ब्रह्मचर्य तैं लभ्य जु सोई,
ब्रह्ममई मूरति जु सुहोई ॥९२॥

अतनु विदार जु आपकारा,
काम जु दाइक काम प्रहारा ।
तू जु अध्यातम सार अनादी,
अध्यातम देव कई अवादी ॥९३॥

अति भव चूरण अति जगनाथा,
मयणजिती अजित जितहाथा ।
तू जु अध्यातम मूल प्रसिद्धा,
अविरुध अनिरुध अनुभव सिद्धा ॥६४॥

अखिल सुनायक देव अनाथा,
अखिल सुदायक आप असाथा ।
अखिल सुज्ञायक आप अलेखा,
अखिल सुव्यापक आप अभेषा ॥६५॥

अखिल सुकारक कारक नांही,
अखिल सुधारक अखिल जु पांही ।
अखिल सुतारक अखिलाचारा,
असुचि विडारा अतिगति भारा ॥६६॥

अनघ अधारा अतनु प्रहारा,
अति जगसारा भुवन उजारा ।
अकलक लोइक नाथ अभू है,
अवधि जु कंद अनंद प्रभू है ॥६७॥

अनत अपार करम गण हरिया,
अखिलप्रकास अतुल गुण भरिया ।
तू जु अशक्य विवर्णन सांई,
शक्ति नांहि को वर्ण करांई ॥६८॥

अलख निरूपक एक तुही जो,
तू जु अवाच्य अनिर्णय ही जो ।
तू जु अकथ्य परुपण सांई,
अलभ सुमहिमा जगत गुसांई ॥६९॥

अखिलाकारा अखिलाधारा,
अखिल स्वरूपा अखिल सुभारा।
अगम प्रतिष्टा नाथ अपारा,
अखिल जु भूपा अखिल जु पारा ॥१००॥

अति सुखकारा अमरकरा,
अखिल सुसेवित स्वांमि अधारा।
अनत सु ज्योतिस्वर मुनि प्यारा,
अनत सुरश्मी तिमिर प्रहारा ॥१०१॥

अनुभव मूरति तू जु कृपाला,
निज अनुभूति स्वरूप दयाला।
तेरी परणति गुण अनुभूती,
तेरी शक्ति जु व्यक्ति प्रसूती ॥१०२॥

अनवरतं जु निरंतर तू ही,
व्यापि रह्यौ सरवत्र समूही।
अनिशं नाम तिहारौ स्वामी,
जपिहैं ते नर हौंहि अकांमी ॥१०३॥

अविरतिनाशक वृत्ति स्वरूपा,
अविरत अवृत्त रहित अनूपा।
अव्रत त्यागि तोहि जै ध्यावैं,
ते जगजीवन तो मोहिं आवैं ॥१०४॥

असि आऊसा मंत्र सु तेरा,
कर्मकलंक हरौ सव मेरा।
असि आऊसा जिन जन जपिया,
माया मोह महा तिन क्षपिया ॥१०५॥

वारिषेण औ विष्णुकुमारा,
वज्र कुमार महामुनि प्यारा।
ए अष्टातम अंग स्वरूपा,
तू सबकौ शिवदायक भूपा ॥११८॥

इनमैं कैयक तदभव तारे,
कैयक जन्मांतर जु उधारे।
जब तारै जब तू ही तारै,
तो विनु औरन कर्म निवारै ॥११९॥

अष्टाह्निका महात्म्य—

अष्टम दीप नाम नंदीश्वर,
ता महि तोहि जु पूजहि सब सुर।
वर्ष एक मैं तीन जु वारा,
कार्तिक फागुण सुचिव सुवारा ॥१२०॥

अमल पक्ष मैं तीन अठाई,
अंतिमु वसु दिन पूज कराई।
अष्टमि सौं ले पूनिम तांई,
निति निति पूज करैं अधिकाई ॥१२१॥

अष्ट दिवस कौ व्रत तैं भाख्यौ,
अष्ट गुणनि परि द्रिढकरि राख्यो।
सिद्ध चक्र है नांम जु यांकौ,
या करि पइए पति कमला कौ ॥१२२॥

सम्यक्त्वादि अष्ट महा जे,
गुणी प्रभू तो मांहि लहाजे।
तिनकौ इह व्रत अठ दिन करहीं,
ते शिव गति अब सुरगति वरही ॥१२३॥

अष्टाह्निक तुव गुण व्रतस्वामी,
तू अष्टातम ऊरध धामी ।
अष्टाह्निक व्रत करि जब ध्याये,
कोडीभड को कोढ़ गुमाये ॥१२४॥

अति ताकी पतिवरता वाला,
कोडीभड नरपति श्रीपाला ।
जलनिधि मैं कोडीभड तारे,
फेरि भवोदधि तैं जु उधारे ॥१२५॥

अखिल ऋद्धि भड कौ तुम दीनी,
इह तुम्हरी महिमा जग चीनी ।
अष्ट चक्रव्रति तैं ही तारे,
अष्ट हली तैं ही जु उधारे ॥१२६॥

चौ चक्री इकवल तारैंगो,
आप समान करी धारैंगो ।
अष्ट भेद लौकांतिक देवा,
तुव जपि पावैंगे भव छेवा ॥१२७॥

अठ विधि लौकांतिक कौ आयू,
अष्टहि सागरतैं हि बतायू ।
अठ विधि ऋद्धि लहैं तुव भक्ता,
तू जु अष्ट विधि कर्म विमुक्ता ॥१२८॥

अठ विधि योग प्रकाशक ईसा,
अठ विधि पूजा जोगि अधीशा ।
अष्ट प्रकारी पूज करैं जे,
तेरी जिनवर अष्ट हरैं जे ।
अष्ट हरौ हमरे हरि देवा,
अष्ट गुणादे हो जु अछेवा ॥१२९॥

अति गति देव अगति गति देवा,
अतिपति नाथ न जानूं खेवा ।
अतिजुग ईस अतुल जग पेवा,
अतिजित जीत न सकिहूं सेवा ॥१०६॥

अति जति स्वामि अलंकृत रामां,
अक्षर रूप अनक्षर नामां ।
अति मुनिपाल अतुल सुखधामां,
अति अघटाल अनंदित कामां ॥१०७॥

अति रति त्यागक अति गुणनाथा,
अतिहित स्वामी अखिल सुख साथा ।
अति मतिधीश अनत वड़हाथा,
अकरम अकरण रूप असाथा ॥१०८॥

अनुभव रूप अधिक सुखकारी,
अभय जु मूल परम रसधारी ।
अति दुखहरण सु नांम तिहारा,
अतिभव दूरि करो जु हमारा ॥१०९॥

अति सुखिया अति श्रीयुत राया,
अनुभव मात्र जु आगम गाया ।
अचल असंखि प्रदेश जु ईशा,
बोध प्रमाण सदा जु अधीशा ॥११०॥

अदभुत गति तेरी जु गुसांई,
तू जु अजान अकारक सांई ।
तू जु अकर्त्ता कर्त्ता कर्मी,
तू जु अभुक्ता भोगक धर्मी ॥१११॥

अधिक सुखासुख रूप विराजा,
अति आनंदमई भव पाजा।
अतिशीली अतिभाव जगीसा,
अतिशर्मी शिवमूल अनीशा ॥११२॥

अति धननाथ अनादि अनंता,
अच्युत अगणित श्रीभगवंता।
अमित जगत दुखहरण दयाला,
अखिल दया परदेव कृपाला ॥११३॥

अतिशय सागर अखिल जु पीवा,
अनुपद्रित अति शिवसुख दीवा।
अति पापिष्ट जु जे नर स्वामी,
तोहि न पूज हितू जु विरामी ॥११४॥

अवनीपति पूजित बडभागा,
अजस निवारक देव विरागा।
तू हि अनंतमती सुजिनिंदा,
तूहि अनंतगती सु मुनिंदा ॥११५॥

अष्ट अंग समकित के तूही,
भाषै जिनवर गुण जु समूही।
अष्ट अंग के धारक जे हैं,
ते सबतैं ही ख्यात किये हैं ॥११६॥

अंजन और अनंतमती जो,
राव उदायन कर्म्म हती जो।
रेवती राणी जिनवर भक्ता,
फुनि जु जिनेंद्र भक्त जिन रक्ता ॥११७॥

अवगम भूषित देव अकाया,
अष्ट धरा कौ तू इक राया।
अष्ट सुसम्यक दर्शन ईशा,
अष्ट जु सम्यक ज्ञान अधीशा।
तेरहि विधि चारित्र जु होई,
सब कौ भासक तू जिन सोई।
त्रयी रूप है तू जु अभेदा,
एक रूप तू सर्व सुवेदा ॥१३०॥

अष्ट सिद्धि अर नव निधि द्वारै,
तेरै कु भी अर जुगु दारै।
तू वसु ऋद्धि मूल जग स्वांमी,
तू वसुधा महि अदभुत धामी ॥१३१॥

अठविधि प्रवचन माता जे हैं,
पंच समिति त्रय गुप्ति गने हैं।
अष्ट शुद्धि धारक मुनि भक्ता,
तू जु अष्ट विधि कर्म विमुक्ता ॥१३२॥

अष्टम गुण थानक तैं श्रेणी,
उपशम क्षपक रूप सुख देनी।
उपशय वारे द्वै इक भवलैं,
क्षपक विहारे तद्भव शिवलैं ॥१३३॥

अष्टम गुण नीचैं नहि शुक्ला,
इह तेरौ उपदेश जु अकला।
चौथौ गुण सौं सप्तम तांई,
धर्म ध्यान नही होइ जु सांई ॥१३४॥

अष्टम सौलै चउदम लौ फुनि,
शुक्ल ध्यांन ही धारहि वर मुनि ।
पहिलौ शुक्ल जु ग्यारम लौं ह्वै,
दूजो शुक्ल सु बारम को ह्वै ॥१३५॥

तेरम चौदम भगवत रूपा,
परम शुक्लमय त्रिभुवन भूपा ।
तीजौ शुक्ल सयोग अवस्था,
चौथौ शुक्ल अयोग व्यवस्था ॥१३६॥

सिद्धि दशा मैं ध्यान न कोई,
धारण ध्येय ध्यांन निज होई ।
धरम शुक्ल द्वै शिव के दायक,
आरति रुद्र कुजन्म भ्रमायक ॥१३७॥

इह तुम्हनैं उपदेश जु दीनौ,
सो सम्यक्ती जीवनि चीनौं ।
मोकौं देहु धर्म अरु शुक्ला,
आरति रुद्र निवारौ विकला ॥१३८॥

अष्टम धरपति अंतरजामी,
अष्टम धर दाय अभिरामी ।
अष्टापद है तेरै थांनां,
तू अष्टकपति शिव ततिरानां ॥१३९॥

अष्टापद तैं भूषित कीयो,
अष्टापद तैं शिवपुर लीयो ।
अष्टापद कैलास जु गिर है,
ताकौ पति तू ऋषभ सुथिर है ॥१४०॥

अष्टापद व्याघ्रादिक दुष्टा,
तुझ दासनि परि ते नहि रुष्टा ।
अष्टापद कंचन हू कहिये,
कंचन त्यागि जु तोहि जु गहिये ।।१४१।।

अष्टमि चउदशि कौ व्रत देवा,
तू ही जग मैं मगर करेवा ।
तू अष्टांग डंडवत योझा,
अष्टक स्वामि अद्वंद अरोझा ।।१४२।।

अठमल सम्यक के तू नासै,
तू अध्यातम रूप विकासै ।
नैकत सर्व्व स्वरूप तुम्हारा,
अतिमित दोष हरौ जु हमारा ।।१४३।।

अष्ट भेद हैं वितर देवा,
तिन मैं इंद्रादिक वसु भेवा ।
योतिष सुर जे पंच प्रकारा,
एउ शक्रादिक अठ धारा ।।१४४।।

भवनपती दश भेद कुमारा,
सुर्ग निवासी दोय प्रकारा ।
सुर्गपती अर भवनपती जे,
तिनमैं इंद्रादिक दश लीजे ।।१४५।।

त्रायसत्रिसत लोक जु पाला,
योतिष वितर तैं ए ठाला ।
भव नर सुर्ग मांहि दश भेदा,
तेईसौं अहमिंद्र अभेदा ।।१४६।।

सब देवन्नि कौ तू ही देवा,
सब करि पूजित एक अभेवा ।
अठ विधि तेरैं एकन दीसै,
तू अठविधि अठविधि विधि पीसै ॥१४७॥

यम नियमाशन प्राणायामा,
प्रत्याहार सुधारण नामा ।
ध्यान समाधि जु अष्ट प्रकारा,
तू जु प्रकासै रहित विकारा ॥१४८॥

सहस अठारह शील अधीशा,
मोकूं शील रूप करि ईसा ।

तू जु अनंत गुणातम ज्ञांनी,
शैलेसी किरिया परवानी ॥१४९॥

अष्टादश जे कोटाकोटी,
सागर भोगधरा जब लोटी ।
तब प्रगटे श्री ऋषभ जु देवा,
कर्मभूमि विधि प्रगट करेवा ॥१५०॥

दश क्षेत्रनि मैं कलप जु हौंही,
ठारा दोय वीस इतनौंही ।
ठारा भोग दोय है कर्म्मा,
वसि जु कोडाकोडि स्वधर्म्मा ॥१५१॥

अवसर्पिणी उतसर्पिणी दस दस,
सागर वीस जु कोडा कोडिस ।
काल अनंत भये अर ह्वैंगे,
लोक लोकपति यों जु रहैंगे ॥१५२॥

पंच भरत ऐरावत पंचा,
　　इनमैं ह्वै भू सुख दुख संचा।
दश क्षेत्रनि मैं रीति न एका,
　　और ठौर है एक विवेका ॥१५३॥

सर्व जु भेद कहै जिन तू ही,
　　तू अमितातम कलप समूही।
अष्टादस नहि दोष जु तेरैं,
　　ए वड दोष लगे सव केरैं ॥१५४॥

गुण रूपो तू परम प्रधानां,
　　सर्व दोषहर मोख विधानां।
अष्टादश कोटी जु तुरंगा,
　　त्यागहि चक्री होय इकंगा ॥१५५॥

तेरह रंग रागि निज रंगा,
　　भंग भूति तजि होहि अभंगा।
सहस अठाइस रांणी जाकै,
　　देव विद्याधर अनुचर ताकै ॥१५६॥

सो रावण विषयनि मैं पागौ,
　　जगत भूति तजि तोहिन लागौ।
तदभव मुक्त भयो नहि तातैं,
　　अधमपुरी लहि पाई घातैं ॥१५७॥

तो महि पागि होयगौ मुक्ता,
　　जव ध्यावैगौ ह्वै जु विरक्ता।
अष्टाविंसति मूल जु सुगुणा,
　　तिनके धारक मुनिवर निपुणा ॥१५८॥

सर्व मुनीश्वर तेरे दासा,
दास उधारक तू जु उदासा।
अठवीसा है मोह प्रकारा,
ते सव चूरि किये तैं भारा ॥१५९॥

गुण यंत्र जु मैं ते सव पीसे,
ग्रैसो तू जु अधीस जगीसे।
लाव अठवीसा देवल तेरै,
पूजै सुर्ग सुऋद्धि घणेरे ॥१६०॥

अष्टविंसति हैं जु अपिंडा,
प्रकती भेद जु चउदह पिंडा।
चौदह के ह्वै पैंसठि भेदा,
एवै मिलि ह्वै त्रिणवै वेदा ॥१६१॥

नाम कर्म के ए जु विकारा,
ज्ञानावरण सुपंच प्रकारा।
दर्शन ग्रावरणी नव भेदा,
ग्रंतराय फुनि पंच विवेदा ॥१६२॥

द्वै मोहो ह्वै ग्रष्टावासी,
तीन मिथ्यात कषाय पचीसी।
वेदनि कर्म जु दोय गनेसी,
ग्राऊ चौंविधि तू जु हनेसी ॥१६३॥

गोत्र कर्म ह्वै नीचर ऊचा,
दोय प्रकार जु सूच असूचा।
ग्रष्ट कर्म ए दायक भैहें,
कवहू तो महि नाथ न ग्रैहैं ॥१६४॥

अष्टनि के से अर अटताली,
तैं सब भेव हरे भ्रमजाली।
तू जिन कर्म हरो हर अवसा,
वशकीये तैं त्रिभुवन स्ववशा ॥१६५॥

जीव समास जु हैं गुन्नीसा,
पूर्णोतर गुनिये अढ़तीसा।
सबको रक्षक तू जु जिनेश्वर,
सब भेदनि तैं रहित शिवेश्वर ॥१६६॥

अठतीसाँ परि एक अधिक ह्वै,
कल परकल पातीत्त भेद द्वै।
सब ऊरध लोकहि कै ऊपरि,
तेरौ वास जु है सबकै सिरि ॥१६७॥

नाहि वासनाँ तो मै कोऊ,
वासदेन हारौ इक होऊ।
अठतालीसौं काव्य जु तेरी,
भक्तामर की ऋद्धि घनेरी ॥१६७॥

ते निवसौ मेरे घटि देवा,
मानतुंग दुख दूरि करेवा।
एक ऊन अडतालीसाजे,
घातिक प्रति अति मलिन महाजे ॥१६८॥

ते सब नासहि तेरे भक्ता,
तू सौ अर अठताल विमुक्ता।
चौबीसौं माता अरताता,
ए अठताल तो थकी ख्याता ॥१६९॥

अट्ठांवन के आधे स्वामी,
गुणतीसौं रतनत्रय नांमी ।
ते सब भेद देहु किरपा करि,
फुनि अभेद रूपो करि भवहरि ।।१७०।।

एक घाटि करिये जु अठांवन,
जीव समास जु ह्वै सत्तांवन ।
जीव रक्षरणा तेरौ पंथा,
तू योगीश्वर रहित जु गंथा ।।१७१।।

* एक अधिक अढ़सठि सौ उपरि,
ए निश्चै पावैं शिव भवतरि ।
कैयक तदभव कैयक जन्मै,
पावैं तुव पर ह्वैतो तन्मैं ।।१७२।।

अढसठि वर्ष जु ऊपरि एका,
गुणहत्तरी जीवी जु विवेका ।
एकादशमौं रुद्र जु स्वामी,
पारवती प्राणेश्वर नांमी ।।१७३।।

तोहि ध्याय हासी तो सरिषा,
तू तीर्थंकर पूरण पुरिषा ।
अढसठि के आधे चौतीसा,
येहैं अतिशय तो करि ईशा ।।१७४।।

---

* १६६ जीव–मोक्षका अधिकारी छै—२४ तीर्थंकर, २४ पिता २४ माता, २४ कामदेव, ६ वासुदेव, ६ प्रतिवासुदेव, ६ नारद, ६ वलभद्र, ११ रुद्र, १४ कुलकर १२ चक्री—

[मूल प्रति की टीका]

अढसठि तीरथ भौतिक न्हावैं,
तो विनु शिव पुर पंथ न पावैं।
अठहत्तरि के आघे देवा,
ऊरध लोक सु प्रथम कहेवा ॥१७५॥

गुणतालीसौं नाहि जु जाचौं,
ऐसी करतो मै हरि राचौं।
अस्सी मंदिर तेरे स्वामी,
पंचमेरु मै हैं अभिरामी ॥१७६॥

षोडस षोडस एकक सुरगिर,
धारहि तेरे सौध सदाथिर।
कै अस्सी कै इक्यासी जो,
कै चउरासी पच्यासी जो ॥१७७॥

प्रकति अघाती तेरम ठाणैं,
तू सव भेद भाव परमाणैं।
असी करो मोसौं जिनराय,
नई नई नहि धारौं काय ॥१७८॥

तेरी निजदासा प्रभू ह्वै कैं,
आऊं तुंव पुरि जग जल दैकैं।
अठयासी के आघे देवा,
चउ चालीसा टारि विभेवा ॥१७९॥

मद मूढत्व अनायत नाजे,
संकादिक अर भय विसनाजे।
पंच अतीचारा प्रभु टारे,
द्वैवीसी द्वै दू अघसारे ॥१८०॥

ए समकित के शत्रु जु पापा,
मोतैं सकल निवारि सु आपा ।
अठयासी तैं तीन घटै जव,
प्रकति पच्यासी निवल महासव ।।१८१।।

त्रेसठि नासि जु केवल पावै,
पच्यासी तजि तो महि आवै ।
जीव समास अठ्याणव सेती,
छुटि करि सीझै प्रकति सुरेती ।।१८२।।

है अठ्यांणव जीव समासा,
जग वासिनि के भेद निरासा ।
तू ही ख्यात करै जिन स्वांमी,
सवकौ पालक अंतरजांमी ।।१८३।।

पंच जु थावर चउदह भेदा,
तिन मैं च्यारि सु अष्ट विवेदा ।
पृथ्वी जल अर अगनि जु वायू,
सूक्षम वादर अष्ट गिनायू ।।१८४।।

नित्येतर सूक्षम अर वादर,
द्वै प्रत्येक मिले षट थावर ।
अष्ट सुषट मिलि चउदश भेदा,
पूरण इतर अलब्ध जु वेदा ।।१८५।।

चउदह कौं तिगुणें जव करंही,
द्वै वीसी द्वै अधिके धरहीं ।
द्वै सुर द्वै नारक गनियैं,
पूरण इतर गनैं चउ भनियैं ।।१८६।।

विकलत्रय पूरण अर इतरा,
फुनि जु अलब्ध मिलें नव चितरा।
मनुज तणें नव भेद सुनौं अब,
षट अर तीन मिलै ह्वै नव सब ॥१८७॥

भोग कुभोग मलेछ जु खंडा,
पर्यापित औ इतर जु मंडा।
अरिजखंड मांहि द्वै भेदा,
गर्भज सन्मूर्छन जिन वेदा ॥१८८॥

गर्भज होय सुदोय प्रकारा,
पूरण इतर सही निरधारा।
सन्मूर्छन अलबधही होई,
षट द्वै इक मिलि तव विधि सोई ॥१८९॥

पंचेंद्री पसु हैं चउतीसा,
तिनके भेद कहे जु जतीसा।
कर्मभूमि के समनां अमनां,
गर्भज जलचर थलचर गगनां ॥१९०॥

पर्यापत औ इतर गनौं ए,
द्वादश सूत्र प्रमांण मुनौ ए।
फुनि सन्मूर्छन समनां अमनां,
जलचर थलचर नभचर गमनां ॥१९१॥

पूरण इतर अनद्य मिलैं जब,
ह्वैं दश आठ गिनैं जु भेद सब।
भोगहु भोगभूमि के समनां,
नभचर थलचर द्वै द्वै गमनां ॥१९२॥

अलवध गर्भज मैं ह्वै नांही,
जलचर नांहि जु भोग धरांही।
बारा ठारा द्वै द्वै सब ए,
चउतीसा पसुहे हैं अब ए ॥१९३॥

वैयालीसा नव चौतीसा,
पच्यासी तिरयंच गतीसा।
नव मनुजा द्वै सुर द्वै नारक,
इन सब भेदनि तैं तू फारक ॥१९४॥

अठ अधिका निवै तू भाषै,
सर्व समासा तू ही राखै।
पच्यासी नव चउ जब मिलहीं,
द्वै कम इकशत जब सब रहहीं ॥१९५॥

ए त्रस थावर भेद सबै ही,
भये होंहिगें हैं जु अवैही।
जिनवर तू सब कौ प्रतिपालक,
श्री भगवंत सकल दुख टालक ॥१९६॥

इन भेदनि तैं मोहि निकासै,
शुद्ध रूप कर प्रभु अविनासै।
इनकौ रक्षक करि हरि मोकों,
इनतैं रहित करहु तुझ धोकौं ॥१९७॥

सोरठा

ठारा बारा च्यार ए, चउतीस जु भेद पशु।
नौ विकलत्रय धार, वैयालीस जु थावरा ॥१९८॥

नौ मनुजा द्वै देव, द्वै नारक ए ठ्याणवै ।
इन में तेरी सेव, करहि तिके ही श्लाध्य जी ॥१९९॥

ए सव ही अति खेद, जगत निवासी अति दुखी ।
जो जन ह्वै निरवेद, खेद रहित ह्वै शिव लहै ॥२००॥

जीव रषिक जो साध, सो पावै जगदीस कौं ।
करही जीव जु वाध, वह रुलिहै संसार मैं[1] ॥२०१॥

छंद वेसरी

अष्टोत्तर शत हैं मणि काजैं,
माला के तुव गुण गणि काजैं ।
तिण करि तोहि जपैं जे जीवा,
ते ताकौं पावैं जग पीवा ॥२०२॥

पण तीसाक्षर षोडश अंका,
षट अर पंचाक्षर चतुरंका ।
द्वै अर इक अक्षर के नामा,
तेरे जाप जपैं सुख धामा ॥२०३॥

अष्टोत्तर शत पाप निवारैं,
तोहि भजैं ते आप उधारैं ।
ते अष्टोत्तर अघ हैं कैसे,
जीव विषै कर्दम हैं जैसे ॥२०४॥

संरंभो च समारंभो जी,
आरंभो है अघ खंभोजी ।
ए त्रय पापा मन वच कायै,
नव भेदा ह्वै गुरु समझायें ॥२०५॥

---

१ इसका नाम वेक्षरी में दिया है ।

नव कौं कृत कारित अनुमति,
करिति गुन करें सत्तवीस ठीक धरि।
चउ कषाय तें गुणियें ते सब,
अष्टोत्तर शत ह्वै अघ ए तव ॥२०६॥

ए सब पापा दूरि पुलावैं,
जब गुण मणिका कोय फिरावैं।
अघहारी तूं अमृतधारी,
अमृत रूपो पतित उधारी ॥२०७॥

हरिसौं अर अठतार जु मेरे,
केवलदै वंदौ पद तेरे।
अष्ट तणों सौ अर अठताला,
हमरे घातक टारि विशाला ॥२०८॥

पंच शरीर गनें ए तेही,
पंद्रह गनें अधिक दश एही।
टारि जु हमरे सौ अरठांवन,
अपनौं वास देहु मन भांवन ॥२०९॥

वरष अढाईसै जब वीते,
पारसनाथ पछैं जु अतीते।
तब प्रगटे श्री जिनवर वीरा,
वर्द्धमान अति गुणह गंभीरा ॥२१०॥

तिन सब रीति वसी ही भाषी,
जैसी तेवीसनि नैंराखी।
चौवीसम अंतिम जिनस्वामी,
सनमति नाथ जु अंतरजामी ॥२११

अर्क विमान जु योजन अठसै,
मनुज लोकथी ऊपरि निवसै।
ससि मंडल है अठसै अस्सी,
ससि सूरिज सव तोहि नमसी ॥२१२॥

ससि अर अर्क जु तेरै वसि है,
तू त्रिभुवन पति सव कौ ससि है।
तारागृह नक्षत्रादिक जे,
तेरे दास जु शक्रादिक जे ॥२१३॥

योतिगकौं इंद्र जु है चंदा,
अर्क प्रतिदौ अह्नि करंदा।
सातसैकरे अर निवैगनि,
योजनतारा मंडल जो फुनि ॥२१४॥

मनुज लोक थी इह जु विचारा,
नव सत योजन योतिप धारा।
योतिष कौं मंडल दससौ परि,
योजन तारागण तें ऊपरि ॥२१५॥

सर्व ज्योतिसी तेरे दासा,
ज्योतिरूप तू परम उदासा।
अष्टाधिक दश सत शुभलक्षण,
तेरे कहियै तू जु अलक्षण ॥२१६॥

अष्टोत्तर शत लक्षण स्वामी,
नवसै विंजन जे अभिरामी।
ते सव धारहि तेरौ वपु जो,
तू परमातम शिवपद पथजो ॥२१७॥

अयुत लक्ष कोट्यादिक गिनती
अमम अटट भासक तू सुजती ।
अमित अनंत असंख जु एका,
संख्या नांहि सुत्तू जु अनेका ॥२१८॥

उदधि असंख असंखि जु दीपा,
तिन को दीपक तू अवनीपा ।
अस्सी चउ अधिका लख जौंनी,
मेरी मेटि जु पकरन मौंनी ॥२१९॥

अगणित जीवा तैं जु उधारे,
अगणित कर्म्मा तैं जु पछारे ।
अहिकौं अहिपति कौ पद दीयौ,
अगनि जरत जिह नाम सुनीयो ॥२२०॥

अहि-पतनी पदमावति कीनी,
दोऊनैं अति भक्ति जु चीनी ।
अहितारे अजहूं सुरकारे,
तोसौ तू ही अमर अधारे ॥२२१॥

चारुदत्त दोयो तुव नांमी,
अज पायो सुरलोक सुधांमी ।
जीवक सेठ सुनायो मंत्रा,
नमोकार नामा शिवतंत्रा ॥२२२॥

मरत सुन्यौं स्वानैं चितधारी,
अघतै रहित भयो शुभकारी ।
अति पापातम सार जु मेया,
तोतैं सुर पद सुख वहुलेया ॥२२३॥

अति असपरस जु चंडालादिक,
तो तैं शिव पायो धरि भव इक ।
अरणि निवासी जे मुनिराया,
अवनी तज तैं मुक्ति पठाया ।।२२४।।

अभयातम तू देव अभेवा,
अभय कुमार कियो जु अछेवा ।
अर्चितनाथ जु अर्चा तुम्हारी,
अर्चैं ते नर पावैं अमरी ।।२२५।।

अमरपुरी सुख भोगि वहुत जुग,
नर ह्वै अमरण हौंहि रहित रुग ।
अष्ट जिती ध्वनि तुम्हरी जिनपति,
जे ध्यावैं निजि मनि तजि सव छति ।।२२६।।

ते निज निश्चय पाय स्वरसरति,
पहुचैं लोक शिखर तजि जगतति ।
अब्जोपमक्रम देव तुम्हारे,
अलि सम सुर नर मुनिवर कारे ।।२२७।।

तजि अभिमांन जपैं जे जग जन,
ते अवनीधर पांवहि पद जिन ।
अनुचर होय जु सेवहि तोही,
त्यागि अहंकृत भाव विमोही ।।२२८।।

अनुचर तारक एक तुही है,
तू अपवर्ग जु दायक ही है ।
एक अनुभित भाव सु भू है,
तु जु अहंकृत रहित प्रभू है ।।२२९।।

अर्जुन पांडव तैं जु उधारयौ,
द्रुपद सुता कौ सब दुख टारयो ।
धर्मपूत अर भीम उधारे,
नकुल सु सहदेवा निजकारे ॥२३०॥

अनिरुध कुमर प्रद्युमन पूता,
पूत पिता तैं कीनें पूता ।
अवधिनाथ तू अनवधि स्वामी,
अनरन भूप सुतारक नामी ॥२३१॥

अनरन रावसु रघुपति दादा,
तुव भजि मुक्त भयो तजि कादा ।
अतिवल खगपति महवल ताता,
तुव भजि सिद्ध भयो अति पाता ॥२३२॥

अपर अकंपन राव उधारा,
मेघेस्वर कौतूहक तारा ।
राव अकंपन कासीराया,
श्रीसुलोचना तात कहाया ॥२३३॥

मेघेस्वर हथनापुर कौ पति,
पति सुलोचना कौ शिव सुखतति ।
नाथ वंस अर सोम जु वंसा,
तैं जु उधारे तू जु निरंशा ॥२३४॥

तव परसाद भये वै राजा,
तव परभाव किये निज काजा ।
अर्कपति तू अर्क उधारा,
तू अर्केन्द्र अर्क गण तारा ॥२३५॥

अर्ककीर्ति कौं मुक्ति जु दीनी,
अर भरतेस थकी भलकानी ।
दिक्षा लेत जु भरथ उधारचौ,
अग्रज चक्री पार उतारचो ।।२३६।।
अग्रेश्वर तू सबकै आगैं,
सुर नर मुनिजन तुव पद लागैं ।
अप्रधान तू आप प्रधानां,
सकल सुज्ञायक श्री भगवानां ।।२३७।।
अ कहियैं जग मैं हरिहर कौं,
ते ध्यावै केवल पदवरकौं ।
हरि नारायण हर जो रुद्रा,
इनको भेद न जानहि क्षुद्रा ।।२३८।।*
हरि हर मुनिवर जिनकौं ध्यावैं,
जिन विनु जग जन जन्म गुमावैं ।
अन्य नारि सम मिथ्या परणति,
जो मै धारी सठमति दुखतति ।।२३९।।
सो मेरी मेटौ जग नाथा,
निज परणति कौ देहु जु साथा ।
पर परणति तैं मै दुख पायौ,
आप विसारि सु जन्म गमायौ ।।२४०।।
अमित अपार जीव तैं तारे,
ते मोपैं किम जांहि सम्हारे ।
पैं गुर की सुनि वांणी स्वामी,
कैयक भाषे भाषौं नामी ।।२४१।।

---

* भावार्थ—हरि कहतां वासुदेव अथवा हरि कहता इंद्र अर हर कहतां रुद्र सो ए सारा केवल अवस्था नैं ध्यावैं छै। [मूल प्रति की टीका]

अग्निभूति अर वायु जु भूति,
सालिग्रांम ग्रांम मैं सोती ।
पहिली मुनि सौं वाद ज कीनौं,
पाछैं तेरौ धर्म जु चीनौं ॥२४२॥

ते दोऊ तैं स्वर्ग पठाये,
वनके अशुभ समस्त उठाये ।
अग्निभूति तैं सप्तम भव मैं,
कृष्ण पुत्र ह्वै आये तुव मैं ॥२४३॥

अग्निभूति कौ जीव जु मदनां,
भयो प्रद्युम्न मदन जु कदनां ।
वायुभूति भौ शंबु कुमारा,
दोऊ तुव भजि उतरे पारा ॥२४४॥

अवर विप्र ह्वै ते द्वै भैया,
कौसांबी नगरी जु वसैया ।
जेठौ वन मैं अगनि जु भूती,
लहुरौ सठमति वायु जु भूति ॥२४५॥

पहले तोकौं तन मनि ध्यायो,
जिन मारग कौ गुण बहु गायौ ।
तातैं तेरैं शिवपुर आयौ,
सूरमित्र गुर कौ मन भायौ ॥२४६॥

दूजै तोकौं ध्यायो नांही,
भयो गुरद्रोही जग मांही ।
कोढ़ी ह्वै मूवो सो पापी,
भयो गदहरी अति संतापी ॥२४७॥

सूरी ह्वै फुनि कुकरी हूवो,
महादुखी ह्वै वह जन मूवो।
भयो अंध चिंडाली देहा,
जिन तुमसौं कौनौं नहि नेहा ॥२४८॥

ह्वै चिंडाली तुव गुन भायो,
अगनिभूति कौ सबद सुहायौ।
नागश्री नामा द्विज पुत्री,
भई धर्म रुचि अति हि पवित्री ॥२४९॥

सूरमित्र के सुनि जिन वैंना,
तुम ध्याये त्रिभुवन पति जैना।
तुम परसाद षोडशम सुर्गा,
तिन पायो प्रभु वहु सुख दुर्गा ॥२५०॥

फुनि सुकुमारी सेठ ह्वै स्वांमी,
तुमकौं ध्याय भयो वहु नामी।
अति उपसर्ग जीति वह ध्यांनी,
गयो जु सरवारथसिद्धि ज्ञांनी ॥२५१॥

इक भव धरि वह तो मैं मिलिहैं,
तेरो दास न जग मैं रुलि है।
तेरे दास अनंतहु उधरे,
तोकौं पाय वहुत जन उवरे ॥२५२॥

अमरपती है तेरौ दासा,
इक भव धरि पावै शिव वासा।
वसु विधि लौकांतिक सुर ऋषि जे,
इक भव धरि पावै ऋषि गति जे ॥२५३॥

अहमिंद्रनि तूही धारेगौ,
नव पंचानुत्तर तारैगौ ।
अमरांगी जु शची है देवा,
भव अंतरि पावै भव छेवा ॥२५४॥

दाहिण शक्रा लोक जु पाला,
तुव जपि पावै पद जु विशाला ।
असन पांन खादिमनहि तेरै,
क्षुधा त्रिषा नहि तोहि जु घेरै ॥२५५॥

अस्त्रादिक अर भूषन कोई,
वस्त्रादिक तेरे नहि होई ।
अदन भक्ष कौ नांम जु कहियैं,
तेरै असन वसन नहि चहियै ॥२५६॥

अहमेवादिक तो मै नांही,
तू जु अहंकृत रहित महांही ।
अहंकार अरमान न तेरै,
दूरि करौ लागे प्रभु मेरै ॥२५७॥

दोहा

अहंकार मय इह जगत, याकौ त्याग सुमोष ।
इह तुम्हरौ उपदेश है, उत्तम गुणगण कोष ॥२५८॥
त्यागि अहंकृति जिन तुझै, ध्यायो दीन दयाल ।
तिनि पायो तू गुणमई, निर्गुण परम कृपाल ॥२५९॥
कुमर अशोक रु रोहणी, तेरे भक्त अनन्य ।
ते अशोक धरतैं कियै, अति सुखिया अति धन्य ॥२६०॥

अरजन पूत जु अधमनां, नाव अभिमनां जास।
सो तेरे परसाद तैं, पायो अमर विलास ॥२६१॥

अकलंक को निकलंक द्वै, भाई जिनमत दास।
तिनकी तुम राखी कला, कियो बोधमत नास ॥२६२॥

कुमर अभैरुचि अभमती, भाई वहन सुजांन।
ते तुम कीनैं आपुनें, धरे पंथ निरवांन ॥२६३॥

अद्भुत तोसौ को नहीं, जग दातार जगेस।
मोहू दीजै मोख मग, सुनि विनती सुजिनेस ॥२६४॥

तू अनादि अनिधन प्रभु, तू अविक्त अतिविक्त।
अहमिंद्रनि कर अर्च्य तू, तू अतिंद्र जग तिक्त ॥२६५॥*

तू अमूर्त दर्शी प्रभू, अर अगाध भवपार।
अतिगाहन तू गहन हर, मोहू पार उतार ॥२६६॥

तू अलक्ष लखिया विभू, तू अगम्य गम को जु।
जे अगम्य गम काज ना, अव होलक तिन कौ जु ॥२६७॥

जे अभक्ष भक्षक जना, तिनकौ निंदाकार।
जे अतत्व रोचक नरा, तिनकौ नाहि उधार ॥२६८॥

अहो अहिंस्य स्वरूप जौ, परम अहिंसा कार।
सदा अहिंसक देव जौ, करै सकल उपगार ॥२६९॥

अहो रात्रि मुनिवर जपैं, जाकौं ते निज रूप।
पावैं अल्प जु काल में, वह मुनि पति जग भूप ॥२७०॥

अह्नि विषै भोजन करैं, पिवहि नरजनी नीर।
अहिन विषै मैथुन तजै, तुव मत रत गृहि धीर ॥२७१॥

---

* प्रति में २६६ संख्या नहीं है, पर हमने क्रमशः संख्या दी है। इसी कारण आगे ३०० की संख्या में एक छंद कम रह गया है।

अह्नि दिवस कौ नाम है, तू ही जिनवर अह्नि।
कर्म काठ जाल न परो, जो इक दीसै वह्नि ॥२७२॥

छंद वेसरी

[1] तत्व अनेहा अविहित स्वामी,
अचल अखंडित अखलित धामी।
अगणित द्रव्य अरूपी जोई,
अचर अमूरति अमर जु होई ॥२७३॥

अतुल अदेशी एक प्रदेशी,
प्रचुरातम जड रूप अलेशी।
अणु भरिताखिल लोक निवासी,
काल द्रव्य जो अकल अभासी ॥२७४॥

समवरती जो है जु असंखा,
वर्तन लक्षन अलख अकंखा।
द्रव्य सुगुण पर्याय समूहा,
वह जु अनांमी सर्व जु दूहा ॥२७५॥

काल चक्र [2] परणति है ताकी,
पर्यय रूप कदापि न थाकी।
तामैं हौं भरमत हौं नाथा,
दीनांनाथ गहौ मुझ हाथा ॥२७६॥

---

१ अनेहा कहता काल [मूल प्रति की टीका]

२ व्यवहार परणति काल की समय घड़ी प्रहर दिन रात्रि इत्यादि छै अर निश्चै परणति षटगुणी हानि वृद्धि छै [मूल प्रति की टीका]

कालचक्र तैं मोहि उवारे,
अपनौं वासदेहु गुण भारे।
तो विनु काल न किहिन जीते,
कालनाथ तू काल अतीते ॥२७७॥

[1] अणु खंधा नहि तो मैं कोऊ,
चेतन तू जु अमूरति होऊ ॥२७८॥

अणु द्रव्यं खंधा पर्याया,
फरसादिक गुण वीस वताय॥।
ते गुण मो तै टारि जु स्वामी,
निज गुण दें व्यारचौं अभिरामी ॥२७९॥
केवलदर्शन केवलज्ञाना,
केवलवीरज सौख्य प्रवाना ।
[2] इनहि आदि दे अमित जुदै हो,
अपनौं करि अपुनै पुर लैहो ॥२८०॥
अणु कालाणु अर पुगलाणु,
दुहु कौ ज्ञायक तू जु प्रमाणु ।
मिलन शक्ति तैं रहित जु एका,
दूजी मिलत जु शक्ति अनेका ॥२८१॥
अमर तूहि शिव तोतैं होवैं,
अमरासुर नर तुव मुख जोवे ।
देव सकल कहिवे के अमरा,
अमर सही तूं कवहूं न मरा ॥२८२॥

---

१ इस छन्द की संख्या का चरण १ पंक्ति का ही है ।

२ प्रति में पुनः संख्या १ से शुरू की गई है; पर हमने इन छन्दों की संख्या लगातार क्रमशः ही रखी है, जवकि कई स्थलों पर संख्या में ऐसा अवरोध पाया है गया । लगता है प्रतिलिपकार ने पुनः इनको सुधारा नहीं है ।

अनत सु अधिकाधिक्य तुही जो,
अनत सुदिन करते जसही जो।
अनत निशाकर जीत नियंता,
अनत होकर रस्मि जयंता ॥२८३॥

अतत विवर्जित ईश अकेला,
असुधि वितर्जित धीश अचेला।
वस्तु अशुद्ध न तों मैं पइए,
केवल शुद्ध रूप तू गइए ॥२८४॥

नांहि अनातम भाव जु तोमैं,
हरहु अनातम भाव जु मो मैं।
तो विनु आतम भाव न लहिये,
तजें अनातम तोहि जु गहिये ॥२८५॥

अस्ति करंता अस्ति धरंता,
तू अस्तित्व स्वरूप अनंता।
तू अनाप्त भावनि तें न्यारा,
तोहि अनाप्त न पांवहि प्यारा ॥२८६॥

अस्ति जु काय पंच हैं स्वामी,
तिनकौ भासक तू जु अनांमी ॥
अस्ति निरूपा अस्ति अधारा,
अस्तिर नास्ति स्वरूप अपारा ॥२८७॥

अस्ति नास्तिकौ प्रगट जु ईशा,
अस्ति नास्ति धर है जगदीशा।
अमित प्रदेशी गुण जु अनंता,
गुण पर्याय स्वभाव धरंता ॥२८८॥

अखिल प्रदेशी सिद्धि स्वरूपा,
अतिसय थूल असाध्य अनूपा।
तू अप्राकृत देह जु स्वांमी,
तु जु अवाध्य अराध्य अरांमी ॥२८९॥

तू जु अभक्त सुभक्त न काकौ,
तू सु प्रभु तारक भगता कौ।
तू जु अनाकृति आकृति रहिता,
अकृत [1] अकृति वोध जु सहिता ॥२९०॥

तू जु अरुंधा अचर अचंपा,
वोहथ भवकी तू जु अभंपा।
अखिलातम अकुलातम स्वामी,
अकलातम अमलातम नांमी ॥२९१॥

अचलातम अजडातम भूपा,
अमितातम अमितीस अनूपा।
अगती [2] गती दायक तू ईशा,
असित भाव वर्जित जगदीसा ॥२९२॥

अन्न औषधी शास्त्र जु अभया,
ए चउ दांन कहै तू विभया।
अन्न पांन निरदूषण लैकैं,
तोहि जु ध्यांवैं निज मन दैकैं ॥२९३॥

ते संता पावे तत तेरा,
तू निरदूषण भूषण मेरा।
अन्न वीण अर जलहि जु छाणा,
इह तेरौ मत है जु प्रवाणां ॥२९४॥

---

१ अकर्तृम छै १ अकपट छै १ [मूल टीका]
२ अगति गति मोक्ष कौ नाम छै जहां सौ फेरि गति नहीं।

अन्न जला विनु और जिकेही,
जिह्वा स्वाद जु होइ तिकेही।
ते नही स्वादें तेरे भक्ता,
अन्न वारि ले तो महि रक्ता ॥२६५॥

अणु भोजन ले तोहि जु ध्यावें,
सर्व स्वाद जै दूरि वहावें ।
ते निज स्वाद लहैं निज भक्ता,
जिन रस चाखि जु विषय विरक्ता ॥२६६॥

छंद पाधरी

अरिविंद चक्षु अरिविंद पाय,
अरिविंद हस्त अति गंध काय।
अरिविंद वदन जगजीत देव,
मधुकर मुनि सुर नर असुर सेव ॥२६७॥

अतिनंदानंद अनंद देव,
अति अकथ अपूरव असम टेव।
अतिनाथ जु देव अनंत नाम,
अतिसाथ जु एक अनंत धांम ॥२६८॥
अतिहाथ अछेव अवेव वेव,
अणुमति अमती किम योज्ञ सेव।
अतिहित जु अनंत अनंत ज्ञांन,
अतिमित जु अनंतानंत मान ॥२६९॥ ×

× ३०० पद्य पूर्ण होने में हमारे क्रम में १ संख्या कम पड़ती है। वह पद्य संख्या मूल प्रति में २६६ सं. वाली नहीं है। इस प्रकार हमने अपने क्रम में अवरोध नहीं किया है।

अति अतुल अनंतानंत रूप,
अति अमल अलिप्त जु लोक भूप।
मति श्रुति अवधी अर तुरिय ज्ञान,
धारी मुनिहू नहि सकहि गान ॥३००॥
अनुमति की कौंन जु वात देव,
इक नाम अधार जु देव देव।
इह विनति जु धारहु दीनवंधु,
लेहो निज पुरि अर हरहु वंध ॥३०१॥

छंद भुजंग प्रयात

अनंतर्द्धि सिद्धि तुही देव देवा,
अचिंतर्द्धि वृद्धि तुही नंत भेवा।
अमेयर्द्धि पूरं असंख्येय स्वामी,
अनंदित्व भाव तुही सर्वजांमी ॥३०२॥
सर्वस्य अग्रो तुही अग्रनाथा,
तुही अग्रिमो अग्रजाता असाथा।
तुही अग्र अग्रेश्वरो ईशराया,
तुही पर्म तत्वं अरूपी अकाया ॥३०३॥
अलेषो अभेषो अलेशो अशेशो,
अहेयो अमेयो अदेहो अदेसौ।
अडंको अटंको अनंको अवंको,
असंको अरंको अकंपो अपंको ॥३०४॥
अगाधो अवाधो अनंगो अभंगो,
अनामो अकामो अरंगो असंगो।
अपापो अपुन्यो अनेको अछेपो,
अनाथो अजोगो अभोगो अलेपो ॥३०५॥

अरोगो असोगो अगंधो अवंधो,
अमोधो अचित्यो अकोपो अनंधो।
अदीनो [१] अनीनो अछीनो अहीनो,
अरीसो अनीशो अलीनो निलीनो ॥३०६॥

अलिगो अदंभो अमोहो अदोही,
अधीशो अतीशो अछोहो अकोहो।
अखंडो अडंडो अफंदो अछंदो,
अरूढो अमूढो अनंदो अमंदो ॥३०७॥

अनादी अनंतो अवेदो अभेदो,
अबादी शसंतो अरागो अखेदो।
अदोषो असोषो विमोषो अकोषो,
अनोषो जु चोषो अरोषो अधोषो ॥३०८॥

सोरठा

तू जु अफरसो देव, अरसो अरजो विरज तू।
तू जु अद्वंद अछेव, अतिलीनी अतिधर्म्म तू ॥३०९॥

छप्पय छंद

अतिरामो अभिराम तू जु अतिदान अनंता।
अतिधामो अतिशुद्ध तु जु अतिबुद्ध प्रसंता ॥
अतिशांतो अतिनाम तू जु अतिगूढ सुरूढा।
अतिरूढो अवदात तू जु अतिरंग अगूढ़ा ॥
अत्युदार अनगार तू अत्युधार जगदेव है।
अत्युदात अतिचंग तू जु अनंत अछेव है ॥३१०॥

---

१ अनीनो कहतां जिहकौ कोइ धनी नहीं, आप ही धनी छै।

अतितातो अतित्रात तू जु अतिवीर प्रवीरा।
अतिपातो अतिसार तू जु अतिचार अनीरा।।
अतिधीरो अतिमित्र तू जु अतिस्वामि अनादी।
अतिरूपो अतिभूप तू जु अतिपूत अवादी।।
अधिकारी अतिरम्य तू अति सु पुन्य अवधूत है।
अभिचारो अतिशूर तू अति चूर जु अतिभूत है।।३११।।

अतिपति तू अति ऊंच तू जु अतिसौच अनंदा।
अतिपूरण अतिवुद्धि तू जु अतिदूर अफंदा।।
तू अमरामर देव ज्योति मय तेरो रूपा।
सर्वज्योति जितदेव तू जु अतिछति जिनभूपा।।
तो सौ तू ही देव है और न देव कदापि कौ।
तू पूरण परमात्मा भगवानो जु उदापि कौं।।३१२।।

तू जु अहिंसा शक्त त्यक्त अदया सव तूही।
तू अनृत परिहार करण सव गुण जु समूही।।
सव परि तू जु दयाल नांहि कर मनि परि जैनां।
अमृत तुल्य महान नाथ तुव अदभुत वैनां।।
अदत प्रत्यक्त जु तू सहीं अब्रह्म तिक्त सुब्रह्म तू।
अवध अवाध्र अकिंचनो परमेश्वर पर ब्रह्म तू।।३१३।।

अपरद्रव्य कौं त्याग वस्तु तैं तेरें स्वांमी।
अनृतमाया जाल तासु कौ लेशन कांमी।।
अमला कमला पासि पासि रूपा नहिं कमला।
वहिरंगा नैं दूर तू जु अंतर लछि विमला।।
तू श्री व्यक्त अभीत है, अलभ अभाव अगृद्धि तू।
अवध निरूपो गुण मई, ऋद्धि वृद्धि धर सिद्धि तू।।३१४।।

तू जु अरोर अरोग तू जु श्रीयुक्त अनंता।
तू श्रीवांन जिनेस रहित अवला अरहंता।।

अनुभूती जो लछि ओर को लछि जु नांही ।
तू अनुभूति स्वरूप वह जु तोही कैं मांही ।
व्रतरूपो समधार तू अक्रिय भाव वितीत है ।
क्रिया रहित तू अक्रियी कूटस्था जगजीत है ॥३१५॥

तू अघ छेदक देव तू जु है अतत विहंडी ।
असत विहंडक तू जु पूज अभिनंद अखंडी ॥
अति व्रह्मेश्वर ईश धीश तू है जु अरूपी ।
परगट रूप दयाल एक तू ही जु अनूपी ॥
अति यतिभूपो अतिशयी अतिशय रूप अनूप है ।
अतिगति रूपो अतिधृती अतिचंद्र जु अतिभूप है ॥३१६॥

अरति वितीते तू जु पूज तू अनय वितीता ।
तू जु अपुण्य वितीत पुण्य पापनि तैं वीता ॥
रहित अनीति सुनीति तत्वनि नीत जु तूही ।
तू अपराध वितीत जीत तू कर्म समूही ॥
सदा जु अरीति अनीति ते अधरम ते न्यारौ तू ही ।
तू जु अनाशामय जिती अमतविजीत कहै सही । ३१७॥

अमति कुमति नहि संगि, संगि तेरै निज वोधा ।
अगति उधारक देव तू जु निजरत्त अति सोधा ॥
अतिक्रम वितिक्रम नांहि नांहि तेरै अति चारा ।
अणाचार को लेश नांहि तेरै जु लगारा ॥
तू अति चारु मनोज्ञ है अनुचरगण तेरै नही ।
अनुक्रम क्रम नहि पाइए, नांहि अनारज तो मही ॥३१८॥

अशुभ वितीतसु तू जु पूज तू असुधि विजीता ।
मोहतणी जु अनीक एक तैं ही सव जीता ॥
तेरैं नांहि अनीकनंत गुण ते जु अनीका ।
नीका ते जु दयाल नांहि को तिन समनीका ॥

कहैं अनीक जु फोज कौ नीक अनीक जु गणनिकी।
तू अनीकधर गुणमई आशा पूरहि मुनिनि की ॥३१९॥

सप्त अनीक जु धार इंद्र है तेरो दासा।
षट् सेनाधर चक्रिदास कौ होय जु दासा॥
अवर सकल नृप च्यारि धारंही सेना स्वामी।
तू सबको पति ईश एक वड भूप अनामी॥
तो समसेना तो कनै, अवर ठोर दीखै नहीं।
तू अनीकपति एकलौ अमित अनीक जु तोमहीं॥३२०॥

तू जु अलीक न होय तोहि नहि लहहि अलीका।
अव्रत त्यक्त दयाल तू जु है नाथ सुनीका॥
अतिशयवंत अनंत तू जु जिन अति मुनिनाथा।
अनुचित वीत अभीत एक तू अमित जु साथा॥
अतिरित भूपो अतिव्रती अतिविरतो अवनीप तू।
अकरम देव अतिहितू एक एव जगदीप तू॥३२१॥

अतिसय सागरनाथ सकल अन्याय अतीता।
तू जु अमंत्रि अमंत्र मंत्रमय तू जु अजीता॥
नाहि अमात्य[1] जु कोह होय तेरै दरवारा।
दुर्गकोट को नांहि आप दीषै इक भारा॥
तो सौ रावल तू सही अजड अकर चिनमय प्रभू।
एक रावलौ रावरौ और नांहि रावलक भू॥३२२॥

अभिजित जतिपति तू जु पूज अति नगन स्वरूपा।
अतिशर्म्मातम देव तू जु अतिशय वडभूपा॥
अतिशय तंत्र जु एक अवर नहि तो विनु अतिशय।
तू अतिभूति विशालनाथ तू रहित सकल भय॥

---

१ अमात्य कहता परधांन। मूल प्रति की टीका।

अविहित मिथ्यामत सर्वे विहित शिवागम सार तू ।
जिन आगम भासक विभो अस्ति नास्ति नयधार तू ।।३२३।।

तू अतिभूमि क्षमा जु क्षांतिधर एक तुही जो ।
तू अप तुल्य[1] दयाल पापमल नाशक ही जो ।।
तपति हरण अति अमल जीव सम तू जग जीवन ।
अनल[2] समो भगवान दहन कर कर्म महावन ।।
अनिल[3]समो विनु संग तू महाबली हुत भुज सखा ।
वात वलय आधार जो लोक सकल दायक सुखा ।।३२४।।

तू अभतुल्य[4] अलिप्त तू जु अभमांन अमांनो ।
नभ है तेरे मांहि तू जु नभ मांहि वर्षानो ।।
अनुपम मांनो तू जु पूज तू अचलपती जित ।
अकल समांनो नाथ अकुल सम तू जु जगत हित ।।
नांहिकिसी सौ पूज तू, अखिल सरीसौ हे प्रभू ।
ज्ञेयाकार अनंत जो ज्ञान भाव तेरै विभू ।।३२५।।

अर्कसमो अतिभास मोह तिमर जु कौ हंता ।
ममता रजनी मेटि वोध दिवस सु प्रगटंता ।।
भव्य कमल प्रतिफुल्ल कारण जो पथ चलावै ।
विषै विनोद मिटाय नादि सूते जु जगावै ।।
जीव जु चकवो मति प्रिया विषम विरह तिनकौ हरै ।
अभवि उलूका नहि लखैं, अर्क अमित द्युति तू धरै ।।३२६।।

अति जु अनंत प्रताप ताप नहि तेरै सवही ।
मिथ्या भवजु राहु तोहि वेठै नहि कवही ।।

---

१ जल तुल्य निर्मल शीतल छै । १ अप कहजे जीव कहजे जल कां नांम छै
२ अनल अगनि कौ नांम छै । [मूल प्रति की टीका]
३ अनिल पौंन को नांम छै । ,,
४ अभ कहता आकाश । ,,

वाकौ नांव जु मित्र तू जु है साचौ मित्रा।
अर्क नहीं तो तुल्य तू जु अति रश्मि विचित्रा॥
अक्षि करण अवगम मई, अहो अहोकर अरुण तू।
अजड भाव कर देव है, सेत न स्यांम न अरुण तू॥३२७॥

असु प्रांणनि कौ नाम तू जु[1] असुभृत् गणनाथा।
अतुल प्रमाण जु ईश, असम सम तू जु अनाथा॥
अगणित चंदर सूर नांहि नख द्युति सम तेरे।
अभमानो अभिमांन तू जु हरि साहिब मेरे॥
अवविन अविविन तो विषै, अतिविधि मूल जु तू जिना।
अतिगति ध्यान निदान तू, अतुलित शमकर तू दिना॥३२८॥

सोरठा

अति अविगति तू देव, गति गति कौ ज्ञायक प्रभू।
सुखदायक है सेव, अन्य न चाहैं अनत प्रभू॥३२९॥

छप्पय

जो जु अविद्या कंद तासु कौ है जु निकंदा।
अनूपम काय सु तू जु पूजि तू अखिल अनंदा॥
अति सुगम कहै तू जु देव तू अभव विडारी।
अभख भषक जे जीव तोहि पावैं न उधारी॥
अगम गमक जे पापिया तोहि न पामै नाथ जी।
अगम गमक फुनि जोगिया तजहि न तेरौ साथ जी॥३३०॥

---

१ असुभृत कहतां प्राणी जीव त्यांका गण समूह त्यांकौ नाथ छै।

[मूल प्रति की टीका]

तू अविज्ञेय अछेय नांहि परमादसु तो मैं ।
तू अप्रमत्त जिनिंद नित्य निवसै प्रभु मोमैं ।।
मैं परमादी मूढ नांहि लखीयो पद तेरौ ।
अविषय अतिशय रूप तू जु हरि तिमिर जु मेरौ ।।
जा करि तोहि लखों प्रभू, वहै दृष्टि दै साइयां ।
नांम अपार जु जासु के सो तू जगत गुंसाइयां ।।३३१।।

अतिठामो अतिग्राम तू जु अतिधाम अनामा ।
अतिहित मंत सु संत नांहि तेरै धन धामा ।।
अस्वादिक चतुरंग सेन तजि तोहि नृपाजै ।
ध्यावैं तन मन लाय होंहि प्रभु पति विटपाजे ।।
अष्टम धर लहि सासती सिद्ध भाव पांवहि तिके ।
सर्व त्याग तोहि जु भजैं, ह्वै तो सम जिन जन जिके ।।३३२।।

तू जू अगोचर नाथ एक गोचर केवल में ।
तू जु अनालस भाव नित्य निवसै देवल मैं ।।
अलंकार नहि कोय होय तेरै न अभूषन ।
भूख न प्यास न कोय नांहि को वसन न दूषन ।।
तू देवलमैं सिद्धलोक मैं है सही ।
घटि घटि अंतर सांइयां वसै अनाशक्तो तुही ।।३३३।।

सोरठा

अज्ञानादिक भाव नांहि जुतु त्रो मैं पाइए ।
ज्ञानमूल जगराव, तू अनंत भाव जु धरैं ।।३३४।।

तू जु अदर्शन नांहि, सदा सुदर्शन है प्रभू ।
दरशन तेरै मांहि, केवल एक अनंत धी ।।३३५।।

छंद वेसरी

अति तू भूषण अति निरदूषन,
अतिहि तृप्त प्रभु प्यास न भूषन ।
अति नीरै प्रभु मांनहु दूरन,
अति जड़ चूरन अति सुख पूरन ।।३३६।।

+अति जग पारग अति शिव मारग,
अति सु उधारक धर जिन मारग* ।।३३७।।

अति भू मोचक अतिगुण रोचक,
अति दुखरोधक अतनु असोचक ।
अति भू दायक, अतिगुण लायक,
अतिमुनि नायक अतिरस भायक ।।३३८।।

अतिक्षम क्षमकर अतियम यमधर,
अतिशम दमकर अतिजप तपवर ।
अति भू क्षमधर अति यतनाकर,
अति ×उपरमकर अति समताधर ।।३३९।।

अति भू पोषक अतनु विसोषक,
अतिजन मोषक अतिहित घोषक ।
अवगुण टारक समकित कारक,
अतनु प्रभारक अमन प्रचारक ।।३४०।।

अतिनर अतिभर अतिकर,
अतिवर अतिपर अतिचर अतितर ।
अतिचिर अतिथिर अतिगिर, अतिगुर,
अतिधर अतिहर अतिहरि जिनवर ।।३४१।।

+ शिव मारग कहतां-मोक्ष मारग, कल्याण मारग, [मूल प्रति की टीका]
* यह पद्य दो पंक्तियों का है । × उपरम कहतां वैराग्य । ,,

अतिसुख सागर अतिगुण आगर,
अतिनर नागर अतिजग जागर।
अति सु उजागर प्रभुरतनाकर,
सुर नर चाकर तू जिन ठाकुर ।।३४२।।

अतिभव ज्ञायक अनुभव दायक,
अतियुग चायक अतिसुर पायक।
अतिभव नाशक अभय प्रकाशक,
अतिगति भासक अभव विकासक ।।३४३।।

अतिमुनि कारक अतिमुनि तारक,
अतिमुनि धारक अतिमुनि पारक।
अति आर्याकर अति श्रावकधर,
अति समकित धर समकित धरकर ।।३४४।।

अतिभव भयहर अतिशिव सुखकर,
अति परमेश्वर अति भूतेसुर ।
अति सुग हर गति अति जु त्रिजगपति,
अतिछति अतिजति अतिमिति अतिगति ।।३४५।।

सोरठा

तू अनुकूल सदैव, प्रतिकूलो नहि क्वापि ।
दूजे ह्वै तोसौं दैव, अनुकूला ते भव तिरैं ।।३४६।।
अवग्रह ईहा आदि, भेद जिके मतिज्ञान के।
तू भाषै जु अनादि, तीन सतक अर तीस छह ।।३४७।।
अमन अतिंद्री तू जु, इंद्री और अनिंद्रिया।
तो महि नाही पूज, नाम अनिंद्री मन तणौं ।।३४८।।

अजर अजन्मा देव, तू जु अकर्मा राजई।
दै भव भव निज सेव, तू सु अभर्मा है प्रभु ॥३४६॥

तू जु अमर्मा देव, कर्म ठौर तेरै नही।
तू सव मर्म सुवेव, तू जु अचर्मा चर्म्म विनु ॥३५०॥

तू जु अश्रम्मा नाथ, श्रम खेद जु तो मैं नही।
भ्रमहर सुख तुव साथ, तू जु अवर्मा वर्म विनु ॥३५१॥

वर्म जु वगतर नाम, मर्म विना वगतर किसै।
तेरे आवै काम, तू जु स्वशर्मा रांम है ॥३५२॥

सवकौ रक्षक नाथ, तातैं सवको वर्म तू।
मरमी तू वड़हाथ, मर्म न छेदै कोय कौ ॥३५३॥

सवैया तेईसा

तू जु अमातृ अपितृक देव सदा जु अपुत्रक है जु अलौकिक।
तू जु अवंधु अवंधननाथ अवाधक एक महाजु अचौकिक ॥
तू जु असाधक साध्य स्वरूप अदंभिक ईश जिनेश अरौपिक।
तू जु अराधक तार अराध्य अनंध अखंध असंध अगौपिक ॥३५४॥

तू जु अवंचक अदंक नाहि, अनिंदित नंदित है जु अरंजित।
तू जु अनिंगित इंगित नांहि, अनंकित नाथ सदाजु अनंजित ॥
तू जु असंकित है जु अवंकित, देव अलंघित नित्य अगंजित।
तू जु अचंभिक है जु अमंदित, ईस अखंडित सर्व अघंजित ॥३५५॥

तू जु अनिंदक पूज अवंदक, नित्य अफंदक है जु अवंदक।
तू जु अखंडक वोध अमंदक, पाप निकंदक है जु अछदक ॥
तू जु अहंडक हैं जु अदंडक नाथ अछंडक नित्य अकंटक।
पुंस न नारि सुरो नवि मानव, ढोर न नारक तू जु अपंढक ॥३५६॥

तू जु अडंकित है जु अचंपित देव अझंपित नित्य अलंपित ।
तू जु अदंडित है जु अकिंचित नाथ अवंचित बोध विजृंभित ।।
तू जु अकंषित है जु असंखित ईश अविंचित राय अकंपित ।
तू जु अभैवृत स्वामि अखैहित एक अजैवित धीश निशंकित ।।३५७।।

तू जु अलुंटक तात अवंचक है जु अभंडक नित्य अभंजक ।
देव अचिंतक ईश अनंतक नाथ अरंजक भूप अषंडक ।।
पूज अभंजित स्वामि असंगित है जु महांध्रिप एक असंधक ।
संघ उधारक आप अकारक पार उतारक सूत्र अलंधक ।।३५८।।

दोष अमंडित है गुण मंजित नित्य असंचित ईश अरंजन ।
नाथ अटंकित तात अरंगित स्वामि अजंजित आप निरंजन ।।
नांहि विकार विभाव जु जामहि एक अनेक स्वरूप अकिंचन ।
नांहि लप्पो कछु जाय अनूपम द्वैत अद्वैत स्वभाव अभंजन ।।३५९।।

छंद अरिल्ल

लप्पो जाय नहि नाथ, तू जु अलपित सही ।
अलप बहुत नहि तू जु तू जु द्वै है वही ।।
अत्युज्जल तू देव, अभिक्षमी है विभौ ।
अत्युत्कर जगदीस, अतीयमी है प्रभो ।।३६०।।

अतितेजस अतिसीत अतिदमी अतिगुरु ।
अति ठाकुर अतिजीत, अतिसमी अति धुरू ।।
अतिसाहिब अधिकार, उपरमी तू सही ।
अति सागर विधि रूप, अति जती है तुही ।।३६१।।

अतिलायक अणगार, अणगारौ तू नही ।
तुही आगरौ देव, गुणनिकौ है सही ।।
अतिनागर निज रूप, गुणागर सांईयां ।
अतिजोगी जगजीत, अलेष गुसांइयां ।।३६२।।

अति जागर तू देव, उजागर ज्ञान को।
सोवै नांहि कदापि प्रभू है ध्यांन को॥
अटल भाव धर एक अचल भाव जु सदा।
अमल भाव जगदीस, मलिन नांही कदा॥३६३॥

तू जु अनंग विभाव, टार कोई सहै।
तु जु असंग स्वभाव सुधारक धीश है॥
तू जु अचिंत्य प्रभाव प्रभू है सासता।
तू जु अहिंस स्वरूप नांहि को नासिता॥३६४॥

तू जु अशुद्ध विभाव नाशनो ईश है।
सदा अभेद स्वभाव भासनो धीस है।
नांहि अभव्य स्वभाव, भव्य भाव जु नही।
तू शुद्धत स्वभाव परिणांमिक सही॥३६५॥

चौपई

तू हि अलंधि भाव भुषो जु, तू हि अपावन जन दूषो जु।
तू जु अमूरत भाव सुपषो, तू जु अधूरत भावा सषो॥३६६॥

तू जु अगोध भाव दंडोजु, तू जु अनित्य भाव षंडोजु।
तू अजडत्व विकासी देव, तू अचलत्व प्रकास अभेव॥३६७॥

तू जु अचिंत्य भाव करि भरो, तू जु अलक्ष भाव हैं वरो।
तू जु अलोक भाव कौ जांन, तू अवलोकन कर गुणवांन॥३६८॥

अखिल भाव भावक तू नाथ लोकाकास प्रमांण अनाथ।
तू जु अमोहत्वादि प्रधांन, अस्तित्वादिक गुणह निधांन॥३६९॥

तू जु अलोभत्वादि अधार, तू जु अधमगति तारनहार।
तू जु अधोगति हारी हरो, तू अरिचक्र विदारी अरो॥३७०॥

तू जु अशुभ गणटारक ईश, तू जु अशीलैं हीलक धीश।
तू अदयत्व विधाटक देव, अकर रोग वर्जित अतिभेव॥३७१॥

अखिल भोग डारक जोगीस, अखिल जोग टारक भोगीस।
मन वच काय तणें जे जोग, तिन तैं रहित अमित सुख भोग॥३७२॥

अखिल व्रत उपदेशक गुरो, अणुव्रत उपदेशकहू धुरो।
अखिल भूति दर्शिक भगवांन, निखिल भूति त्यागिक धनवांन ॥३७३॥

अतुल भाव फरसी मुनि भेस, अचल भाव दरसी जगतेश।
अमल भाव सरसीरुह सूर, सदा जु अविचल भाव सुपूर ॥३७४॥

अटल सु देवो अमल जु काय, अकल स्वज्योती अतुल जु राय।
अजड स्वरूपी विमल प्रभाव, अकर अकारक अकरण राव ॥३७५॥

अकरम और असंपर दान, परदर विनु कौले सनमांन।
तू निज अपादांन जगदीस, अधिकरणो भगवंत अधीश ॥३७६॥

पर षट्कारक तौ मैं नांहि, निज षटकारक तेरै मांहि।
तू कर्त्ता कर्म्मा निज क्रिया, संप्रदान तू है विनु त्रिया ॥३७७॥

तू निज शक्ति अपादानो जु, तू आधारो अधिकरणो जु।
अकरदाय तू अपर जु नाथ, अमलनाथ तू श्री जगनाथ ॥३७८॥

अमर छाय तू नहि मुरझाय, अमित छाय तू है जु अछाय।
अमर ध्येय तू अमित प्रभाव, असमकाय तू रहित विभाव ॥३७९॥

अतुल देव देवनि के देव, तेरी तुलना कोई न देव।
अखिल भाय तू अनत जु नाथ, जगत राय तू मुनिगण साथ ॥३८०॥

अखिल मात तू अखिल जु त्रात, अखिल तात जू अखिल जु पात।
असम धीर तू अखिल जु गात, तू जु अरूपी देव अजात ॥३८१॥

छंद त्रोटक

तू ही जु अनुद्धत देव अरं,
तू हि जु अनुज्झित भावचिरं।
तू ही अनया सो ईश परं,
तू ही अद्वितीयो धीरधुरं ॥३८२॥

तू ही सु अनाकाशो जु वरं,
तू ही जु अवैर करो विचरं।

तू ही जु अनावासो विहरं,
आवास वितीतो नाथ पुरं ॥३८३॥
तू ही जु अनुत्कंठो विथरं,
तू ही जु अनाभासो अजरं।
ईशो जु अनाविल है अपरं
धीशो जु अनाद्रित है अकरं ॥३८४॥
देवो जु अनाकुल भाव थिरं,
कर्म्मामय भैषज रूपसुरं।
नाथो जु अनाशक्तात्म गुरं,
पूज्यो मु अनातम विभावहरं ॥३८५॥
तू ही जु अवाधित सूत्रकरं,
तू ही जु असाधितसाध्यतरं।
तू ही जु अनुद्वेगो अजुरं,
तू ही जु अनौपम्यो अदुरं ॥३८६॥
अक्षय गुणरासी पति नगरं,
अत्ययनासो जिनपति सुगरं।
तेरी अवधारण योज्ञगिरा,
तू ही जु अपूरव रूप धिरा ॥
सर्वे जु अगोचर भाव जिके,
तू ही गोचर कर नाथ तिके ॥३८७॥
पावैं जु अनालस साध तुमं,
गावैं जु अनागस संघ तुमं।
तू ही जु अदूषित देवप्रभू,
तू ही जु अक्षोभित लोकविभू ॥
तू ही अतिभासी धीश जिना,
तू ही अतिभारी ईश दिना।
तू ही अतिभारी मांन जयो,
तू ही जु अचूको ज्ञान मयो ॥३८८॥
तू ही जु अविभचारी सुमुनी,
तू ही अधिचारी नाथ दुनी।
स्वामी जु अभूलो एक तुही,
भूलो सव जग जन औठ सही ॥३९०॥

छंद त्रिभंगी

जव लग्गि अतिंद्रिय बोध निरिंद्रिय,
इंद्रिय निंद्रिय रहित जिना।
जीवो नहि पावत तोहि सुतावत,
अखिलन पावत रूप दिना॥
तू ही जु अवाच्यो मुनिहि जु जाच्यो,
कितहु न राच्यो सर्वगुरु।
तू अखिल सुवाच्यो नाथ अजाच्यो,
निजरस राच्यो देवघुरु॥३९१॥

जो साधु अतंद्रा वसहिजु कंद्रा,
मत जिनचंद्रा दिढजु धरैं।
ते जपहि जु तोही,
ह्वै निरमोही छांडि सवोही ध्यांन करैं॥
तू है अनुभूती रूप विभूती,
नांहि प्रसूती क्वापि धरै।
अतिरिक्त विभावो शुद्ध स्वभावो,
अमित प्रभावो कालहरे॥३९२॥

तू है अकलंक को ईशचिदं,
को नित्य अपंको देवहरी।
तू असमजु नाथो है अति साथो,
अति वडहाथो रहित अरी॥
तू ही अपरा पर है जु मुधाहर,
पूज सुधाकर लोकपती।
प्रभुजी अतिपात्रो है अति छात्रो,
ज्ञानहि मात्रो शुद्ध जती॥३९३॥

तू अति भूतेस्वर है जु महेश्वर,
देव जिनेश्वर अतुल गुणो ।
तू अनत विधानो नाथ अमानो,
अतिगति दानो तत्व गुणो ॥
तू ही जु अरूपी अनत जु रूपी,
परम अनूपी बोधकरो ।
तू पात्र जु रहितो पात्र विमहितो,
निजरस सहितो कर्महरो ॥३९४॥

तू है अतिचारी जिन अविचारी,
अतिगति भारी धर्मपरो ।
है जु अविलीनो नाथ अदीनो,
नांहि अधीनो सिद्ध वरो ॥
देवो अति चेता मुक्ति सुनेता,
है जु प्रणेता चित्तहरो ।
अति ही मदहारी साधु सुधारी,
अमृतधारी मृत्य हरो ॥३९५॥

तू अति शम धारी अगरवतारी,
अति भवहारी शिव जु वरो ।
तू है अतिपारी अति अविकारी,
भव्य उधारी जिन विथरो ॥
तू अतिरित माया अतिरित काया,
अतिरित जाया क्षेत्र वरो ।
तू है अतिक्षेत्री सर्व सुवेत्री,
मोह विजेत्री जगत गुरो ॥३९६॥

तू प्रभु अवधूतो अतिहि जु पूतो,
है अभूतो भूत महा ।

तू है अतिकामो पुनि जु अकांमो,
रांम विरांमो नाम लहा ॥

अतिकर्म जु नाशा अति जु अनाशा,
रहित जु आसा संतधरो ।

जीवंनि कौ पालक दोष जु टालक,
कांम प्रहारक सर्व सुरो ॥३९७॥

दोहा

तू जु अनातंको प्रभू, है जु अनावे सोहु ।
पूजि अनादेशो तुही, व्यापि रह्यो जगि जोहु ॥३९८॥

तेरौ निर्मोता नहीं, रचिता जग मैं कोय ।
अनिर्मातृ भगवांन तू, अनिर्वाच्य को होय ॥३९९॥

अति भूतीश्वर असम तू, कर पात्रा जु महंत ।
तोहि जपै निज मात्र तू, विनु गात्रो भगवंत ॥४००॥

अतिजेता अतिभूप तू, अतिधर्मी अतिधर्म ।
अति जु भर्म रहितो तुही, अति शर्म्मी विनु कर्म्म ॥४०१॥

कवित्त

तू अतिकर्म जु टारक स्वामी,
शुभकर्मा नहि अशुभ जु कोय ।

अतिपुण्यो शुद्धत्व मात्र है,
तोसौ देव जु तूही होय ॥

तू अनघेशनाथ अतिछात्रो,
अतिरिक्तो छात्रनितैं सोय ।
तू अलपेशनाथ अति गात्रो,
अत्यंतो अत्यर्थ न दोय ॥४०२॥

तू अतिनाथ अतित जु पात्रो,
अति सुहितू अत्यंत जु भ्रात ।
अतिभृत्या तेरै जिनस्वामी,
अतिचेतन तू अमित सुतात ॥
अति जु अनंत भेदधर तू ही,
आप अभेदो है अनिपात ।
तू सामान्य विशेषातम है,
एकानेक जु भेद अजात ॥४०३॥

जो अतिक्रांति विश्रांति दयाला,
अरिहंता अतिशांत मुनीश ।
सुरनर मुनिवर खग तिरको मन,
हरै न चौरो अति जगदीश ॥
सांच झूठ जे जगत प्रपंचा,
जानैं सब अररहित जु रीस ।
जीव रसिक जो नासक कर्मा,
निरग्रंथो अति कमलाधीश ॥४०४॥

इह अदभुत गति देखहु तापैं,
सो अध्यातम धारसु सार ।
अध्यातमि कौ तारक देव,
असुधारिनि कौ है प्रतिपार ॥

अश्व जु स्पंदन हस्ति सुपाय,
कदेन हार सवकौ दातार ।
सव सेना ते रहित जु स्वामी,
सेनाधर सैवैं दरवार ॥४०५॥

अतिसै जगके दासन मांगै,
दै अतिशय चउतीस जु मोहि ।
अष्ट जु प्रातिहारहू दैहो,
केवल दै विनऊं कहा तोहि ॥
देहु अनंतचतुष्टय निश्चै,
तू अतिशय तन चिदघन होहि ।
अतिशय प्रातिहार नहि देतो,
अनंत चतुष्टय दै प्रभु सोहि ॥४०६॥

हूं जु अजांण जांन तू करई,
निज संपति दै श्री भगवान ।
अभ विन पावै तेरौ पुर जो,
तू भवितार कहै अति जांन ॥
तू जु अभीरु भीरू न पावै,
अभिध्येयो तू है अभिधांन ।
अहमेवादिक तो मैं नांही,
तू अभिधाता अनुपम भांन ॥४०७॥

तू अतिध्येय सु तू अतिज्ञेयो,
अप्रमेय तू है अतिभेय ।
अदभुत सार जु तू शिव सारो,
अतिशय सागर है जु अहेय ॥

तो सौं अतिशय धरण जु तूही,
और न दीसै जग मैं ज्ञेय।
मेरी इह विनती सुनि देवा,
देहु अभै पद निज मैं लेय ॥४०८॥

दोहा

अति थारौं आधार तू, अनत वसैं जगदेव।
अदभुत अध्यातम विमल, तु ही प्रकास अछेव ॥४०९॥

त्रिभंगी छंद

अथ अतिप्यास की ढाल—

अतिमतिकारा अतिश्रुतिसारा,
अवधि अधारा अतिधारा।
है अतिसुखसारा अमन अचारा,
अवगम*–वारा धर प्यारा ॥
है अति विचरइया अति विहरइया,
अति विथरइया अतिसारा।
है लक्षण गारा अतिशय कारा,
अतिसमवारा अतिप्यारा ॥४१०॥

अति ही वित भरिया अतिचित धरिया,
अतिगति हरिया अतिहारा।
है अत्युत्च्चंडा अति सुखपिंडा,
अगति विहंडा अतिप्यारा ॥

---

* अवगम कहतां ज्ञान

प्रभु अतिगति कहिया अतिरति रहिया,
अति गणधरिया अतिसारा ।
है अतिगुण धुरिया अतिभव तरिया,
अतियम हरिया अतिप्यारा ॥४११॥

अरति जु हरिया रंग सुकरिया,
संघ उधरिया अतिकारा ।
गुण संग न तजिया संग जु तजिया,
मुनिगण भजिया क्षम वारा ॥
जिन अतिगति पिंडा आप अपिंडा,
अव्रतछंडा अतिफारा ।
है अतनु सु दंडा व्रत नहि खंडा,
उपर मयंडा जनप्यारा ॥४१२॥

है अनघ अधारा अमग प्रहारा,
अगम अपारा अघटारा ।
है तथ्य सु धारा अवितथ धारा,
अविधि विडारा अतिप्यारा ॥
अति परगुण रहिता अति निज सहिता,
सुरनर महिता अतिपारा ।
है अतिरस रसिया, अतिगुण लसिया,
अवगम वसिया अतिप्यारा ॥४१३॥

अति अतिथि अधारा वितथ विदारा,
पथ्य सुधारा अतिसारा ।
है अतत विडारा अव्रत डारा,
अतिव्रत वारा अतिप्यारा ॥

अकलित अविरूपा अचलित भूपा,
अतुल अनूपा अतिवारा ।
है अनुभव कारा अतिभव हारा,
अकथ अपारा जिन प्यारा ।।४१४।।

अति अतिशय मंडा अनुशय छंडा,
सौख्य करंडा अविकारा ।
है अनुभव पिंडा अतिशय खडा,
अतिगति खंडा अतिप्यारा ।।

है अपगति खंडा अविगत पिंडा,
अतिहित मंडा अविधारा ।
है अति अघदंडा अति जु प्रचंडा,
कर्मविहंडा अतिप्यारा ।।४१५।।

है अविरति हारा विरति विहारा,
अतनु प्रहारा अणगारा ।
है भूति विथारा अखलित धारा,
अप्रमतवारा अतिप्यारा ।।

है अमित विथारा सार सुसारा,
अति जगपारा अतिचारा ।
है अतिक्रम टारा मल जु विडारा,
अदरस हारा अतिप्यारा ।।४१६।।

है अकर अकारा अजर जरारा,
अमर करारा अविचारा ।
है अतिगुण गारा अठमद डारा,
अविनयटारा अति प्यारा ।।

है अतिसुख वारा अकुलित डारा,
अतिशम धारा अतिगारा ।

अठदश जु हजारा शील प्रकारा,
अनतीचारा धर प्यारा ॥४१७॥

है अति तिक्षारो अतिक्षिम धारी,
अलख जगारी अतिभारी ।
है क्षरण क्षरण धारा आप सम्हारा,
ज्ञान अपारा धर प्यारा ॥
है अतिमद मारा अमद सुधारा,
अतिसै वारा जगतारा ।
है अतिसंवेगी नाथ अवेगी,
आपुन एगी अतिभारा ॥४१८॥
है गति अति धारा रहित जु भारा,
अति निज लारा परहारा ।
है अति जस भारा अति गति प्यारा,
कृपण विडारा जगभारा ॥
है अकृपण धारा त्याग सुधारा,
शक्ति अपारा तप धारा ॥४१९॥

है अतितप वारा अतप पसारा,
अतितप कारा अणगारा ॥
है तप ज्वर हारा तप जप प्यारा,
अति तप चारा अतिप्यारा ।
है अतितप चंडा अतप सुदंडा,
शक्ति अखंडा अति धारा ॥
है नहि असमाधा साधु समाधा,
नित्य अबाधा हर प्यारा ॥४२०॥

है त्याग अखंडा तप जु प्रचंडा,
आप प्रचंडा व्रतकारा ।

दस भेद जु धारा साधु उधारा,
वह अविकारा उरहारा ।।
अति वैयाव्रत्ता कहइ सुव्रत्ता,
रहइ निरत्ता हरिहारा ।
है अकपट गारा कपट प्रहारा,
विश्व विहारा अघहारा ।।४२१।।

है अतिभव हंता अति अरिहंता,
प्रभु अरहंताक्षर धारा ।
अति अनुभवकारा परिगह डारा,
सर्व अधारा गुण गारा ।
है आरिज तारा भगत उधारा,
अति आचारा जग प्यारा ।।
है अनुभव वारा वह अति प्यारा,
अगमि प्रचारा अभिचारा ।।४२२।।

है अतिश्रुति धारा वहुश्रुत प्यारा,
अति आधारा गणतारा ।
है अवितथ कारा अतत विडारा,
अमत जुहारा अतिधारा ।।
है प्रवचनसारा अवचन वारा,
अति श्रुतिपारा धर तारा ।
ए अवसि जु करणा निति प्रति चरणा,
कहइ अवरणा मुनि प्यारा ।।४२३।।
है वह अति प्यारा मुनि जु उधारा,
अवसि प्रचारा धग्तारा ।
है अब्रह्म धूका सीलनि कूपा,
रत्न प्ररूपा रजहारा ।।

है अपथ विडारा मारग सारा,
अप्रतिहारा हरि प्यारा ।
है अमद सुकरिया शक्ति सुभरिया,
अतिक्षम धरिया व्रतधारा ॥४२४॥

है वत्सल भावा रहित विभावा,
वह जिन रावा हर प्यारा ।
प्रभु अनुभव दाया अतिशय काया,
अतिशमि भाया अतिवारा ॥
है अतिहित भारा अतिधृति धारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ।
है अति सति पारा असत प्रहारा,
अतिमल टारा अतिसारा ॥४२५॥

है भवजल तारा अतिमल कारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ।
है अति सुविचारा अशुचि निवारा,
अधरम डारा भव-डारा ॥
है अमत प्रहारा अगति प्रहारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ।
है अभियम धारा संयम पारा,
इंद्रिय टारा व्रत गारा ॥४२६॥

है रक्ति प्रहारा भोगत जारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ।
है अगम अपारा अकरम चारा,
अकरण कारा अगिवारा ॥
है अवरण धारा अमरण कारा,
धर्म अधारा धन धारा ।

है धर्म अकिंचन पाप निकंचन,
दोष न रंचन धृति धारा ।।४२७।।

है अतिछति वारा अति अधिकारा,
ब्रह्म विहारा अविकारा ।
है विश्व विथारा विश्व अधारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ।।
है अति भवकूला अति रस भूला,
अनुभव मूला अजरारा ।
है अतिशय भूपा अनुभव रूपा,
अति गुणवारा अति प्यारा ।।४२८।।

है अतिघन नामा अति धनधामा,
अति अभिरामा अतिकारा ।
है मुनिमन हारा अति दुखटारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ।।
है अतिहित धारा अहित प्रहारा,
दोऊ टारा जिन प्यारा ।
है देव अरागा वीतसुरागा,
अतिवड भागा जग प्यारा ।।४२९।।

——

सवैया ३१

असि मसि कृषि और वानिज कौ लेस कोऊ,
नांहि तेरै पुर मैं न शिलिप पशु पालनां ।
पठन न पाठन है शिष्य गुर भेद नाँहि
स्वामि और सेवक कौ भेद न निहालनां ।

तू तो जिन एक रूप दोय रूप भाव तेरौ ।
तेरौ पुर शुद्ध रूप जहां वस कालनां ।
मोह नांहि द्रोह नांहि नांहि जु विभाव कोऊ ।
जहां तू विराजै देव सवै भ्रम जालनां ।।४३०।।

असि धारी तू जु नांहि, खग्ग नांहि तेरै हाथ
खग्ग धारा सम जिन, मारग प्रकाश तू ।
शस्त्र वस्त्र नांहि तेरै, अस्त्रकौ न नाम कोऊ
दूषन न भूषन, जो भूख को विनाश तू ।
अस्पादिक भेद जे सु जीविका उपाय नाथ
कर्म भूमि, लागत जो आदि ही विभास तू ।
असुधारी प्राणिगण पावैं मोष तोहि जपि
मौक्ष कौ जु दाता एक दीखै स्व विलाश तू ।।४३१।।

अरुण प्रकास होय ताकें पहली जु नाथ,
उठि भव्य जीव तेरौ नाम उर मैं धरै ।
मध्यकाल सायंकाल अरध निसाजु मांहि,
तोही सौं लगाय चित्त कांम क्रोध कौं हरै ।
अनडन वांवणतू, अनडन तोसौं और,
सुर नर मुनिजन तो ही क्यों जप्यौ करै ।
तूही एक ज्ञान रूप चेतना निधांन देव ।
तो हीं कौ जु ध्याय साधु वेगि भौ-दधी तरै ।।४३२।।

सोरठा

मेरे टारि जु देव, अनिरक्षा अनिगुप्तमय ।
अकस्मात दै सेव, अमरण अमृत देहु मुझ ।।४३३।।
तू जु अकार स्वरूप, सर्वाक्षर मय देव तू ।
ब्रह्मरूप जग भूप, दौलति करण जु तू सही ।।४३४।।

अस्मिन् भवदधि मांहि, रागादिक जे क्षार जल ।
तो विनु दूजो नांहि, अमी देन हारै प्रभु ।।४३५।।

अमी जु अंमृत नाम, तू जु अमी और सु नही ।
अमी सांवबो रांम, तोहि त्यागि ओर न जपैं ।।४३६।।

अर्थ अमी को एह, विद्यमांन कौ नाम है ।।
अमी सुधा हु कहेह, तो सौ नांहि अंमी जु को ।।४३७।।

अवग्रह् ईहा और, फुनि अवाय जु धारणा ।
मतिज्ञान के दौर, तीन शतक छत्तीस जे ।।४३८।।

तिनकौ भाषक एक, केवल रूपी देव तू ।
तेरो इह जु विवेक, जड चेतन न्यारे करै ।।४३९।।

तू हि अनुत्सेको जु, उत्सेको गर्व जु सही ।
तू गर्वारि जिनो जु, मांनी तोहि न पांवही ।।४४०।।

नाम रहित कौ ठीक, कहैं अपेत जु ग्रंथ मैं ।
तू जु अपेत विलोक, सत्य उपेतो तूं सही ।।४४१।।

श्रीपाल चरित्र

रचनाकाल :—सं० १८२२ फागुण सुदी ११

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

अथ श्रीपाल चरित्र भाषा लिख्यते

दोहा

तीर्थङ्कर चोवीस जिन, धर्म राज के ईस।
गुण अनन्त मंडित प्रभु, नमत सक्र सत सीस ।।१।।

सकल विघन हर सर्म कर, सिद्धचक्र अतिसार।
ताकूं वंदु भाव सूं, छोडि जगत भ्रमजाल ।।२।।

चौपई

वंदु त्रिविध गुरु गुण खान, राग रहित ज्ञानी अधिकान।
सप्तम गुण ठाणे मुनि गये, चढि के खिपक श्रेणी सिव भये ।।३।।

श्री जिन कमल थकी धुनि खिरी, गणधर देव प्रगट विसतरी।
तीन जगत कूं अति सुखकार, सारद वंदु भवदधि तार ।।४।।

श्री जिन श्रुत गुरु नमि पांय, सिद्धचक्र नमिहूं हित लाय।
जा परसाद श्रीपाल नरेस, कहूं चरित्र महासुभ भेष ।।५।।

जंवू भरत आरज उर आन, मगध देस स्वरथल सम जान।
राजग्रही तामें पुर सही, श्रेणीक भूप सम्यकधर कही ।।६।।

नारि चेलणा ता घर सती, सम्यक आदि गुणांकर जुती।
ताके अभयकुंवर सुत नाम, सो अतिरूप बुद्धि को धाम ।।७।।

ऐसे राज करे नरराय, इक दिन सभा ठये सुख पाय।
एते आयो इक वनपांल, करी वीनती अति गुणमाल ।।८।।

भो नृप भाग तिहारे सही, वर्धमान जिन आये कही।
समोसरण विपुलाचल आय, तिष्ठे हरि सुर जैं जै लाय ।।९।।

इम सुणि राय महासुख लेय, सिंघपीठ ते उतर्‌यो जाय।
सात पैंड ता ओडी जाय, अपनो सीस नमायो राय ।।१०।।

पट भूषण माली कूं दीये, अष्ट द्रव्य अपने कर लीये ।
पुर में आनन्द भेरी दिवाय, नगर लोक अरु वंधु मिलवाय ॥११॥
वहु सवद उछाह जय लाय, पहुंचे समोसरन में आय ।
तीन प्रदख्यणा दे नर ईस, गये मांहि निज नायो सीस ॥१२॥
अष्ट दरव ते पूजे राय, फिर वहु भक्ति करी अधिकाय ।
गोतमादि गणधर कूं नयो, मनख थान फिर वैठत भयो ॥१३॥
तव जिनवर की वाणी खिरी, दिव्य ध्वनि अतिसै करि भरी ।
पुन्य पाप मुनि श्रावक धर्म, तत्वादिक के भाखे मर्म ॥१४॥
देव मनख तिर्यंच वहु जान, देस देस नर की भी वानि ।
दिव्य ध्वनि अतिसैं करि खिरी, भिन भिन जीव समझि चित धरी ॥१५॥
जो संसै ता जीव उर होय, ताको ज्वाव परनमे सोग ।
अधभुत रचना जिन की वानि, श्रेणिक देखि हरष अति मानि ॥१६॥
फिरि श्रेणिक जिनकूं सीस नाय, ऐसे विनती करी सुभाय ।
सीधचक्र पूजा करि सोय, को फल किन भवि पायो जोय ॥१७॥
ताकी कथा सुनन को चाव, भाखो देव दया रस भाव ।
तव जिन ध्वनि विन अक्षर खिरी, अर्थ गंभीर सकल रस भरी ॥१८॥
सुणि गोतम गणधर मुनि ईस, भाखे कथन नवों निज सीस ।
उर थिर आन निसुनो सव कथा, भाखत गणी भई विधि यथा ॥१९॥
जंवू दीप नाभि सम मेर, ताकी दक्षण दिसा अतहेर ।
तामें षट खंड पंच अनार्ज, आरज एक तहां सुख कार्ज ॥२०॥
मालव देस उजेणी ग्राम, तहां जिनवर के अति सुभ धाम ।
भोजन तहां मुनी नित करे, धर्म ध्यान जुत जन अनुसरे ॥२१॥
सव जिन भक्त वाणी जिन भने, खान पान धन आदिक घने ।
परस परे सव ही जिन हिते, पुर कटुंव सुखी गुण किते ॥२२॥
पुर में दीन नरा नहि कोय, सव ही जीव पुन्याधिप सोय ।
सव जन कोमल सज्जन भाय, मानों भोग भूमि जन आय ॥२३॥

इत्यादिक परजा सब सुखी, को विध कोय जीव नहीं दुखी।
ऐसो नग्र उजेणी धाम, प्रजापाल राय को नाम ।।२४।।

नारी सौभागसुन्दरि जान, कन्या दोय भई गुणखान।
स्वरसुन्दरि जेठी को नाम, मेणासुन्दरी गुण की धाम ।।२५।।

रूप जेसो सुर कन्या एव, साहस बुंधी धर्म नित सेव।
दोऊ सुता बु·····सुखकार, तब भणनें कू मेली सार ।।२६।।

जोसी सिवसर्म इक दुज जानि, कन्या भणे बड़ी इस थान।
स्व प्रतिवेद भणी बहु सही, मिथ्या आगम पढि मद भई ।।२७।।

मेणासुंदरि छोटी सुता, महा बडभागीरु गुणजुता ।
येक दिन जिन वंदन कूं गई, त्रिभवन तिलक चैताले सई ।।२८।।

तहां जिन पूजे हरष बढाय, फिरि वंदे जिन धर्म मुनिराय।
नय निज सीस ठई मुनि पास, धर्म सुण्यो सब सुख की रास ।।२९।।

लये अणूव्रत कन्या सही, फिरि मुनि ते इम वीनती ठई।
भौं प्रभु धर्म जिनेस्वर सार, मोहि पढावो सुख करतार ।।३०।।
मुनि ढिग कन्या पढे सुभाय, जिन मन रहसि जतीवत वाय।
प्रथमानु आदिक चव जोग, कन्या भणी महा सुख भोग ।।३१।।
धर्म अधर्म रूप लखि लियो, जान्यो तत्व भेद जिन चयो।
देव धर्म गुरु दिढता लाय, सम्यक् जुत अणुव्रत धराय ।।३२।।
या जग संग उच्च ते सही, क्या क्या गुण उपजे नहीं कही।
नीच संगतें दूषण कोय, कोन कोन उपजे नहीं सोय ।।३३।।
या विधि कन्या दोऊ सार, नाना कला पढी सुखकार।
इक दिन वड़ी सुता कू सही, वंछित वर जांचो नृप कही ।।३४।।
कन्या तब भाखो सुनि तात, अहिछत नग्र राय सुभ गात।
वैरदामन नाम है सही तासूं व्याह करूं इम कही ।।३५।।
तब राजा बहु ठानि उछाह, कियो वडी कन्या को व्याह।
मेणासुंदरी इक दिन सही, पूजे जिन गंदोदक लही ।।३६।।

तात पास लाई तब सुता, गंधोदक सिर लायो पिता।
धारी सनेह सुता सु कही, मांगो वर मनवंछित कही ।।३७।।

तव यह कन्या सील की खानि, तात थकी इम वचन जु ठानि।
अहो तात गारी किम देय, मन वंछित वर वेस्या लेय ।।३८।।

अथवा नारि कुसीली होय, सो वंछित वर मांगे जोय।
व्रत शील कुल ऊंची नार, सो वर कवहू न जाचे धार ।।३९।।

मात पिता ताकूं परणाय, सोही वर यह नीति कहाय।
पीछे सुभ अरु असुभ सु जोय, कर्म उदैसाहै सौ होय ।।४०।।

सुख दुख होय भाग तें सही, ताकू मेट सके नही कोइ।
ताते पिता सला तुम होय, ताही कूं परणावो जोय ।।४१।।

तात वचन सुन मन कोपियो, मेरो वचन सुता खंडियो।
थाप्यो कर्म आपनो जानि, सो अव देहु महा दुख थान ।।४२।।

महानिंद कोढी धनहीन, जानि दलिद्री सुरती दीन।
ऐसो वर लखि व्याहू सही, राखीं मन काहू नहि कही ।।४३।।

इक दिन राय गयो वन थान, क्रीडा करत फिरत हित मान।
ताही वन श्रीपाल नरेस, आ निकसे पलटचो तन भेष ।।४४।।

महा कोढ तीके तन मांहि, लार सात सै सेवक थांहि।
सोभी सर्व कोढ करि सही, वास दुरगंध धार तन कही ।।४५।।
छत्र चमर सिंघासण लार, राज ऋजु ज वन्यो सब सार।
ये तन वास दुरगंध अपार (महान), फैल रही सव वन के थान ।।४६।।
ऐसे श्रीपाल लखे राय, प्रजापाल जु हरष उपाय।
मंत्रिन सूं राजा इम कही, यह मेणासुन्दरि वर सही ।।४७।।
याकूं राखो जागा वनाय, तव मंत्री वहु मनै कराय।
राय न मानी काहू वात, कीनो हठ मूरख हरषात ।।४८।।
राय हुकम तो वन में जानि, जागां वणाई लखि सुभ थानि।
राय जाय कन्या सूं कही, तो वर कोढी आन्यो सही ।।४९।।

कन्या कही सुनो मो पिता, सुभ अरु असुभ कर्म ते हुता।
जो जो सुख होनो सो होय, ताकूं मेट सकै नहिं कोय ॥५०॥

ऐसे धीर वीर वचन दियौ, सब जन सुनि के अचरज लयो।
सब जन कन्या की थुति करे, कन्या धन्य धन्य सब उचरे ॥५१॥

कोढी पति पायो है सही, तो भी मन चिंता न लही
अंतेपुर सब ही नर नारि, हा हा मुख ते वचन उचारि ॥५२॥

सब मिलि विनती करवाहि, भो नृप कोढी कूं न विवाहि।
मेणासुन्दरि रूप जिहाज, कोढी कूं न देहि महाराज ॥५३॥

राय हठी मानी नहिं कोय, मंत्री फिर वचन भाखी सोय।
कोढी कूं न कन्या दे राय, तू बुधिवान देखि मन लाय ॥५४॥

मूरख राय तबै इम कही, भो मंत्री यह नृप है सही।
छत्र चमर सिंघासन जोय, राज चहन देखत है सोय ॥५५॥

यह वर जोग्या सुता कूं सही, मैं परणाऊं निस्चै कही।
वरज्यो सति कछु समझ्यो नांहि, इम कहि सब के वचन नसाय ॥५६॥

आय विवाह तणी विधि करी, कन्या रूप दसा अति धरी।
वर जुत आय पिता के पास, नमस्कार कीनो गुण रास ॥५७॥
तब नृप मैणासुन्दरी जोय, रूप थकी रति सी अब लोय।
देख्यो वर कोढि तनहीन, मन पछतावो पति लखि कीन ॥५८॥
आप निंद्यो आपन कु सही, मैं मति हीण यहु कहा वही।
क्रोध थकी मन नांहि विचार, कोढी कहा कहा वर नार ॥५९॥
जानि पूछि मैं कूप मझार, डारि दई कन्या गुण सार।
मो सो हठी नहीं सठ कोय, फिरि मन राजा निश्चै जोय ॥६०॥
कन्या कही सत्य सो वात, कर्म करे सो होय विख्यात।
मै तो निमत मात्र करतार, कारज होय कर्म अनुसार ॥६१॥
पुन्य पाप मो जीव के होय, ताकूं मेट सके नहिं कोय।
यह अब मो मन निश्चै भयो, इम लखि राय सोच तजि दियो ॥६२॥

प्रजापाल धारि मन तोष, निज उर को छांड्यो सव दोष।
वनथलि महल उतंग वनाय, मंडित कनक रतन जडवाय ।।६३।।
तहां रहै श्रीपाल नरेस, मैणासुन्दरि नारि सुभेस।
दासी दास नगर वहु दये, ढोल्यो महल और घर ढये ।।६४।।
तिन में सव कोढी थिति करे, पूरव कर्म किये फल भरे।
अव वह मेणासुन्दरि नारि, भक्ति करे पति की चित धारि ।।६५।।

अंतिम पाठः—

मैणा सुन्दरि अर्जिका, तजी समाधि ले काय।
छेदि नारि के लिंग कूं, सुक्र स्वर्ग हरिथाय ।।७४५।।
तीन ज्ञान राजत सदा, महा रिद्ध जुत थान।
आयु पर्यंत सुख भोगि के, चय नर ह्वै सिव जान ।।७४६।।

चोपई

और अर्जिका थी वहु सोय, जे सब स्वर्गथान में जोय।
कोउ छेदि लिंग स्वर जान, देवी कूंष उपजी आन ।।७४७।।
प्रथम स्वर्ग षोडषलों सही, देवी देव अर्जिका भई।
या विधि श्रीपाल नर राय, धर्म प्रभाव थकी सुखपाय ।।७४८।।
सुर नर गति सुख भोगि अपार, फेरि सकल दुख कीने छारि।
सुर नर खग पूजित पद होय, सिद्ध सथान पहूँचे सोय ।।७४९।।

सोरठा

ऐसो जानि हित मान, भानि प्रमाद दसा सही।
अष्टानिक विधि जानि, शक्ति सधा करनो सही ।।७५०।।
जो सम दृष्टी होय नंदीश्वर व्रत कूं करै।
सो सुरनर खग होय, शिव थानक सुख सूं लहै ।।७५१।।

दोहा

यह चरित्र श्रीपाल को, पूरन भयो सुजान ।
याकूं लखि धरम उर विषै, निश दिन राखि सचान ।।७५२।।

धर्म सकल सुखदाय है, ताते भवि उर आन ।
पाप वुद्धि दुखदा सही, छाडन की वुद्धि ठान ।।७५३।।

संवत अष्टादश शत जान, ऊपर बीस दोय फिर आन ।
फागुण सुदि इग्यार निस मांहि, कियो समापत उर हुलसाहि ।।७५४।।

दोहा

सोमसेन अनुसार ले दौलतराम सुखदाय ।
यह भाषा पूरण करी सकल संघ सुखदाय ।।७५५।।

इति श्रीपाल चरित्र संपूर्णः । लिखता पंडित पन्नालालजी की परतभनग्र परतापगढ मध्ये । धान मंडी में श्री ऋषभदेवजी के मंदिर श्री रिखभनाथ चैताले श्रीरस्तु कल्याणमस्तु संभवतु । वार दीतवार ने संवत १९२१ पोस सुदी पंचमी ।।

पद्म-पुराण-भाषा

रचनाकाल :—सं० १८२३ माघ सुदी ९

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

मंगलाचरण :—

दोहा

चिदानंद चैतन्य के, गुण अनन्त उरधार।
भाषा पद्मपुराण की, भाषूं श्रुति अनुसार ।।१।।

पंच परमपद पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर वानि।
नमि जिन प्रतिमा जिनभवन, जिन मारग उर आनि ।।२।।

ऋषभ अजित संभव प्रणमि, नमि अभिनन्दनदेव।
सुमति जु पद्म सुपार्श्व नमि, करि चन्द्राप्रभु सेव ।।३।।

पुष्पदंत शीतल प्रणमि, श्रीश्रेयांस को ध्याय।
वासुपूज्य विमलेश नमि, नमि अनंतके पाय ।।४।।

धर्म शांति जिन कुन्थु नमि, और मल्लि यश गाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि नमि, नमि पारसके पाय ।।५।।

वर्द्धमान वरवीर नमि, सुरगुरुवर मुनि वंद।
सकल जिनंद मुनिंद नमि, जैनधर्म अभिनन्द ।।६।।

निर्वाणादि अतीत जिन, नमों नाथ चौवीस।
महापद्म परमुख प्रभू, चौवीसों जगदीश ।।७।।

होंगे तिनको वंदिकर, द्वादशांग उरलाय।
सीमंधर आदिक नमूं, दश दूने जिनराय ।।८।।

विरहमान भगवान ये, क्षेत्र विदेह मझारि।
पूजें जिनको सुरपती, नागपती निरधार ।।९।।

द्वीप अढाईके विषैं, भये जिनेन्द्र अनंत।
होंगे केवलज्ञानमय, नाथ अनन्तानन्त ।।१०।।

सबको वंदन कर सदा, गणधर मुनिवर धाय।
केवलि श्रुतिकेवलि नमूं, आचारज उवझाय ।।११।।

वंदू शुद्ध स्वभावको, धर सिद्धनको ध्यान।
संतनको परणामकर, नमि दृग व्रत निज ज्ञान ॥१२॥

शिवपुर दायक सुगुरु नमि, सिद्धलोक यश गाय।
केवलदर्शन ज्ञानको, पूजू मन वच काय ॥१३॥

यथाख्यात चारित्र अरु, क्षपकश्रेणि गुण ध्याय।
धर्म शुक्ल निज ध्यान को, वंदू भाव लगाय ॥१४॥

उपशम वेदक क्षायिका, सम्यग्दर्शन सार।
कर वंदन समभावको, पूजू पंचाचार ॥१५॥

मूलोत्तर गुण मुनिनके, पंच महाव्रत आदि।
पंच समिति और गुप्तत्रय, ये शिवमूल अनादि ॥१६॥

अनित्य आदिक भावना, सेऊं चित्त लगाय।
अध्यातम आगम नमूं, शांति भाव उरलाय ॥१७॥

अनुप्रेक्षा द्वादश महा, चितवें श्रीजिनराय।
तिनकी स्तुति करि भावसों, षोडशकारण ध्याय ॥१८॥

दशलक्षणमय धर्मकी, धर सरधा मनमांहि।
जीवदया सत शील तप, जिनकर पाप नसाहिं ॥१९॥

तीर्थंकर भगवान के, पूजू पंच कल्याण।
और केवलनिको नमूं, केवल अरु निर्वाण ॥२०॥

श्रीजिन तीरथ क्षेत्र नमि, प्रणमि उभय विधि धर्म।
थुतिकर चहुं विधि संघकी, तजकर मिथ्या भर्म ॥२१॥

वंदू गौतम स्वामिके, चरण कमल सुखदाय।
वंदू धर्म मुनीन्द्रको, जम्बूकेवलि ध्याय ॥२२॥

भद्रवाहुको कर प्रणमि, भद्रभाव उरलाय।
वंदि समाधि सुतंत्रको, ज्ञानतने गुण गाय ॥२३॥

ग्रंथों का स्मरण

महा धवल अरु जयधवल, तथा धवल जिनग्रन्थ।
वंदू तन मन वचन कर, जे शिवपुरके पंथ ॥२४॥

षट्पाहुड नाटक जु त्रय, तत्वारथ सूत्रादि।
तिनको वंदू भाव कर, हरैं दोष रागादि ॥२५॥

गोमटसार अगाधि श्रुत, लब्धिसार जगसार।
क्षपणसार भवतार है, योगसार रसधार ॥२६॥

ज्ञानार्णव है ज्ञानमय, नमूं ध्यान का मूल।
पद्मनंदि पच्चीसिका, करे कर्म उन्मूल ॥२७॥

यत्नाचार विचार नमि, नमूं श्रावकाचार।
द्रव्यसंग्रह नयचक्र फुनि, नमूं शांति रसधार ॥२८॥

आदिपुराणादिक सवै, जैन पुराण वखान।
वंदू मन वच काय कर, दायक पद निर्वाण ॥२८॥

तत्वसार आरावना-, सार महारस धार।
परमातम परकाशको, पूजूं वारम्वार ॥३०॥

पूर्वाचार्यों का स्मरण :—

वंदू विशाखाचार्यवर, अनुभव के गुण गाय।
कुन्दकुन्द पद धोक दे, कहूं कथा सुखदाय ॥३१॥
कुमुदचंद्र अकलंक नमि, नेमिचंद्र गुण ध्याय।
पात्रकेशरी को प्रणमि, समंतभद्र यशगाय ॥३१॥

अमृतचंद्र यतिचंद्र को, उमास्वामि को वंद।
पूज्यपाद को कर प्रणमि, पूजादिक अभिनंद ॥३३॥
ब्रह्मचर्यव्रत वंदिके, दानादिक उर लाय।
श्रीयोगीन्द्र मुनीन्द्रको, वंदूं मन वच काय ॥३४॥
वंदू मुनि शुभचंद्रको, देवसेनको पूज।
करि वंदन जिनसेन को, जिनके सम नहिं दूज ॥३५॥

पद्मपुराण निधान को, हाथ जोड़ि सिरनाय।
ताकी भाषा वचनिका, भाषू सब सुखदाय ॥३६॥

पद्म नाम बलभद्रका, रामचन्द्र बलभद्र।
भये आठवें धार नर, धारक श्री जिनमुद्र ॥३७॥

ता पीछे मुनिसुव्रतके, प्रगटे अति गुणधाम।
सुरनरवंदित धर्ममय, दशरथ के सुत राम ॥३८॥

शिवगामी नामी महा, ज्ञानी करुणावंत।
न्यायवंत बलवंत अति, कर्म हरण जयवंत ॥३६॥

जिनके लक्ष्मण वीर हरि, महाबली गुणवंत।
भ्रातभक्त अनुरक्त अति, जैनधर्म यशवंत ॥४०॥

चन्द्र सूर्य से वीर ये, हरैं सदा परपीर।
कथा तिनोंकी शुभ महा, भाषी गौतम धीर ॥४१॥

सुनी सबै श्रेणिक नृपति, धर सरधा मन माहिं।
सो भाषी रविषेणने, यामें संशय नाहिं ॥४२॥

महासती सीता शुभा, रामचंद्र की नारि।
भरत शत्रुघ्न अनुज हैं, यही बात उर धारि ॥४३॥

तद्भव शिवगामी भरत, अरु लव-अंकुश पूत।
मुक्त भये मुनिवरत धरि, नमैं तिने पुरहूत ॥४४॥

रामचन्द्रको करि प्रणामि, नमि रविषेण ऋषीश।
रामकथा भाषूं यथा, नमि जिन श्रुति मुनिईश ॥४५॥

——

[अंजना और पवनंजय कुमार का मिलाप]

अथानंतर[1] पवनंजयकुमार ने अंजनासुन्दरी को परण कर ऐसी तजी जो कबहूं बात न बूझै, सो वह सुन्दरी पति के असंभाषणतें अर कृपादृष्टि कर न

१ षोडस पर्व।

देखवेतैं परम दुःख करती भई। रात्रि में भी निद्रा न लेय, निरंतर अश्रुपात ही झरा करैं, शरीर मलिन होय गया, पतिसों अति स्नेह, वनी का नाम अति सुहावै, पवन जावै सो भी अति प्रिय लागै, पति का रूप तो विवाह की वेदी में अवलोकन किया हुता ताका मन में ध्यान करवो करै अर निश्चल लोचन सर्व चेष्टा रहित वैठी रहै। अंतरंग ध्यान में पति का रूप निरूपण करि वाह्य भी दर्शन किया चाहै सो न होय। तदि शोककरि वैठी रहै, चित्रपटविषै पति का चित्राम् लिखने का उद्यम करै, तदि हाथ कांप करि कलम् गिर पड़ै, दुर्वल होय गया है समस्त अंग जाका, ढीले होय कर गिर पड़े हैं आभूषण जाके, दीर्घ उष्ण जे उच्छ्वासनिकरि मुरझाय गए हैं कपोल जाके, अंग में वस्त्र के भी भार करि खेद कों वरती संती, अपने अशुभ कर्मों को निंदती, माता-पितानि को वारंवार याद करती संती, शून्य भया है हृदय जाका, दुःख कर क्षीण शरीर, मूर्च्छा आय जाय, चेष्टा रहित होय जाय, अश्रुपात करि रुक गया है कंठ जाका, दुःख कर निकसैं हैं वचन जाके, विह्वल भई संती दैव कहिए पूर्वोपार्जित कर्म ताहि उलाहना देय चन्द्रमा की किरण हू करि जाकों अति दाह उपजै अर मंदिर विषै गमन करती मूर्च्छा खाय गिर पड़ै अर विकल्प की मारी ऐसा विचार करि अपने मन ही में पति सों वतलावै कि हे नाथ! तिहारे मनोज्ञ अंग मेरे हृदय में निरंतर तिष्ठैं हैं, मोहि आताप क्यों करै हैं अर मैं आपका कछु अपराध नहीं किया, निःकारण मेरे पर कोप क्यों करो, अव प्रसन्न होवो, मैं तिहारी भक्त हूँ, मेरे चित्त के विषाद को हरो। जैसैं अंतरंग दर्शन देवो हो, तैसैं वहिरंग देवो। यह मैं हाथ जोड़ विनती करूं हूँ। जैसैं सूर्य विना दिन की शोभा नाहीं अर चन्द्रमा विना रात्रि की शोभा नाहीं अर दया क्षमा शील संतोषादि गुण विना विद्या शोभै नाहीं, तैसैं तिहारी कृपा विना मेरी शोभा नाहीं, या भांति चित्तविषै वसै जो पतिताहि उलाहना देय। अर वड़े मोतियों समान नेत्रनितैं आंसुवनि की वूंद झरैं, महा कोमल सेज पर अनेक सामग्री सखीजन करैं परन्तु याहि कछु न सुहावै, चक्रारूढ़ समान मन में उपज्या है वियोग में भ्रम जाकों, स्नानादि संस्कार रहित कभी भी केश समारैं गूंथैं नाहीं, केश भी रूखे पड़ गये, सर्व क्रिया में जड़ मानों पृथ्वी का ही रूप होय रही है। अर निरंतर आँसुवनि के प्रवाहतैं मानों जलरूप ही होय रही है। हृदय के दाह के योगतैं मानों अग्निरूप ही होय रही है। अर निश्चलचित्त के योगतैं मानों वायुरूप ही होय रही है अर शून्यता के योगतैं मानों गगनरूप ही होय रही है। मोह के योगतैं आच्छादित होय रह्या है ज्ञान जाका, भूमि पर डार दिए हैं सव अंग जानैं, वैठ न सकै अर तिष्ठै तौ उठ न सकै अर उठै तौ देही कों थाम न सकै सो सखीजन का हाथ पकड़ि विहार करै सो पग डिग

जाय अर चतुर जे सखीजन तिनसों बोलने की इच्छा करै परंतु बोल न सकै अर हंसनी कबूतरी आदि गृह पक्षी तिनसों क्रीड़ा किया चाहै पर कर न सकै। यह विचारी सबों से न्यारी बैठी रहै, पति में लग रहा है मन अर नेत्र जाका, निःकारण पतितैं अपमान पाया सो एक दिन एक बरस बराबर जाय। यह याकी अवस्था देखि सकल परिवार व्याकुल भया सब ही चिंतवते भए कि ऐता दुःख याहि बिना कारण क्यों भया है। यह कोई पूर्वोपार्जित पाप कर्म का उदय है। पिछले जन्म में यानैं काहूके सुख विषैं अंतराय किया है, सो याकैं भी सुख का अंतराय भया। वायुकुमार तो निमित्तमात्र है। यह बरी भोरी निर्दोष याहि परणकरि क्यों तजी, ऐसी दुलहन सहित देवनि समान भोग क्यों न करै। यानैं पिता के घर कभी रंचमात्र हू दुःख न देख्या सो यह कर्मानुभव कर दुःख के भारकों प्राप्त भई। याकी सखीजन विचारै हैं कि क्या उपाय करैं, हम भाग्यरहित हमारे यत्न-साध्य यह कार्य नाहीं, कोई अशुभकर्म की चाल है, अब ऐसा दिन कब होयगा, वह शुभ मुहूर्त शुभ वेला कब होयगी जो वह प्रीतम या प्रिया कों समीप लेय बैठेगा अर कृपा दृष्टि कर देखेगा, मिष्ट वचन बोलेगा, यह सब के अभिलाषा लग रही है।

अथानंतर राजा वरुण ताकैं रावणसों विरोध पड़या, वरुण महा गर्ववान रावण की सेवा न करै, सो रावण ने दूत भेज्या। दूत जाय वरुणसों कहता भया। दूत धनी की शक्ति कर महाकांति को धरै है। अहो विद्याधराधिपते वरुण! सर्व का स्वामी जो रावण तानैं यह आज्ञा करी है जो आप मोहि प्रणाम करो अथवा युद्ध की तैयारी करो। तब वरुण ने हँसकर कही, हो दूत! कौन है रावण, कहाँ रहै है जो मोहि दबावै है। सो मैं इंद्र नाहीं हूँ जो वृथा गर्वित लोकनिंद्य हुता, मैं वैश्रवण नाहीं, यम नाहीं, मैं सहस्ररश्मि नाहीं, मैं मरुत नाहीं रावण के देवाधिष्ठित रत्नोंकरि महा गर्व उपज्या है, वाकी सामर्थ्य है तो आवो, मैं वाहि गर्वरहित करूंगा अर तेरी मृत्यु नजीक है जो हमसों ऐसी बात कहै है। तब दूत जायकर रावणसों सर्व वृतांत कहता भया। रावण ने कोप कर समुद्र-तुल्य सेना सहित जाय वरुण का नगर घेर्‌या अर यह प्रतिज्ञा करी जो मैं याहि देवाधिष्ठित रत्न बिना ही वश करूंगा, मारूं अथवा बांधू।

तब वरुण के पुत्र राजीव पुण्डरीकादिक क्रोधायमान होय रावण के कटकपर आए। रावणकी सेना के अर इनके बड़ा युद्ध भया, परस्पर शस्त्रनि के समूह छेद डारे! हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, भट

भटोंसे महायुद्ध करते भए। वड़े–वड़े सामंत डसि डसिकरि लाल नेत्र हैं जिनके वे महाभयानक शब्द करते भए। वड़ी देर तक संग्राम भया। सो वरुण की सेना रावण की सेनासौं कछुइक पीछे हटी। तव अपनी सेना को हटी देख वरुण राक्षसनिकी सेनापर आप चल करि आया, कालग्नि–समान भयानक। तव रावण दुर्निवार वरुण को रणभूमि विषैं सन्मुख आवता देखकर आप युद्ध करने को उद्यमी भया। वरुणकै अर रावणकै आपस विषैं युद्ध होने लगा अर वरुणके पुत्र खरदूषणसों युद्ध करते भए। कैसे हैं वरुणके पुत्र ? महाभटोंके प्रलय करनहारे अर अनेक माते हाथियों के कुंभस्थल विदारनहारे। सो रावण, क्रोधकरि दीप्त है मन जाका, महाक्रूर जो भृकुटि तिनकरि भयानक है मुख जाका, कुटिल हैं केश जाके, जव लगि धनुष के वाण तान वरुणपर चलावै तव लग वरुणके पुत्रों ने रावण के वहनेऊ खरदूषण को पकड़ लिया।

तव रावण मन में विचारी जो हम वरुणसों युद्ध करैं अर खरदूषण का मरण होय तो उचित नाहीं, तातैं संग्राम मनै किया। जे वुद्धिमान हैं ते मंत्रविषैं चूकैं नाहीं। तव मंत्रियोंने मंत्रकर सव देशोंके राजा वुलाए। शीघ्रगामी पुरुष भेजे। सवनिकों लिखा, वड़ी सेना-सहित शीघ्र ही आवो। अर राजा प्रह्लाद पर भी पत्र लेय मनुष्य आया सो राजा प्रह्लाद ने स्वामीकी भक्तिकरि रावणके सेवकनिका वहुत सन्मान किया अर उठकर वहुत आदरसों पत्र माथे चढाया अर बांच्या। सो पत्रविषैं या भांति लिखा था कि पातालपुर के समीप कल्याण रूप स्थानक मैं तिष्ठता महाक्षेमरूप विद्याधरोंके अधिपतियोंका पति सुमालीका पुत्र जो रत्नश्रवा, ताका पुत्र राक्षसवंशरूप आकाशविषैं चद्रमा ऐसा जो रावण सो आदित्यनगर के राजा प्रह्लादकों आज्ञा करै है। कैसा है प्रह्लाद ? कल्याणरूप है, न्यायका वेत्ता है, देश–काल–विधान का ज्ञायक है, हमारा वहुत वल्लभ है। प्रथम तो तिहारे शरीरकी कुशल पूछै है, वहुरि यह समाचार है कि हम कों सर्व खेचर भूचर प्रणाम करै हैं, हाथोंकी अंगुली तिनके नखकी ज्योतिकर ज्योतिरूप किए हैं निज शिरके केश जिनने, अर एक अति दुर्बुद्धि वरुण पाताल नगरमें निवास करै है सो आज्ञातैं परान्मुख होय लड़नेको उद्यमी भया है। हृदयकों व्यथाकारी विद्याधरों के समूहकरि युक्त है। समुद्र के मध्य द्वीपको पायकर वह दुरात्मा गर्वको प्राप्त भया है, सो हम ताके ऊपर चढ़कर आए हैं, वड़ा युद्ध भया। वरुण के पुत्रों ने खरदूषण को जीवता पकड्या है

सो मंत्रियों ने मंत्र करि खरदूषणके मरणकी शंकातैं युद्ध रोक दिया, तातैं खरदूषण कों छुड़ावना अर वरुण को जीतना सो तुम अवश्य शीघ्र आइयो, ढील मत करियो। तुम सरिखे पुरुष कर्तव्यमें न चूकैं, अब सब विचार तिहारे आयवे पर है। यद्यपि सूर्य तेजके पुंज है तथापि अरुण सरिखा सारथी चाहिए। तब राजा प्रह्लाद पत्रके समाचार जानि मत्रियोंसों मंत्र कर रावणके समीप चलनेकों उद्यमी भया। तब प्रह्लाद को चलता सुनकर पवनंजयकुमार ने हाथ जोड़ि गोड़नितैं धरती स्पर्श नमस्कार विनती करी। हे नाथ! मुझ पुत्रके होते संते तुमको गमनयुक्त नाहीं, पिता जो पुत्र को पालै है सो पुत्रका यही धर्म है कि पिताकी सेवा करै तो जानिए पुत्र भया ही नाहीं। तातैं आप कूच न करैं, मोहि आज्ञा करैं। तब पिता कहते भये, हे पुत्र! तुम कुमार हो, अब तक तुमने कोई युद्ध देख्या नाहीं, तातैं तुम यहां रहो, मैं जाऊंगा। तब पवनंजयकुमार कनकाचल के तट समान जो वक्ष-स्थल ताहि ऊंचाकर तेज के धरणहारे वचन कहता भया—हे तात! मेरी शक्ति का लक्षण तुमने देख्या नाहीं, जगत के दाहवेमें अग्नि के स्फुलिंगे का क्या वीर्य परखना। तुम्हारी आज्ञारूप आशिपाकर पवित्र भया है मस्तक मेरा, ऐसा जो मैं इन्द्रको भी जीननेकों समर्थ हूं, यामें संदेह नाहीं। ऐसा कहकर पिताकों नमस्कार कर महा हर्ष संयुक्त उठकरि स्नान भोजनादि शरीरकी क्रिया करी अर आदरसहित जे कुल में वृद्ध हैं तिन्होंने असीस दीना। भाव सहित अरहंत सिद्ध को नमस्कारकरि परम कांति को धरता संता महा मंगलरूप पितासों विदा होवेकों आया सो पिताने अर माताने मंगल के भयतैं आंसू न काढ़े, आशीर्वाद दिया। हे पुत्र! तेरी विजय होय, छाती सों लगाय मस्तक चूम्या।

पवनंजयकुमार श्री भगवान का ध्यान धर माता पिता को प्रणाम करि जे परिवार के लोग पायनि पडे तिनकों बहुत धैर्य बंधाय सबसों अति स्नेह कर विदा भए। पहले अपना दाहिना पांव आगैं धर चले। फुरकै है दाहिनी भुजा जिनकी अर पूर्ण कलश जिनके मुख पर लाल पल्लव तिनपर प्रथम ही दृष्टि पड़ी। अर थंभसों लगी हुई द्वारै खड़ी जो अंजना सुन्दरी आंसुवनिकरि भीज रहे हैं नेत्र जाके, तांबूलादिरहित धूसरे होय रहे हैं अधर जाके, मानों थभाविषैं उकेरी पुतली ही है। कुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पड़ी सो क्षणमात्रविषैं दृष्टि सकोच कोपकरि बोले। हे दुरीक्षणे कहिए दुःखकारी है दर्शन जाका, या स्थानकतैं जावो, तेरी दृष्टि उल्कापात समान है, सो मैं सहार न सकूं। अहो बड़े कुलकी पुत्री कुलवंती! तिनमें यह ढीठपणा कि मनै किए भी निर्लज्ज ऊभी रहैं। ये पतिके अतिक्रूर वचन सुने तौ भी याहि अति प्रिय लागैं जैसैं

घने दिन के तिसाए पपैये कों मेघ की बूंद प्यारी लागै, सो पति के वचन मनकरि अमृत समान पीवती भई, हाथ जोड़ि चरणारविंद की ओर दृष्टि धरि गदगद वाणीकर डिगते डिगते वचन नीठि नीठि कहती भई—हे नाथ ! जब तुम यहां विराजते हुते, तबहू मैं वियोगिनी ही हुती; परन्तु आप निकट हैं सो आशाकरि प्राण कष्टतैं टिक रहे हैं, अब आप दूर पधारै हैं मैं कैसे जीऊंगी। मैं तिहारे वचनरूप अमृत के आस्वादनेकी अति आतुर, तुम परदेश कों गमन करते समय स्नेहतैं दयालु चित्त होयकर वस्ती के पशु पक्षियों को भी दिलासा करी, मनुष्यों की तो कहा बात ? सबको अमृत समान वचन कहे, मेरा चित्त तिहारे चरणारविंद विषै है, मैं तिहारी अप्राप्तिकर अति दुःखी, औरनिकी श्रीमुखतैं एती दिलासा करी, मेरी औरनिके मुखतैंही दिलासा कराई होती। जब मोहि आपने तजी तब जगत में शरण नाहीं, मरण ही है। तब कुमार ने मुख संकोचकर कोपसों कही, मर। तब यह सती खेद-खिन्न होय धरती पर गिर पड़ी। पवनकुमार यासों कुमयाही विषै चाले। बड़ी ऋद्धि सहित हाथी पर असवार होय सामंतों सहित पयान किया। पहले ही दिनविषै मानसरोवर जाय डेरे भए, पुष्ट हैं वाहन जिनके, सो विद्याधरिनी की सेना देवों की सेना समान आकाशतैं उतरती संती अति शोभायमान भासती भई। कैसी है सेना ? नाना प्रकार के जे वाहन अर शस्त्र तेई हैं आभूषण जाके। अपने २ वाहनों के यथायोग्य यत्न कराए, स्नान कराए, खानपान का यत्न कराया।

अथानंतर विद्या के प्रभावतैं मनोहर एक बहुखणा महल बनाया, चौड़ा और ऊंचा सो आप मित्र सहित महल ऊपर विराजे ? संग्राम का उपज्या है अति हर्ष जिनके, झरोखनि की जाली के छिद्रकरि सरोवर के तट के वृक्षनिकों देखते हुते, शीतल मंद सुगंध पवनकरि वृक्ष मंद मंद हालते हुते अर सरोवरविषै लहर उठती हुती, सरोवर के जीव कछुवा, मीन, मगर अर अनेक प्रकार के जलचर गर्व के धरणहारे तिनकी भुजानिकरि किलोल होय रही हैं। उज्जवल स्फटिकमणि समान निर्मल जल है जामें नाना प्रकार के कमल फूल रहे हैं, हंस, कारंड, क्रौंच, सारस इत्यादि पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं जिनके सुनने तैं मन अर कर्ण हर्ष पावै अर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। तहां एक चकवी, चकवे विना अकेली वियोगरूप अग्नितैं तप्तायमान अति आकुल, नाना प्रकार चेष्टा की करणहारी, अस्ताचल की ओर सूर्य गया सो वा तरफ लग रहे हैं नेत्र जाके अर कमलिनी के पत्रनिके छिद्रों विषै वारंबार देखै है, पांखनिकौं हलावती उठै है अर पड़ै है।

अर मृणाल कहिए कमल की नाल का तार ताका स्वाद विष-समान देखै है, अपना प्रतिबिम्ब जलविषै देखकरि जानै है कि यह मेरा प्रीतम है,

सो ताहि बुलावै है सो प्रतिबिंब कहा आवै। तदि अप्राप्तितैं परम शोक को प्राप्त भई है। कटक आर्य उतर्या है सो नाना देशनिके मनुष्यों के शब्द अर हाथी घोड़ा आदि नाना प्रकार के पशुवनि के शब्द सुनकर अपने वल्लभ चकवा की आशा कर भ्रमै है चित्त, जाका, अश्रुपात सहित हैं लोचन जाके, तट के वृक्ष पर चढ़ि चढ़िकरि दशों दिशा की ओर देखै है, प्रीतम कों न देखकरि अति शीघ्र ही भूमिपर आय पड़ै है, पांख हलाय कमलिनी की जो रज शरीर के लागी है सो दूर करै है सो पवनकुमार ने घनीवेर तक दृष्टि धारि चकवी की दशा देखी, दयाकर भीज गया है चित्त जाका, चित्त में ऐसा विचारै है कि प्रीतम के वियोग करि यह शोक रूप अग्निविषैं वलै है।

यह मनोज्ञ मानसरोवर अर चंद्रमा की चांदनी चंदन-समान शीतल सो या वियोगिनी चकवी कों दावानल समान है, पति विना याकों कोमल पल्लव भी खड्ग समान भासै है। चन्द्रमा की किरण भी वज्र के समान भासै है, स्वर्ग हू नरकरूप होय आचरै है। ऐसा चिंतवनकर याका मन प्रिया विषैं गया। अर या मानसरोवर पर ही विवाह भया हुता सो वे विवाह के स्थानक दृष्टि में पड़े सो याको अति शोक के कारण भए, मर्म के भेदनहारे दुःसह करौंत समान लागे। चित्तविषैं विचारता भया—हाय! हाय! मैं क्रूरचित्त पापी, वह निर्दोष वृथा तजी, एक रात्रि का वियोग चकवी न सहार सकै तो बाईस-वर्ष का वियोग वह महासुन्दरी कैसैं सहारै? कटुक वचन वाकी सखीने कहे हुते, वाने तो न कहे हुते, मैं पराए दोपकरि काहे को ताका परित्याग किया। धिक्कार है मो सारिखे मूर्ख को, जो विना विचारे काम करै।

ऐसे निष्कपट प्राणी को विना कारण दुःख अवस्था करी, मैं पापचित्त हूँ, वज्र समान है हृदय मेरा जो मैंने एते वर्ष ऐसी प्राणवल्लभा कों वियोग दिया, अब क्या करूं, पितासों विदा होयकर घरतैं निकस्या हूं, कैसैं पाछा जाऊं, वड़ा संकट पड़्या, जो मैं वासौं मिले विना संग्राम में जाऊं तो वह जीवै नाहीं अर वाके अभाव भये मेरा भी अभाव होगया. जगत विषै जीतव्य समान कोई पदार्थ नाहीं तातैं सर्व संदेह का निवारणहारा मेरा परम मित्र प्रहस्त विद्यमान है वाहि सर्वभेद पूछूं। वह सर्वप्रीति की रीति में प्रवीण है। जे विचार कर कार्य करै हैं, ते प्राणी सुख पावैं हैं ऐसा पवनकुमार कों विचार उपज्या सो प्रहस्त मित्र ताके सुखविषैं सुखी दुखविषैं दुखी याकों चिंतावान देख पूछता भया कि हे मित्र! तुम रावण की मदद करने को वरुण सारिखे योधासों लड़ने को जावो हो, सो अति प्रसन्नता चाहिये तव कार्य की सिद्धि होय। आज तिहारा वदन रूप कमल क्यों मुरझाया दीखै है, लज्जा को

तजकरि मोहि कहो, तुमको चितावान देखकर मेरे व्याकुल भाव भया है। तव पवनंजय ने कहा—हे मित्र ! यह वार्ता काहू सो कहनी नाहीं। परन्तु तुम मेरे सर्व रहस्य के भाजन हो तोसूं अंतर नाहीं। यह बात कहते परम लज्जा उपजै है। तब प्रहस्त कहते भये जो तिहारे चित्त विषै होय सो कहो, जो तुम आज्ञा करो सो बात और कोई न जानेगा, जैसैं ताते लोहे पर पड़ो जलकी बूंद विलाय जाय, प्रकट न दीखै, तैसैं मोहि कही बात प्रकट न होय।

तब पवनकुमार बोले—हे मित्र ! सुनो—मैं कदापि अंजना-सुन्दरीसों प्रीति न करी सो अब मेरा मन अति व्याकुल है, मेरी क्रूरता देखो ऐते वर्ष परणे भए सो अब तक वियोग रह्या, निष्कारण अप्रीति भई, सदा वह शोककी भरी रही। अश्रुपात झरते रहे अर चलते समय द्वारे खड़ी विरह रूप दाहसों मुरझा गया है मुख रूप कमल जाका, सर्व लावण्य संपदारहित मैंने देखी, अब ताके दीर्घ नेत्र नीलकमल समान मेरे हृदयको बाणवत् भेदैं हैं, तातैं ऐसा उपायकर जाकरि मेरा वासों मिलाप होय। हे सज्जन ! जो मिलाप न होयगा तो हम दोनों का ही मरण होयगा। तब प्रहस्त क्षणएक विचारकरि बोले-तुम माता पितासों आज्ञा मांग शत्रु के जीतवे को निकसे हो, तातैं पीछे चलना उचित नाहीं अर अब तक कदापि अंजना-सुन्दरी याद करी नाहीं अर यहां बुलावैं तो लज्जा उपजै है तातैं गोप्य चलना अर गोप्य ही आवना, वहां रहना नाहीं। उनका अवलोकन कर सुख संभाषण करि आनंद रूप शीघ्र ही आवना। तब आपका चित्त निश्चल होयगा। परम उत्साहरूप चलना, शत्रु के जीतने का निश्चय किया सो यही उपाय है। तब मुद्गर नामा सेनापति को कटक रक्षा सौंपकरि मेरुकी वंदनाका मिसकरि प्रहस्त मित्र सहित गुप्त ही सुगंधादि सामग्री लेय करि आकाशके मार्गसों चाले। सूर्य भी अस्त होय गया अर सांझका प्रकाश भी गया, निशा प्रगट भई अंजनासुन्दरी के महल पर जाय पहुंचे। पवन कुमार तो बाहिर खड़े रहे, प्रहस्त खबर देनेकों भीतर गए, दीपक का मंद प्रकाश था, अंजना कहती भई कौन है ? वसंतमाला निकट ही सोती हुती, सो जगाई, वह सब वातोंविषैं निपुण उठकर अंजनाका भय निवारण करत भई। प्रहस्तने नमस्कारकरि जब पवनंजय के आगमनका वृतान्त कह्या तब सुन्दरी प्राणनाथ का समागम स्वप्न समान जान्या, प्रहस्त कों गद्गद वाणीकरि कहती भई हे प्रहस्त ! मैं पुण्यहीन पतिकी कृपाकरि वर्जित, मेरे ऐसा ही पाप कर्मका उदय आया, तू हमसों कहा हंसै है, पतिसों जिसका निरादर होय वाको कौन अवज्ञा न करै ? मैं अभागिनी दुःख अवस्थाकों प्राप्त भई, कहांतैं सुख अवस्था होय। तब प्रहस्त ने हाथ जोड़ि नमस्कारकरि

विनती करी–हे कल्याणरूपिणि ! हे पतिव्रते ! हमारा अपराध क्षमा करो, अब सब अशुभ कर्म गए। तिहारे प्रेमरूप गुण का प्रेर्या तेरा प्राणनाथ आया। तेरेसे अति प्रसन्न भया तिनकी प्रसन्नताकरि कहा कहा आनंद न होय, जैसैं चंद्रमाके योगकरि रात्रिकी अति मनोज्ञता होय।

तब अंजनासुन्दरी क्षण एक नीची होय रही अर वसंतमाला प्रहस्तसों कही—हे भद्रे ! मेघ बरसैं जब ही भला, तातैं प्राणनाथ इनके महल पधारे सो इनका बड़ा भाग्य अर हमारा पुण्यरूप वृक्ष फल्या। यह बात होय रही हुती ताही समय आनंदके अश्रुपातकरि व्याप्त होय गए हैं नेत्र जिनके सो कुमार पधारे ही, मानों करुणारूप सखी ही प्रीतमकों प्रियाके ढिग ले आई। तब भय-भीत हिरणी के नेत्र-समान सुन्दर हैं नेत्र जाके ऐसी प्रिया पतिकों देख सन्मुख जाय हाथ जोड़ि सीस निवाय पांयनि पड़ी। तब प्राण वल्लभने अपने करतैं सीस उठाय खड़ी करी। अमृत समान वचन कहे कि हे देवी ! क्लेश का सकल खेद निवृत होवै। सुन्दरी हाथ जोड़ि पतिके निकट खड़ी हुती। पति ने अपने करतैं कर पकड़करि सेजपर बिठाई, तब नमस्कार कर प्रहस्त तो बाहिर गए अर वसंतमाला हू अपने स्थान जाय बैठी। पवनंजय कुमारने अपने अज्ञानतैं लज्जावान होय सुंदरीसों बारंबार कुशल पूछी अर कही हे प्रिये ! मैंने अशुभ कर्म के उदयतैं जो तिहारा वृथा निरादर किया सो क्षमा करो। तब सुन्दरी नीचा मुखकरि मंद मंद वचन कहती भई, हे नाथ ! आपने पराभव कुछ न किया, कर्मका ऐसा ही उदय हुआ।

अब आपने कृपा करी, अति स्नेह जताया सो मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध भए। आपके ध्यानकर सयुक्त मेरा हृदय सो आप सदा हृदय ही विषैं विराजते, आपका अनादरहू आदर समान भास्या। या भांति अंजना सुन्दरी ने कह्या तब पवनंजयकुमार हाथ जोड़ कहते भए कि हे प्राणप्रिये ! मैं वृथा अपराध किया। पराए दोषतैं तुमको दोष दिया सो तुम सब अपराध हमारा विस्मरण करो। मैं अपना अपराध क्षमावने निमित्त तिहारे पायनि परूँ हूँ, तुम हम सों अति प्रसन्न होवो, ऐसा कहकर पवनंजयकुमारने अधिक स्नेह जनाया तब अंजना सुन्दरी पति का ऐसा स्नेह देखकरि बहुत प्रसन्न भई। अर पति कों प्रियवचन कहती भई, हे नाथ ! मै अति प्रसन्न भई, हम तिहारे चरणारविंदकी रज है, हमारा इतना विनय तुमकों उचित नाहीं ऐसा कहकर सुखसों सेज पर विराजमान किए, प्राणनाथ की कृपाकरि प्रिया का मन अति प्रसन्न भया अर शरीर अतिकांतिको धरता भया, दोनों परस्पर अतिस्नेहके भरे एक चित्त भए। सुखरूप जागृति रहे, निद्रा न लीनी। पिछले पहर अल्प निद्रा आई, प्रभात का

समय होय आया तब यह पतिव्रता सेजसों उतर पति के पाय पलोटने लगी, रात्रि व्यतीत भई, सो सुखमें जानी नाहीं। प्रातः समय चन्द्रमा की किरण फीकी पड़ गई। कुमार आनंद के भार में भर गए अर स्वामी की आज्ञा भूल गए, तब मित्र प्रहस्त ने, कुमार के हितविषै है चित्त जाका, ऊंचा शब्द कर वसंतमाला को जगाकर भीतर पठाई अर मंद मंद आगहु सुगंधित महलमें मित्र के समीप गए। अर कहते भए, हे सुन्दर ! उठो, अब कहा सोवो हो ? चन्द्रमा भी तिहारे मुखकी कांतिकरि रहित होय गया है। यह वचन सुनकर पवनजय प्रबोध को प्राप्त भए। शिथिल है शरीर जिनका, जंभाई लेते, निद्रा के आवेश करि लाल हैं नेत्र जिनके, कानोंको बांए हाथ की तर्जनी अंगुलीसों खुजावते, खुले हैं नेत्र जिनके, दाहिनी भुजा संकोचकरि अरिहंतका नाम लेकर सेजसों उठे, प्राणप्यारी आपके जगनेतैं पहिले ही सेजसों उतरकरि भूमिविषै विराजै है, लज्जाकर नम्रीभूत हैं नेत्र जाके, उठतें ही प्रीतम की दृष्टि प्रियापर पड़ी। बहुरि प्रहस्तको देखकरि, "आवो मित्र" शब्द कहकर सेजसों उठे। प्रहस्त ने मित्रसों रात्रि की कुशल पूछी, निकट बैठे, मित्र नीतिशास्त्रके वेत्ता कुमारसों कहते भए कि हे मित्र ! अब उठो, प्रियाजी का सन्मान बहुरि आयकर करियो, कोई न जानै या भांति कटक में जाय पहूँचैं अन्यथा लज्जा है। रथनूपुरका धनी किन्नरगीत नगर का धनी रावण के निकट गया चाहै है सो तिहारी ओर देखै है। जो वे आगै आवैं तो हम मिलकर चलैं। अर रावण निरंतर मंत्रियोंतैं पूछै है जो पवनंजयकुमारके डेरे कहां हैं अर कब आवेंगे, तातैं अब आप शीघ्र ही रावण के निकट पधारो। प्रियाजीसों विदा मांगो, तुमकों पिता की अर रावण की आज्ञा अवश्य करनी है। कुशल क्षेमसों कार्यकर शिताब ही आवेंगे तब प्राणप्रियासों अधिक प्रीति करियो।

तब पवनंजय ने कही, हे मित्र ! ऐसे ही करना। ऐसा कहकर मित्रको तो बाहिर पठाया अर आप प्राणवल्लभासों अतिस्नेहकर उरसों लगाय कहते भए. हे प्रिये ! अब हम जाय हैं, तुम उद्वेग मत करियो, थोड़े ही दिनोंमें स्वामी का कामकर हम आवेंगे, तुम आनंदसों रहियो। तब अजनासुन्दरी हाथ जोड़कर कहती भई, हे महाराजकुमार ! मेरा ऋतुसमय है सो गर्भ मोहि अवश्य रहेगा। अर अबतक आपकी कृपा नाहीं हुती, यह सर्व जानैं हैं सो माता पितासों मेरे कल्याण के निमित्त गर्भका वृत्तांत कह जावो। तुम दीर्घदर्शी सब प्राणियोंमें प्रसिद्ध हो। ऐसे जब प्रियाने कह्या तब प्राणवल्लभाकों कहते भए। हे प्यारी ! मैं माता पितासों विदा होय निकस्या सो अब उनके निकट जाना बनैं नाहीं, लज्जा उपजै है। लोक मेरी चेष्टा जान हंसेंगे, तातैं जब तक तिहारा

गर्भ प्रकाश न पावै ताके पहिले ही मैं आऊं हूं, तुम चित्त प्रसन्न राखो अर कोई कहै तो ये मेरे नाम की मुद्रिका राखो, हाथों के कड़े राखो, तुमको सब शांति होयगी, ऐसा कहकर मुद्रिका दई अर बसंतमाला को आज्ञा दई इनकी सेवा बहुत नीके करियो, आप सेजसों उठे, प्रिया विषैं लगा रहा है प्रेम जिनका, कैसी है सेज ? संयोग के योगतैं विखर रहे हैं हार के मुक्तफल जहां अर पुष्पनिकी सुगंध मकरंदतैं भ्रमै हैं भ्रमर जहां। क्षीरसागर की तरंग समान अति उज्ज्वल विछे हैं पट जहां, आप उठकर मित्र के सहित विमान पर बैठि आकाशके मार्ग चाले। अंजना सुंदरी ने अमंगल के कारण आंसू न काढ़े। हे श्रेणिक ! कदाचित् या लोकविषैं उत्तम वस्तु के संयोगतैं किंचित् सुख होय है सो क्षणभंगुर है अर देहधारियों के पाप के उदयतैं दुःख होय है, सुख-दुःख दोनों विनश्वर हैं, तातैं हर्ष विषाद न करना। हो प्राणी हो ! जीवों को निरंतर सुख का देनहार दुःखरूप अंधकार का दूर करणहारा जिनवर-भाषित धर्म सोई भया सूर्य ताके प्रतापकरि मोह-तिमिर हरहु।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषावचनिका विषैं पवनंजय अंजनाका संयोग वर्णन करने वाला सोलहवां पर्व पूर्ण भया ॥१६॥

[अंजना के गर्भ का प्रगट होना और सासू द्वारा घर से निकाला जाना]

अथानंतर कैयक दिनों विषैं महेंद्र की पुत्री जो अंजना ताके गर्भ के चिन्ह प्रगट भए। कछुइक मुख पांडुवर्ण होय गया मानों हनुमान गर्भ में आया सो तिनका यश ही प्रगट भया है। मंद चाल चलने लगी जैसा मदोन्मत्त दिग्गज विचरै है, स्तन युगल अति उन्नति को प्राप्त भए, श्यामलीभूत है अग्रभाग जिनके, आलसतैं वचन मंद मंद निसरैं, भौंहों का कंप होता भया, इन लक्षणनिकरि ताहि सासू गर्भिणी जानकर पूछती भई कि तैंने यह कर्म कौनतैं किया। तब यह हाथ जोड़ प्रणाम कर पति के आवने का समस्त वृत्तांत कहती भई तदि केतुमती सासू क्रोधायमान भई। महा निठुर वाणीरूप पाषाण कर पीडती भई अर कहा हे पापिनि ! मेरा पुत्र तेरेतैं अति विरक्त, तेरा आकार भी न देख्या चाहै, तेरे शब्द को श्रवणविषैं धारै नाहीं, माता-पितासों विदा होयकर रणसं

१७वां पर्व

ग्राम को बाहिर निकस्या, वह वीर कैसैं तेरे मंदिरमें आवै, हे निर्लज्ज ! धिक्कार है तुझ पापनकों । चंद्रमाकी किरण समान उज्जवल वंशकों दूषण लगावनहारी, यह दोनों लोक मैं निंद्य अशुभक्रिया तैनें आचरी अर तेरी यह सखी वसंतमाला याने तोहि ऐसी बुद्धि दीनी, कुलटाके पास वेश्या रहै तब काहेकी कुशल ? मुद्रिका अर कड़े दिखाए तो भी ताने न मानी, अत्यंत कोप किया । एक क्रूर नामा किंकर बुलाया । वह नमस्कार कर आय ठाढ़ा भया । तब क्रोध कर केतुमतीने लाल नेत्र कर कहा, हे क्रूर ! सखी सहित याहि गाड़ी में बैठाय महेंद्रनगरके निकट छोड़ आवो । तब क्रूर केतुमती की आज्ञातैं सखी सहित अंजना कों गाड़ी में बैठाकर महेंद्रनगर की ओर ले चल्या । कैसी है अंजना सुन्दरी ? अति कांपै है शरीर जाका, महा पवनकर उपड़ी जो बेल ता समान निराश्रय, अति आकुल कांतिरहित दुःखरूप अग्निकर जल गया है हृदय जाका, भयंकर सासूकों कछु उत्तर न दिया, सखीकी ओर धरे हैं नेत्र जानैं, मनकर अपने अशुभ कर्मको बारंबार निंदती अश्रुधारा नाखती, निश्चल नहीं है चित जाका, सो क्रूर इनको लेय चाल्या सो क्रूरकर्मविषैं अति प्रवीण है । दिवसके अंतमें महेंद्रनगरके समीप पहुंचाय कर नमस्कार कर मधुर वचन कहता भया । हे देवी ! मैं अपनी स्वामिनी की आज्ञातैं तुमको दुःख का कारण कार्य किया, सो क्षमा करहु । ऐसा कहकर सखी सहित सुन्दरीकूं गाड़ीतैं उतार विदा होय गाड़ी लेय स्वामिनीपै गया । जाय विनती करी—आपकी आज्ञा प्रमाण तिनकूं तहां पहुंजाय आया हूं ।

अथानंतर महा उत्तम महा पतिव्रता जो अंजनासुन्दरी ताहि पतिके योगतैं दुःख के भारतैं पीड़ित देख सूर्य भी मानो चिंताकर मंद होय गया अर रुदनकर अत्यंत लाल होय गए हैं नेत्र जाके, ऐसी अंजना सो मानो याके नेत्र की अरुणता कर पश्चिमदिशा रक्त होय गई, अंधकार फैल गया, रात्रि भई, अंजना के दुःखतैं निकसी जो आंसून की धारा तेई भए मेघ तिनकर मानों दसों दिशा श्याम होय गई अर पंछी कोलाहल शब्द करते भए सो मानों अंजनाके दुःखतैं दुःखी भए पुकारैं हैं । वह अंजना अपवादरूप महादुःख का जो सागर तामें डूबी क्षुधादिक दुःख भूल गई अत्यंत भयभीत अश्रुपात नाखै, रुदन करैं, सो वसंतमाला सखी धैर्य बंधावैं, रात्री को पल्लव का सांथर बिछाय दिया सो याकों निद्रा रंच भी न आई । निरंतर उष्ण अश्रुपात पड़ैं सो मानों दाहके भयतैं निद्रा भाज गई, वसंतमाला पांव दावै, खेद दूर किया, दिलासा करी, दुखःके योगकर एक रात्री वर्ष बराबर बीती । प्रभात में सांथरेको तजकर नाना संकल्प विकल्पनिके सैंकड़ानि शंका करि अति विह्वल पिता के घर की

ओर चाली। सखी छाया समान संग चाली। पिता के मन्दिर के द्वार जाय पहुँची। भीतर प्रवेश करती द्वारपाल ने रोकी, दुःख के योगतैं और ही रूप होय गया सो जानी न पड़ी। तब सखी ने सब वृतांत कह्या सो जानकर शिलाकवाट नामा द्वारपाल ने एक और मनुष्य कों द्वारे मेलि आप राजा के निकट जाय नमस्कार करि विनती करी। पुत्री के आगमन का वृत्तान्त कह्या।

तब राजा के निकट प्रसन्नकीर्ति नामा पुत्र बैठ्या हुता सो राजा ने पुत्र को आज्ञा करी–तुम सुम्मुख जाय उसका शीघ्र ही प्रवेश करावो, तुम तो पहिले जावो और हमारी असवारी तैयार करावों, हम भी पीछेतैं आवैं हैं, तदि द्वारपालने हाथ जोड़कर नमस्कार कर यथार्थ विनती करी। तब राजा महेंद्र लज्जाका कारण सुनकर महा कोपवान भए। अर पुत्रकों आज्ञा करी कि पापिनीकूं नगरमें तैं काढ़ देवो, जाकी वार्ता सुनकर मेरे कान मानों वज्र कर हते गए हैं। तब एक महोत्साह नामा वड़ा सामंत, राजा का अतिवल्लभ, सो कहता भया, हे नाथ! ऐसी आज्ञा करनी उचित नहीं, वसंतमालासों सब ठीक पाड़ लेहु। सासू केतुमती अति क्रूर है अर जिनधर्मतैं परान्मुख हैं। लौकिकसूत्र जो नास्तिकमत ताविषैं प्रवीण है तानैं विना विचार्या झूठा दोष लगाया। यह धर्मात्मा श्रावकके व्रतकी धरणहारी, कल्याण आचार विषैं तत्पर पापिनी सासू ने निकासी है अर तुम भी निकासो तो कौनके शरणैं जाय, जैसैं व्याघ्रकी दृष्टितैं मृगी त्रासकों प्राप्त भई संती महा गहन वनका शरण लेय, तैसैं यह भोली निष्कपट सासूतैं शंकित भई तुम्हारे शरण आई है, मानों जेठके सूर्य की किरण के संतापतैं दुःखित भई महावृक्षरूप जो तुम सो तिहारे आश्रय आई है। यह गरीबिनी, विह्वल है आत्मा जाका अपवादरूप जो आताप ताकर पीड़ित तिहारे आश्रय भी साता न पावै तो कहाँ पावै? मानों स्वर्ग तैं लक्ष्मी ही आई है। द्वारपाल ने रोकी सो अत्यंत लज्जा कों प्राप्त भई। विलखि करि माथा ढांकि द्वारैं खड़ी है, आपके स्नेह कर सदा लाडली है, सो तुम दया करो, यहु निर्दोष है, मंदिर मांहि प्रवेश करावो अर केतुमती की क्रूरता पृथ्वी विषैं प्रसिद्ध है। ऐसे न्याय रूप वचन महोत्साह सामंत ने कहे, सो राजा कान न धरै, जैसैं कमलोंके पत्रनिविषैं जलकी बूंद न ठहरै तैसैं राजा के चित्त में यह बात न ठहरी।

राजा सामंत सों कहते भए कि यह सखी वसंतमाला सदा याके पास रहै अर याही के स्नेह के योगतैं कदाचित् सत्य न कहै तो हमको निश्चय कैसैं आवै, यातैं याके शील विषैं संदेह है, सो याकों नगरतैं निकास देहु। जब यह

वात प्रसिद्ध होयगी तो हमारे निर्मल कुल विषैं कलंक आवेगा। जे बड़े कुलकी वालिका निर्मल हैं अर महा विनयवंती उत्तम चेष्टाकी धरणहारी हैं ते पीहर सासुरै सर्वत्र स्तुति करने योग्य हैं। जे पुण्याधिकारी वड़े पुरुष जन्म ही तैं निर्मल शील पालैं हैं, ब्रह्मचर्य को धारण करैं हैं अर सर्व दोष का मूल जो स्त्री तिनकों अंगीकर नाहीं करैं हैं ते धन्य हैं। ब्रह्मचर्य समान और कोई व्रत नाहीं अर स्त्री के अंगीकार में यह सफल नाहीं होय है। जो कुपूत वेटा वेटी होय अर उनके अवगुण पृथ्वी विषैं प्रसिद्ध होंय तो पिताका धरतीमें गड़ जाना होय है। सब ही कुल कों लज्जा उपजै है, मेरा मन आज अति दुःखित होय रह्या है, मैं यह वात पूर्व अनेक वार सुनी हुती जो यह भरतार के अप्रिय है अर वह याहि आँखतैं नाहीं देखै है, सो ताकरि गर्भकी उत्पत्ति कैसैं भई, तातैं यह निश्चय सेती सदोष है। जो कोई याहि मेरे राज्य में राखेगा सो मेरा शत्रु है। ऐसे वचन कहकर राजा ने कोपकर जैसैं कोई जानै नाहीं या भांति याकों द्वारतैं निकाल दीनी।

सखी सहित दुःखकी भरी अंजना राजाके निज वर्ग के जहां जहां आश्रय के अर्थि गई, सो आने न दीनी, कपाट दिए। जहां वाप ही क्रोधायमान होय निराकरण करै, तहां कुटुम्व की कैसी आशा, वे तो सब राजा के अधीन हैं। ऐसा निश्चयकर सबतैं उदास हो सखीसों कहती भई। आंसूवों के समूहकर भीज गया है अंग जाका, हे प्रिये! यहाँ सर्व पाषाण चित्त हैं, यहां कैसा वास ? तातैं वन में चालैं, अपमानतैं तो मरना भला। ऐसा कहकर सखी सहित वन को चाली, मानों मृगराजतैं भयभीत मृगी ही है। शीत उष्ण अर वात के खेदकरि पीड़ित वन में वैठि महा रुदन करती भई। हाय हाय! मैं मंदभागिनी दुःखदाई जो पूर्वोपार्जित कर्म ताकरि महाकष्टकों प्राप्त भई। कौनके शरण जाऊं ? कौन मेरी रक्षा करै। मैं दुर्भाग्य सागरके मध्य कौन कर्मतैं पड़ी। नाथ! मेरा अशुभ कर्मका प्रेर्‌या कहांतैं आया ? काहेको गर्भ रह्या, मेरा दोनों ही ठौर निरादर भया। माता ने भी मेरी रक्षा न करी, सो वह कहा करै। अपने धनी की आज्ञाकारिणी पतिव्रतानिका यही धर्म है। अर नाथ मेरा यह वचन कह गया हुता कि तेरे गर्भकी वृद्धितैं पहिले ही मैं आऊंगा सो हाय वह वचन क्यों भूले ? अर सासू ने विना परखे मेरा त्याग क्यों किया ? जिनके शील में संदेह होय तिनके परखने के अनेक उपाय हैं अर पिताकों मैं वाल-अवस्था विषैं अति लाड़ली हुती, निरंतर गोदमें खिलावते हुते सो विना परखे मेरा निरादर किया, इनको ऐसी वुद्धि क्यों उपजी ? अर माताने मुझे गर्भमें धारी, प्रतिपाल किया, अव एक वात भी मुखतैं न निकाली कि इसके गुण दोष का निश्चय कर लेवें।

अर भाई जो एक माताके उदरसों उत्पन्न भया हुता, सोहू मो दुःखिनी कों न राख सक्या, सब ही कठोर चित्त होय गए। जहां माता पिता भ्राता ही की यह दशा, तहां काका वावा के दूर भाई तथा प्रधान सामंत कहा करैं अथवा उन सबका कहा दोष ? मेरा जो कर्मरूप वृक्ष फल्या सो अवश्य भोगना। या भांति अंजना विलाप करै सो सखी भी याके लार विलाप करै। मनतैं धैर्य जाता रह्या, अत्यत दीन मन होय ऊंचे स्वरतैं रूदन करै सो मृगी भी याकी दशा देख आंसू डालवे लागी। बहुत देरतक रोनेतैं लाल होय गए हैं नेत्र जाके तब सखी वसंतमाला महाविचक्षण याहि छातीसूं लगाय कहती भई–हे स्वामिनि ! बहुत रोनेतैं क्या लाभ ? जो कर्म तैंने उपाज्या है सो अवश्य भोगना है, सब ही जीवनिके कर्म आगैं पीछैं लग रहे हैं सो कर्मके उदयविषैं शोक कहा ? हे देवी ! जो स्वर्ग लोक के देव सैकड़ों अप्सराओं के नेत्रनिकर निरंतर अवलोकिए है, तेहू सुकृतके अंत होतें परम दुःख पावैं हैं। मनमें चितए कछू और, होय जाय कछु और।

जगतके लोक उद्यम में प्रवर्तैं हैं तिनकों पूर्वोपार्जित कर्मका उदय ही कारण है। जो हितकारी वस्तु आय प्राप्त भई सो अशुभकर्म के उदयतैं विघटि जाय। अर जो वस्तु मनतैं अगोचर है सो आय मिलै। कर्मनिकी गति विचित्र है तातैं हे देवी ! तू गर्भके खेदकरि पीड़ित है, वृथा क्लेश मत कर, तू अपना मन दृढ़ कर। जो तैंने पूर्व जन्म में कर्म उपार्जे हैं तिनके फल टारे न टरैं। अर तू तो महा बुद्धिमती है तोहि कहा सिखाऊं। जो तू न जानती होय तो मैं कहूँ, ऐसा कहकर याके नेत्रनिके आंसू अपने वस्त्रतैं पोंछे। बहुरि कहती भई–हे देवी ! यह स्थानक आश्रय रहित है, तातैं उठो, आगैं चालैं, या पहाड़ के निकट कोई गुफा होय जहां दुष्ट जीवनिका प्रवेश न होय, तेरे प्रसूतिका समय आया है सो कईएक दिन यत्नसूं रहना। तब यह गर्भके भारतैं जो आकाशके मार्ग चलनेमें हू असमर्थ है तो भूमिपर सखीके संग गमन करती महा कष्टकरि पांव धरती भई। कैसी है वनी ? अनेक अजगरनितैं भारी, दुष्ट जीवनिके नादकरि अत्यंत भयानक, अति सघन, नाना प्रकार के वृक्षनिकरि सूर्यकी किरणका भी संचार नाहीं, जहां सूईके अग्रभाग समान डाभकी अणी अति तीक्ष्ण, जहां ककर बहुत अर माते हाथीनिके समूह अर भीलों के समूह बहुत हैं अर वनी का नाम मातंगमालिनी है, जहां मनकी भी गम्यता नाहीं तो तनकी कहा गम्यता ? सखी आकाशमार्गतैं जायवेको समर्थ अर यह गर्भ के भारकरि समर्थ नाहीं तातैं सखी याके प्रेम के बंधनसों बंधी शरीरकी छाया समान लार लार चालै है। अंजना वनी को अति भयानक देखकर कांपै है, दिशा भूल गई।

तब वसंतमाला याकों अति व्याकुल जानि हाथ पकड़ि कहती भई, हे स्वामिनि ! तू डरै मत, मेरे पीछैं पीछैं चली आवो ।

तब यह सखीके कांधे हाथ मेलि चली जाय, ज्यों ज्यों डाभ की अणी चुभै त्यों त्यों अति खेदखिन्न होय, विलाप करती, देहकों कष्टतैं धारती, जलके नीझरने जे अति तीव्र वेग संयुक्त वहैं तिनकों अति कष्टतैं पार उतरती, अपने जे सब स्वजन अति निर्दई तिनका नाम चितार अपने अशुभ कर्मकों वारंवार निंदती, वेलों को पकड़ भयभीत हिरणी कैसे हैं नेत्र जाके, अंगविषैं पसेव को धरती, कांटों से वस्त्र लगि जांय सो छुड़ावती, लहूतैं लाल होय गए हैं चरण जाके, शोकरूप अग्निके दाहकरि श्याम ताकों धरती, पत्र भी हालै तो त्रासकों प्राप्त होती, चलायमान है शरीर जाका, वारंवार विश्राम लेती, ताहि सखी निरंतर प्रिय वाक्य कर धैर्य बंधावैं, सो धीरे धीरे अंजना पहाड़ीकी तलहटी आई, तहां आंसू भर करि बैठ गई। सखीसों कहती भई अब मुझमें एक पग धरने की शक्ति नाहीं, यहां ही रहूँगी, मरण होय तो होय। तब सखी अत्यंत प्रेमकी भरी महा प्रवीण मनोहर वचननिकरि याकों शांति उपजाय नमस्कार-करि कहती भई—हे देवी ! यह गुफा नजदीक ही है, कृपाकर इहांतैं उठकर वहां सुखसों तिष्ठो, यहां क्रूर जीव विचरै हैं, तोकों गर्भकी रक्षा करनी है, तातैं हठ मतिकर।

ऐसा कह्या तब वह आताप की भरी सखी के वचनकरि अर सघन वनके भयकरि चलवेको उठी, तब सखी हस्तावलंबन देयकर याकों विषमभूमितैं निकासकर गुफाके द्वारपर लेय गई। विना विचारे गुफामें बैठने का भय होय सो ये दोनों बाहिर खड़ी विषम पाषाण के उलंघवे कर उपज्या है खेद जिनको तातैं बैठ गई। तहां दृष्टि धर देख्या। कैसी है दृष्टि ? श्याम श्वेत आरक्त कमल समान प्रभाकों धरै से एक पवित्र शिलापर विराजे चारणमुनि देखे। पर्यंकासन धरे अनेक ऋद्धि संयुक्त निश्चल हैं श्वासोच्छ्वास जिनके, नासिकाके अग्र भागपर धरी है सरल दृष्टि जिनने, शरीर स्तंभ समान निश्चल है, गोदपर धर्या को वांमा हाथ ताके ऊपर दाहिना हाथ, समुद्र समान गंभीर, अनेक उपमा सहित विराजमान आत्मस्वरूप का जो यथार्थ स्वभाव जैसा निजशासन-विषैं गाया है तैसा ध्यान करते, समस्त परिग्रह रहित पवन जैसैं असंगी, आकाश जैसैं निर्मल, मानों पहाड़के शिखर ही हैं सो इन दोनों ने देखे। कैसे हैं वे साधु ? महापराक्रम के धारी, महाशांत ज्योतिरूप है शरीर जिनका। ये दोनों मुनि के समीप गई। सर्व दुःख विस्मरण भया। तीन प्रदक्षिणा देय हाथ

जोड़ि नमस्कार किया, मुनि परम बांधव पाए, फूल गए हैं नेत्र जिनके, जा समय जो प्राप्ति होनी होय सो ये दोनों हाथ जोड़ विनती करती भई मुनिके चरणारविंदकी ओर धरे हैं अश्रुपातरहित स्थिर नेत्र जिनने। हे भगवान्! हे कल्याणरूप हे उत्तम चेष्टा के धरणहारे। तिहारे शरीरमें कुशल है। कैसा है तिहारा देह? सर्व तपव्रत आदि साधनेका मूलकारण है। हे गुणनि के सागर! ऊपरां ऊपर तपकी है वृद्धि जिनके, हे महाक्षमावान! शांतभावके धारी! मन इंद्रियोंके जीतनहारे! तिहारा जो विहार है सो जीवनिके कल्याणनिमित्त है, तुम सारिखे पुरुष सकल पुरुषनिकों कुशलके कारण हैं सो तिहारी कुशल कहा पूछनी परतु यह पूछने का आचार हैं तातैं पूछी है, ऐसा कहि विनयतैं नम्रीभूत भया है शरीर जिनका सो चुप हो रही अर मुनि के दर्शनतैं सर्व भय रहित भई।

अथानंतर मुनि अमृततुल्य परमशांति के वचन कहते भये—हे कल्याण-रूपिणि! हे पुत्री! हमारे कर्मानुसार सब कुशल है। ये सर्वही जीव अपने कर्मोंका फल भोगवै हैं। देखो कर्मनिकी विचित्रता, यह राजा महेंद्र की पुत्री अपराध रहित कुटुम्बके लोगनिने काढी है। सो मुनि बड़े ज्ञानी, विना कहे सब वृतांत के जाननहारे तिनको नमस्कार कर वसंतमाला पूछती भई—हे नाथ! कौन कारणतैं भरतार यासों बहुत दिन उदास रहे? बहुरि कौन कारण अनु-रागी भए अर यह महासुखयोग्य वन विषैं कौन कारणतैं दुःखकों प्राप्त भई? मंदभागी कौन याके गर्भ में आया जाकरि याकों जीवने कासंश भया। तदि स्वामी अमितिगति तीन ज्ञान के धारक सर्व वृत्तांत यथार्थ कहते भए। यही महा पुरुषों की वृत्ति है जो पराया उपकार करैं। मुनि वसंतमाला सो कहै हैं—हे पुत्री! याके गर्भविषैं उत्तम बालक आया है, सो प्रथम तो ताके भव सुनि। बहुरि जो पूर्व भव में पापका आचरण किया, जा कारणतैं यह अंजना ऐसे दुःखकों प्राप्त भई, सो सुन।

× × × × ×

[राम लक्ष्मण का वन गमन और भरत का राज्याभिषेक]

अथानंतर राम लक्ष्मण क्षण एक निद्रा कर अर्धरात्रि के समय जब मनुष्य सोय रहे, लोकनिका शब्द मिट गया अर अंधकार फैल गया ता समय भगवानकूं नमस्कार कर बखतर पहिर धनुष बाण लेय सीताकूं बीच में लेकर चाले, घर-घर दीपकनिका उद्योत होय रहा है, कामीजन अनेक चेष्टा करैं हैं।

ये दोऊ भाई महाप्रवीण नगरके द्वारकी खिड़कीकी ओरसे निकसि दक्षिण दिशा का पंथ लिया। रात्रि के अन्त में दौड़कर सामंत लोक आय मिले। राघव के संग चलने की है अभिलाषा जिनके, दूरतैं राम लक्ष्मणकूं देख महा विनय के भरे असवारी छोड़ प्यादे आए, चरणारविंदकों नमस्कारकरि निकट आय वचनालाप करते भए। वहुत सेना आई अर जानकी की वहुत प्रशंसा करते भए जो याके प्रसादतैं हम राम लक्ष्मणकों आय मिले; यह न होती तो ये धीरे धीरे न चलते अर हम कैसे पहुंचते ? ये दोऊ भाई पवन-समान शीघ्रगामी हैं अर यह सीता महासती हमारी माता है, या समान प्रशंसा योग्य पृथ्वी विषैं और नाहीं। ये दोऊ भाई नरोत्तम सीताकी चाल प्रमाण मंद मंद दो कोस चाले।

खेतनिविषैं नाना प्रकारके अन्न हरे होय रहे हैं अर सरोवरनिमें कमल फूल रहे हैं अर वृक्ष महारमणीक दीखैं हैं। अनेक ग्राम नगरादि में ठौर ठौर भोजनादि सामग्री करि लोक पूजैं हैं। अर वड़े वड़े राजा वड़ी फौजसे आय मिले जेसैं वर्षा कालमें गंगा जमुना के प्रवाह विषैं अनेक नदियनिके प्रवाह आय मिलैं। कैइक सामंत मार्ग के खेद करि इनका निश्चय जान आज्ञा पाय पीछे गए। अर कैइक लज्जाकर, कैइक भयकर, कैइक भक्ति कर लार प्यादे चले जाय हैं सो राम लक्ष्मण क्रीड़ा करते परियात्रा नामा अटवी विषैं पहूँचे। कैसी है अटवी ! नाहर अर हाथीनिके समूहनिकर भरी, महा भयानक वृक्षनिकर रात्रि समान अंधकार की भरी, जाके मध्य नदी है ताके तट आए, जहां भीलनिका निवास है, नाना प्रकारके मिष्ठ फल हैं। आप तहां तिष्ट कर कैएक राजनिकों विदा किया अर कैएक पीछे न फिरे, राम ने वहुत कहा तो भी संग ही चाले सो सकल नदीको महा भयानक देखते भए। कैसी है नदी ? पर्वतनिसों निकसती महानील है जल जाका, प्रचंड हैं लहर जामें, महा शब्दायमान अनेक जे ग्राह मगर तिनकर भरी दोऊ ढांहां विदारती, कल्लोलनिके भयकर उड़े हैं तीरके पक्षी जहां, ऐसी नदीको देखकर सकल सामंत त्रासकर कंपायमान होय राम लक्ष्मणकूं कहते भए कि हे नाथ ! कृपाकर हमें भी पार उतारहु। हम सेवक भक्तिवंत हमसे प्रसन्न होवो। हे माता जानकी लक्ष्मणसे कहो जो हमकूं पार उतारैं या भांति आंसू डारते अनेक नरपति नाना चेष्टा के करणहारे नदी विषैं पड़ने लगे। तव राम वोले, अहो अव तुम पाछे फिरो।

यह वन महा भयानक है, हमारा तुम्हारा यहां लग ही संग हुता, पिताने भरतकूं सवका स्वामी किया है सो तुम भक्तिकर तिनकूं सेवहु। तव वे कहते भए, हे नाथ ! हमारे स्वामी तुम ही हो, महादयावान हो, हमपर प्रसन्न

होवो, हमको मत छोड़हु, तुम विना यह प्रजा निराश्रय भई, आकुलतारूप कहो कौनकी शरण जांय ? तुम समान और कौन है ? व्याघ्र सिंह अर गजेंद्र सर्पादिकका भरा भयानक जो यह वन तामें तुम्हारे संग रहेंगे। तुम बिन हमारे स्वर्ग हू सुखकारी नाहीं। तुम कही पाछे जावो सो चित्त फिरै नाहीं, कैसे जाहिं ? यह चित्त सब इंद्रियनिका अधिपति याहीतैं कहिएहैं जो यह अद्भुत वस्तु में अनुराग करै। हमारे भोगनिकर घरकर तथा स्त्री कुटुम्बादिकर कहा ? तुम नररत्न हो, तुमको छोड़ कहां जाहिं ? हे प्रभो ! तुमने बालक्रीडा विषैं हमसों कबहू वंचना न करी, अब अत्यंत निठुरताकूं धारो हो। हमारा अपराध कहो। तिहारे चरण रज कर परम वृद्धिकूं प्राप्त भए, तुम तो भृत्य-वत्सल हो। अहो माता जानकी ! अहो लक्ष्मण धीर ! हम शीश नवाय हाथ जोड़ विनती करै, नाथकूं हम पर प्रसन्न करहु। ये वचन सबनिने कहे, तब सीता अर लक्ष्मण रामके चरणनिकी ओर निरख रहे। तब राम बोले—जाहु, यही उत्तर है। सुखसों रहियो, ऐसा कहकर दोनों धीर नदी के विषै प्रवेश करते भए।

श्रीराम सीता का कर गह सुखसे नदीमें लेगए जैसैं कमलिनीकों दिग्गज ले जाय। वह असराल नदी राम लक्ष्मणके प्रभावकर नाभि-प्रमाण बहने लगी, दोऊ भाई जलविहार विषै प्रवीण क्रीड़ा करते चले गए। राम के हाथ गहे ऐसी शोभैं मानों साक्षत लक्ष्मी ही कमलदल में तिष्ठी है राम लक्ष्मण क्षणमात्र विषैं नदी पार भए वृक्षनिके आश्रय आय गए। तब लोकनिकी दृष्टितैं अगोचर भए। तब कई एक तो विलाप करते आसूं डारते घरनिकूं गए अर कई एक राम लक्ष्मण की ओर धरी है दृष्टि जिनने सो काष्ठ से होय रहे अर कई एक मूर्च्छा खाय धरतीपर पड़े अर कई एक ज्ञान को प्राप्त होय जिनदीक्षा-को उद्यम भए, परस्पर कहते भए—जो धिक्कार है या असार संसार को अर धिक्कार इन क्षणभंगुर भोगनिको ! ये काले नाग के फण समान भयानक हैं। ऐसे शूरवीरनिकी यह अवस्था तो हमारी कहा बात ? या शरीरको धिक्कार ! जो पानीके बुदबुदा समान निस्सार, जरा मरण इष्टवियोग अनिष्टसंयोग इत्यादि कष्ट का भाजन है। धन्य हैं वे महापुरुष भाग्यवंत उत्तम चेष्टाके धारक ! जे मरकट (बन्दर) की भौंह समान लक्ष्मी को चंचल जान तजिकर दीक्षा धरते भए। या भांति अनेक राजा विरक्त होय दीक्षा को सन्मुख भए। तिनने एक पहाड़ीकी तलहटी में सुन्दर वन देख्या, अनेक वृक्षनिकर मंडित महासघन, नानाप्रकार के पुष्पनिकर शोभित, जहां सुगंध के लोलुपी भ्रमर गुंजार करै हैं तहां महापवित्र स्थानक में तिष्ठते ध्यानाध्ययनविषै तीन महातप

के धारक साधु देखे। तिनको नमस्कार कर वे राजा जिननाथ का जो चैत्यालय तहां गए। ता समय पहाड़निके शिखर विषैं अथवा रमणीक वन विषैं अथवा नदीनके तट विषैं अथवा नगर ग्रामदिक विषैं जिन मंदिर हुते तहां नमस्कार करि एक समुद्र समान गम्भीर मुनिनके गुरु सत्यकेतु आचार्य तिनके निकट गए, नमस्कार कर महाशांत रस के भरे आचार्य से वीनती करते भए—हे नाथ ! हमको संसार समुद्रतैं पार उतारहु। तब मुनि कही—तुमको भव—पार उतारनहारी भगवती दीक्षा है सो अंगीकार करहु। मुनि की यह आज्ञा पाय ये परम हर्षकूं प्राप्त भए।

राजा विदग्धविजय मेरुक्रूर संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर शत्रुदमन अर विनोद कंटक, सत्यकठोर, प्रियवर्धन इत्यादि निर्ग्रंथ होते भए, तिनका गज तुरंग रथादि सकल साज सेवक लोकनि ने जाय करि उनके पुत्रादिकनिकूं सौंप्या, तब वे बहुत चितावान भए। बहुरि समझकर नाना प्रकार के नियम धारते भए। कैयक सम्यग्दर्शन कूं अंगीकार कर संतोषकूं प्राप्त भए, कैयक निर्मल जिनेश्वरदेव का धर्म श्रवणकरि पापतैं परान्मुख भए। बहुत सामंत राम लक्ष्मणकी वार्ता सुन साधु भए, कैयक श्रावक के अणुव्रत धारते भए। बहुत रानी आर्यिका भई, बहुत श्राविका भई, कैयक सुभट राम का सर्व वृत्तांत भरत दशरथ पर जाकर कहते भए सो सुनकर दशरथ अर भरत कछूयक खेदकूं प्राप्त भए।

अथानंतर राजा दशरथ भरतको राज्याभिषेक कर, कछुयक जो राम के वियोग कर व्याकुल भया हुता हृदय सो समता लाय, विलाप करता जो अंतःपुर ताहि प्रतिबोधि नगरतैं वनकूं गए। सर्वभूतहित स्वामी को प्रणामकरि बहुत नृपनि सहित जिनदीक्षा आदरी। एकाकी विहारी जिनकल्पी भए। परम शुक्लध्यान की है अभिलाषा जिनके तथापि पुत्र के शोक कर कबहूं कछु इक कलुषता उपज आवै सो एक दिन ये विचक्षण विचारते भए कि संसार के दुःख का मूल जगतका स्नेह है, इसे धिक्कार हो ! या करि कर्म बंधैं हैं। मैं अनन्त जन्म धरे तिनविषैं गर्भ—जन्म के अनेक माता—पिता भाई पुत्र कहां गए ? अनेक बार में देवलोकके भोग भोगे। अर अनेक बार नरक के दुःख भोगे, तिर्यंच गति विषै मेरा शरीर अनेक बार इन जीवनिमें भख्या, इनका मैं भख्या; नाना रूप ये योनियाँ तिन विषैं मैं बहुत दुःख भोगे। अर बहुतवार रुदनके शब्द सुने। अर बहुत बार वीणावांसुरी आदि वादित्रों के नाद सुने, गीतसुने, नृत्य देखे देवलोंकविषैं मनोहर अप्सरानिके भोग भोगे। अनेक बार मेरा शरीर नरकविषैं

कुल्हाड़निकर काटा गया। अर अनेक वार मनुष्यगतिविषैं महासुगन्ध महावीर्य करणहारा षट्रस संयुक्त अन्न आहार किया। अर अनेक वार नरकविषें गला हुआ सीसा अर तांवा नारकियोंने मार मार मुझे प्याया। अर अनेक वार सुर नर गतिविषैं मनके हरणहारे सुन्दर रूप देखे अर सुन्दर रूप धारे। अर अनेक वार नरक विषैं महा कुरूप धारे। अर नाना प्रकार के त्रास देखे। कैयक बार राजपद देवपदविषैं नाना प्रकारके सुगन्ध सूंघे तिनपर भ्रमर गुंजर करैं। अर कैयक वार नरककी महा दुर्गन्ध सूंघी। अर अनेक वार मनुष्य तथा देवगति-विषैं महालीला की धरणहारी, वस्त्राभरण मंडित, मन की चोरनहारी जे नारी तिनसों आलिंगन किया। अर बहुत वार नरकविषैं कूटशाल्मलि वृक्ष तिनके तीक्ष्ण कंटक अर प्रज्वलिती लोह की पुतलीनि से स्पर्श किया ? या संसार विषैं कर्मनिके संयोगतैं मैं कहा कहा न सूंघा, कहा कहा न सुना, कहा कहा न भखा। अर पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय विषैं ऐसा देह नाहीं जो मैं न धरा। तीनलोकविषैं ऐसा जीव नाहीं जासूं मेरे अनेक नाते न भए, ये पुत्र मेरे कई बार पिता भए, माता भए, शत्रु भए। ऐसा स्थानक नाहीं, जहां मैं न उपजा, न मूआ।

ये देह भोगादिक अनित्य, या जगतविषैं कोई शरण नाहीं। यह चतुर्गति-रूप संसार दुःखका निवास है, मैं सदा अकेला हूँ। ये षट्द्रव्य परस्पर सब ही भिन्न हैं; यह काय अशुचि, मैं पवित्र; ये मिथ्यात्वादि अव्रतादि कर्म आस्रव के कारण हैं, सम्यक्त व्रत संयमादि संवर के कारण हैं। तपकर निर्जरा होय है। यह लोक नानरूप मेरे स्वरूतैं भिन्न, या जगत विषैं आत्मज्ञान दुर्लभ है अर वस्तु का जो स्वभाव सोई धर्म तथा जीव धर्म सो मैं महाभाग्यतैं पाया। धन्य ये मुनि जिनके उपदेशतैं मोक्षमार्ग पाया सो अब पुत्रनिकी कहा चिंता ? ऐसा विचार कर दशरथ मुनि निर्मोह दशाकूं प्राप्त भए। जिन देशों में पहिले हाथी चढ़े, चमर ढुरते, छत्र फिरते हुते अर महारण संग्राम विषैं उद्धत वैरि-निकूं जीते हेतु तिन देशनिविषैं निग्रन्थ दशा धरे, बाईस परीषह जीतते, शांति-भाव संयुक्त विहार करते भए।

अर कौशल्या तथा सुमित्रा पति के वैरागी भए अर पुत्रनिके विदेश गए महा शोकवंती भई, निरंतर अश्रुपात डारैं, तिनके दुःखकूं देख भरत राज्य विभूति को विष समान मानता भया। अर केकई तिनकूं दुःखी देख, उपजी है करुणा जाके, पुत्रको कहती भई कि हे पुत्र ! तू राज्य पाया, बड़े बड़े राजा सेवा करैं हैं परन्तु राम लक्ष्मण विना यह राज्य शोभै नाहीं सो वे दोऊ भाई

महाविनयवान उन विना कहा राज्य अर कहा सुख अर कहा देश की शोभा अर कहा तेरी धर्मज्ञता ? वे दोऊ कुमार अर वह सीता राजपुत्री सदा सुख के भोगनहारे पाषाणादिककर पूरित जे मार्ग ताविषैं वाहन विना कैसैं आवेंगे ? अर तिन गुण-समुद्रनिकी ये दोनों माता निरन्तर रुदन करै हैं सो मरणकूं प्राप्त होंयगीं, तातैं तुम शीघ्रगामी तुरंग पर चढ़ शितावी जावो, उनको ले आवो, तिन सहित महासुखसों चिरकाल राज करियो अर मैं भी तेरे पीछे ही उनके पास आऊं हूं। यह माता की आज्ञा सुन वहुत प्रसन्न होय ताकी प्रशंसा कर अति आतुर भरत हजार अश्वसहित राम के निकट चला। अर जे रामके समीप वापिस आए हुते तिनकूं संग ले चला आप तेज तुरंग पर चढ़ा, उतावलीं चालसे वन विषैं आया। वह नदी असराल वहती हुती सो तामें वृक्षनिके लठे गेर, वेड़े वांव क्षणमात्र में सेना सहित पार उतरे, मार्ग विषैं नर नारिनसों पूछते जांय जो तुम राम लक्ष्मण कहीं देखे ? वे कहै हैं, यहांते निकट ही हैं। सो भरत एकाग्रचित्त चले गए। सघन वनमें एक सरोवर के तट पर दोऊ भाई सीता सहित वैठे देखे, समीप हैं धनुप वाण जिनके। सीताके साथ ते दोऊ भाई घने दिवसविषैं आए। अर भरत छह दिनमें आया। रामकूं दूरते देख भरत तुरंगतैं उतर पाय पियादा जाय राम के पांयनि पर मूर्च्छित होय गया तव राम सचेत किया। भरत हाथ जोड़ सिर नवाय रामसूं वीनती करता भया।

हे नाथ ! राज्य देयवेकर मेरी कहा विडम्वना करी। तुम सर्व न्याय-मार्गके जाननहारे, महा प्रवीण मेरे या राज्यकरि कहा प्रयोजन ? तुम विना जीवेकर कहा प्रयोजन ? तुम महा उत्तम चेष्टाके धरणहारे मेरे प्राणनिके आधार हो। उठो, अपने नगर चलैं। हे प्रभो ! मो पर कृपा करहु, राज्य तुम करहु, राज्य योग्य तुम ही हो, मोहि सुखकी अवस्था देहु। मै तिहारे सिर पर छत्र फेरता खड़ा रहूंगा अर शत्रुघ्न चमर ढोलेगा अर लक्ष्मण मंत्रीपद धारेगा। मेरी माता पश्चातापरूप अग्निकर जरै है अर तिहारी माता अर लक्ष्मण की माता महाशोक करै है, यह वात भरत करै हैं ताही समय शीघ्र रथपर चढ़ी अनेक सामंतनिसहित महाशोककी भरी केकई आई अर राम लक्ष्मणकूं उरसूं लगाय वहुत रुदन करती भई। राम ने धैर्य वंधाया।

तव केकई कहती भई—हे पुत्र ! उठो, अयोध्या चलो, राज्य करहु, तुम विन मेरे सकल पुर वन के समान है। अर तुम महा वुद्धिमान हो, भरतकूं सिखाय लेहु। वहुरि हम स्त्रीजन नष्ट वुद्धि हैं, मेरा अपराध क्षमा करहु। तव राम कहते भए—हे मात ! तुम वातनि विषैं प्रवीण हो, तुम कहा न

जानो हो कि क्षत्रियन का नियम है जो वचन न चूकै; जो कार्य विचार्या ताहि और भांति न करैं। हमारे तात ने जो वचन कह्या सो हमकूं अर तुमकूं निवाहना, या बात विषैं भारत की अकीर्ति न होयगी। बहुरि भरतसू कहा कि हे भाई! तू चिंता मत करै, तू अनाचारतैं शंकै है सो पिता की आज्ञा अर हमारी आज्ञा पालवेतैं अनाचार नाहीं। ऐसा कहकर वनविषैं सब राजनिके समीप भरत का श्रीराम ने राज्याभिषेक किया कर केकईकूं प्रणाम कर बहुत स्तुति कर बारंबार संभाषण कर भरतकूं उरसूं लगाय बहुत दिलासा करी, नीठितैं विदा किया। केकई अर भरत राम लक्ष्मण सीता के समीपतैं पाछे नगरकूं चाले, भरत राम की आज्ञा प्रमाण प्रजा का पिता समान हुआ। राज्यविषैं सर्व प्रजाकूं सुख, कोई अनाचार नाहीं; ऐसा निःकंटक राज्य तौहू भरत का क्षणमात्र राग नाहीं। तीनों काल श्री अरनाथ की वंदना करै है अर मुनिन के मुखतैं धर्म श्रवण करै; द्युति भट्टारक नामा जे मुनि, अनेक मुनि करै हैं सेवा जिनकी, तिनके निकट भरत ने यह नियम लिया कि राम के दर्शन मात्रतैं ही मुनिव्रत धारूंगा। तब मुनि कहते भए कि—हे भव्य! कमल सारिखे हैं नेत्र जिनके, ऐसे राम जौ लग न आवैं तौ लग तुम गृहस्थ के व्रत धारहु। जे महात्मा निर्ग्रन्थ हैं तिनका आचरण अति विषम है सो पहिले श्रावक के व्रत पालने तासूं यति का धर्म सुखसूं सधै। जब वृद्ध अवस्था आवेगी तब तप करेंगे, यह वार्ता कहते हुवे अनेक जड़बुद्धि मरणकूं प्राप्त भए। महा अमोलक रत्न समान यति का धर्म, जाकी महिमा कहने विषैं न आवै ताहि जे धारैं हैं तिनकी उपमा कौन की देहि। यति के धर्मतैं उतरता श्रवक का धर्म है जे प्रमाद रहित करै हैं ते धन्य हैं।

यह अणुव्रत हू प्रबोध का दाता है। जैसैं रत्नद्वीप विषैं कोऊ मनुष्य गया अर वह जो रत्न लेय सोई देशांतर विषैं दुर्लभ है तैसें जिनधर्म नियमरूप रत्ननिका द्वीप है, ता विषैं जो नियम लेय सोई महाफल का दाता है। जो अहिंसारूप रत्नकूं अंगीकारकर जिनवरकूं भक्तिकर अरचै सो सुर नरके सुख भोग मोक्षकूं प्राप्त होय। अर जो सत्यव्रतका धारण मिथ्यात्व का परिहारकर भावरूप पुष्पनिकी माला कर जिनेश्वरकूं पूजैं हैं, ताकी कीर्ति पृथ्वी विषैं विस्तरै है अर आज्ञा कोई लोप न सकै। अर जो परधन का त्यागी जिनेंद्रकूं उरविषैं धारै, बारंबार जिनेंद्रकूं नमस्कार करै, वह नव निधि चौदह रत्न का स्वामी होय अक्षयनिधि पावै। अर जो जिनराज का मार्ग अंगीकार कर परनारी का त्याग करै सो सबके नेत्रनिकूं आनंदकारी मोक्ष-लक्ष्मी का वर होय। अर जो परिग्रह का प्रमाणकर संतोष धर जिनपतिका ध्यान करै सो

लोकपूजित अनंत महिमाकूं पावै। अर आहार दान के पुण्य कर महासुखी होय, ताकी सब सेवा करैं। अर अभयदान कर निर्भय पद पावै, सर्व उपद्रवतैं रहित होय। अर ज्ञानदान कर केवलज्ञानी होय सर्वज्ञपद पावै। अर औषधि-दान के प्रभाव कर रोगरहित निर्भयपद पावै। अर जो रात्रिकूं आहार का त्याग करै सो एक वर्ष विषैं छह महीना उपवास का फल पावै, यद्यपि गृहस्थपद के आरंभ विषैं प्रवर्तै है तो हू शुभ गति के सुख पावै।

जो त्रिकाल जिनदेव की वंदना करै ताके भाव निर्मल होंय, सर्व पापका नाश करै। अर जो निर्मल भाव रूप वहुपनिकर जिननाथकूं पूजै सो लोकविषैं पूजनीक होय। अर जो भोगी पुरुष कमलादि जल के पुष्प तथा केतकी मालती आदि पृथ्वी के सुगंध पुष्पनिकर भगवानकूं अरचै सो पुष्पक विमानकूं पाय यथेष्ट क्रीड़ा करै। अर जो जिनराज पर अगर चंदनादि धूप खेवै सो सुगंध शरीर का धारक होय। अर जो गृहस्थी जिनमंदिर विषैं विवेकसहित दीपोद्योत करै सो देवलोक विषैं प्रभाव सयुक्त शरीर पावै। अर जो जिनभवन विषैं छत्र चमर झालरी पताका दर्पणादि मंगलद्रव्य चढ़ावै अर जिनमंदिरकूं शोभित करै सो आश्चर्यकारी विभूति पावै। अर जो जल-चंदनादितैं जिनपूजा करै सो देवनिका स्वामी होय, महानिर्मल सुगंधमय शरीर जे देवांगना तिनका वल्लभ होय। अर जो नीरकर जिनेंद्र का अभिषेक करै सो देवनिकर मनुष्यनितैं सेवनीक चक्रवर्ती होय, जाका राज्यभिषेक देव विद्याधर करैं। अर जो दुग्धकरि अरहंत का अभिषेक करै सो क्षीरसागर के जलसमान उज्जवल विमान विषैं परम कांति धारक देव होय वहुरि मनुष्य होय मोक्ष पावै। अर जो दधिकर सर्वज्ञ वीतरागका अभिषेक करै सो दधि समान उज्जवल यशकूं पायकर भवोदधिकूं तरै। अर जो घृतकर जिननाथ का अभिषेक करै सो स्वर्ग विमान में महा बलवान देव होय परंपराय अनंत वीर्य कूं धरै। अर जो ईख-रसकर जिननाथ का अभिषेक करै सो अमृत का आहारी सुरेश्वर होय नरेश्वर पद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर पद पावै। अभिषेक के प्रभावकर अनेक भव्य जीव देव अर इन्द्रनिकरि अभिषेक पद पावते भए, तिनकी कथा पुराणनि में प्रसिद्ध हैं। जो भक्ति कर जिनमंदिर विषैं मयूरपिच्छादिककर बुहारी देय सो पापरूप रजतैं रहित होय परम विभूति अर आरोग्यता पावै।

अर जो गीत नृत्य वादित्रादिकर जिनमंदिर विषैं उत्सव करै सो स्वर्ग विषैं परम उत्साहकूं पावै अर जो जिनेश्वर के चैत्यालय करावै सो ताके पुण्य की महिमा कौन कह सकै, सुर मंदिर के सुख भोग परंपराय अविनाशी धाम

पावै। अर जो जिनेंद्र की प्रतिमा विधि पूर्वक करावै सो सुर नर के सुख भोग परम पद पावै। व्रत विधान तप दान इत्यादि शुभ चेष्टनिकरि प्राणी जे पुण्य उपार्जै हैं सो समस्त कार्य जिनबिंब कराने के तुल्य नाहीं। जो जिनबिंब करावै सो परंपराय पुरुषाकार सिद्ध पद पावै। अर जो भव्य जिनमंदिर के शिखर चढ़ावै सो इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिक सुख भोग लोक के शिखर पहुँचै। अर जो जीर्ण जिनमंदिरनिकी मरम्मत करावै सो कर्मरूप अजीर्णकूं हर निर्भय निरोग पद पावै। अर जो नवीन चैत्यालय कराय जिनबिंब पधराय प्रतिष्ठा करै सो तीन लोक विषैं प्रतिष्ठा पावै। अर जो सिद्धक्षेत्रादि तीर्थनिकी यात्रा करै सो मनुष्य जन्म सफल करै। अर जो जिनप्रतिमा के दर्शन का चिंतवन करै ताहि एक उपवास का फल होय, अर दर्शनको उद्यम का अभिलाषी होय सो बेलाका फल पावै। अर जो चैत्यालय जायवे का आरंभ करै, ताहि तेला का फल होय। अर गमन किए चौला का फल होय। अर कछुएक आगे गए पंच उपवासका फल होय, आधी दूर गए पक्षोपवास का फल होय अर चैत्यालय के दर्शन तें मासोपमास का फल होय। अर भाव भक्ति कर महास्तुति किए अनंत फलकी प्राप्ति होय। जिनेंद्रकी भक्ति समान और उत्तम नाहीं। अर जो जिनसूत्र लिखवाय ताका व्याख्यान करैं करावैं, पढ़ैं पढ़ावैं, सुनैं सुनावैं, शास्त्रनिकी तथा पंडितनिकी भक्ति करैं, वे सर्वांग के पाठी होय केवल पद पावैं। जो चतुर्विध संघ की सेवा करैं सो चतुर्गति के दुःख हर पंचमगति पावै। मुनि कहै हैं—हे भरत! जिनेन्द्र की भक्ति अर कर्म क्षय होय भए अक्षयपद पावै। ये वचन मुनिके सुन राजा भरत प्रणामकर श्रावक का व्रत अंगीकार किया। भरत बहुश्रुत अतिधर्मज्ञ महाविनयवान श्रद्धावान चतुर्विध संघकूं भक्ति कर अर दुःखित जीवनिकूं दयाभाव कर दान देता भया। सम्यग्दर्शन रत्न कूं उर विषैं धारता अर महासुन्दर श्रावक के व्रत विषैं तत्पर न्यायसहित राज्य करता भया।

भरत गुणनिका समुद्र ताका प्रताप अर अनुराग समस्त पृथ्वी विषैं विस्तरता भया। ताके देवांगना समान राणी तिन विषैं असक्त न भया, जल में कमल की न्याईं अलिप्त रहा। जाके चित्त में निरंतर यह चिंता वरते कि कब यति के व्रत धरूं, निर्ग्रन्थ हुआ पृथिवीविषैं विचरूं। धन्य हैं वे धीर पुरुष जे सर्व परिग्रह का त्याग कर तप के बल कर समस्त कर्मनिक भस्मकर सारभूत जो निर्वाण का सुख सो पावैं हैं। मैं पापी संसार विषैं मग्न प्रत्यक्ष देखूं हूं जो यह समस्त संसार का चरित्र क्षणभंगुर है। जो प्रभात देखिये सो मध्याह्नविषैं नाहीं। मैं मूढ़ होय रहा हूं। जे रंक विषया-

भिलापी संसार में राचै हैं तो खोटी मृत्यु मरैं हैं, सर्प व्याध्र गज जल अग्नि शस्त्र विद्युत्पात शूलारोपण असाध्य रोग इत्यादि कुरीतितैं शरीर तजेंगे। यह प्राणी अनेक सहस्रों दुःख का भोगनहारा संसारविषैं भ्रमण करैं है। बड़ा आश्चर्य है कि यह अल्प आयु में प्रमादी होय रहा है। जैसैं कोई मदोन्मत्त क्षीरसमुद्र के तट सूता तरंगों के समूह से न डरै तैसैं मैं मोहकर उत्पन्न भव-भ्रमण से नाहीं डरूं हूँ, निर्भय होय रहा हूँ। हाय हाय! मैं हिंसा आरम्भादि अनेक जे पाप तिनकर लिप्त राज्य कर कौनसे घोर नरक में जाऊँगा? कैसा है नरक, वाण खड्ग चक्र के आकार तीक्ष्ण पत्र हैं जिनके ऐसे शाल्मलीवृक्ष जहां हैं अथवा अनेक प्रकार तिर्यञ्चगति ता विषैं जाऊँगा। देखो जिनशास्त्र सारिखा महा ज्ञानरूप शास्त्र ताहूकों पाय करि मेरा मन पापयुक्त होय रह्या है। निस्पृह होकर यति का धर्म नाहीं धारै है सो न जानिए कौन गति जाना है। ऐसी कर्मनिकी नाशनहारी जो धर्मरूप चिंता ताकूं निरंतर प्राप्त हुवा जो राजा भरत सो जैनपुराणादि ग्रन्थनिके श्रवण विषैं आसक्त है, सदैव साधुनकी कथाविषैं अनुरागी रात्रि दिन धर्म में उद्यमी होता भया।

इति श्रीरविषेणाचार्य विचरित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं दशरथ का वैराग्य, राम का विदेश गमन अर भरत का राज्य वर्णन करने वाला बत्तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३२॥

———

हरिवंश-पुराण

रचनाकाल :—संवत् १८२९ चैत्र सुदी पूर्णिमा

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

अथ ग्रन्थ की उत्पत्ति

अथानन्तर—मैं हरिवंश नाम जो पुराण महा मनोहर उसे प्रकट करता हूँ, कैसा है यह पुराण संसार विषे कल्पवृक्ष समान उत्कृष्ट है। कैसा है कल्पवृक्ष औंडी है जड़ जिसकी और कैसा है यह पुराण अति अगाध है। जड़ जिसकी महादृढ़ है। जिसकी जड़ जिनशासन है। और कल्पवृक्ष और पुराण दोनों पृथ्वी विषे प्रसिद्ध हैं और कल्पवृक्ष तो बहुशाखा कहिये अनेक शाखा उन कर शोभित है और यह पुराण बहुशाखा कहिये अनेक कथा उन कर शोभित है। और कल्पवृक्ष विस्तीर्ण फलका दाता है और यह पुराण महा-पवित्र पुण्य फल का दाता है और आप पवित्र है और कल्पवृक्ष भी पवित्र है। यह हरिवंश पुराण श्रीनेमिनाथके चरित्र कर महा निर्मल है ।।५१।। जैसे द्युमणि कहिये सूर्य उसकी ज्योति कर प्रकाशे पदार्थ तिनको दीपक तथा मणि तथा खद्योत कहिये (पटवीजना) तथा विजुली यह लघु वस्तु भी अपनी शक्ति प्रमाण यथायोग्य प्रकाश करे हैं ।।५२।। तैसे बड़े पुरुष केवली श्रुतकेवली उनकर प्रकाशित जो यह पुराण उसके प्रकाशि विषे अपनी शक्ति प्रमाण हम सारिखे अल्प बुद्धि भी प्रवर्ते हैं, जैसे सूर्य के प्रकाशे पदार्थों को कहा दीपादिक न प्रकाशें तैसे केवली श्रुतकेवलीके भाषे पुराण को कहा हम सारिखेन प्ररूपें अपनी शक्ति अनुसार निरूपण करें ।।५३।। द्रव्य प्रछन्न १ क्षेत्रप्रछन्न २ कालप्रछन्न ३ भावप्रछन्न ४। द्रव्यप्रछन्न कहिये कालाणु ।।१।। और क्षेत्र-प्रछन्न कहिये, आलोकाकाश २ और कालप्रछन्न कहिये अनागत काल ३ और भाव प्रछन्न कहिये, अर्थ पर्यायरूप षट्गुणी हानिवृद्धि ४ ऐसे जे अगम्य पदार्थ आचार्यरूप जो सूर्य उन्होंने किया है प्रकाश जिनका उनको सकुमारता कर युक्त जो यह मन सो स्थूल पदार्थों को कैसे लोक बाह्यदृष्टि करने से देखे तैसे देखे हैं। द्रव्य क्षेत्रादिक के भेदों से पांच प्रकार के भेद हैं जिसका ऐसा यह आगम पुराण पुरुषों का भाषा होने से प्रमाण है ।।५५।। इस ग्रंथ के मूल कर्ता आप श्री तीर्थंकर देव और उत्तर ग्रन्थ कर्ता गौतम नामा गणधरदेव और उत्तरोत्तर ग्रंथकर्ता अनेक आचार्य वे सब ही सर्वज्ञदेव के अनुसार कथन करण हारे हमको प्रमाण हैं ।।५७।। उन केवली और पांच चतुर्दश पूर्वके धारी श्रुत केवली और ग्यारह अङ्ग दश पूर्वके पाठी ग्यारह और एकादश अङ्ग के धारक पांच और एक आचारांगके धारक चार और यह पांच प्रकार के मुनि पञ्चम काल के आदि विषे होते भए तिनमें श्री वर्द्धमान के पीछे तीन केवली भए। इन्द्रभूत कहिये गौतम और सुधर्माचार्य और जम्बू स्वामी अंतिम केवली भए। यह तीन तो केवली भए और विष्णु १, नन्दिमित्र २,

अपराजित ३, गोवर्द्धन ४, भद्रबाहु ५, ये पांच चतुर्दश पूर्वके धारक श्रुत-केवली भए। और विशाखाचार्य १, घोष्टलक्ष २, त्रिय ३, जय ४, नाग ५, सिद्धार्थ ६, घृतिषेण ७, विजय ८, वुद्धिल ९, गंगदेव १०, धर्मसेन ११, ये ग्यारह अंग और दश पूर्वके पाठी भए ॥६३॥ और नक्षत्र १ यशःपाल २, पाण्डु ३, ध्रुवसेन ४, और कम्पाचार्य्य ५ यें पाँच मुनि ग्यारह अंग के पाठी भए ॥६४॥ और सुभद्र १, यशोभद्र २, यशोबाहु ३, लोहाचार्य ४, ये चार मुनि एक आचारांग के धारक भये ॥६५॥ ये पूर्वाचार्य और भी जो आचार्य उनकर विस्तार यह एक देश आगम उसका एक देश व्याख्यान करिये है ॥६६॥ यह हरिवंश पुराण अपूर्ण कहिये आश्चर्यकारी अर्थ थकी तो वहुत है शब्द थकी अल्प है इससे शास्त्र के विस्तार के भय कर अल्परूप सारवस्तु का संग्रह करिए है ॥६७॥ मन वचन कायकी शुद्धता को धारें जे भव्य जीव सदा जैन सूत्र का अभ्यास करें उनको वक्तापने कर और श्रोतापने कर यह पुराण का अर्थ कल्याण का कर्ता होय है। वाह्य और आभ्यन्तर के भेद कर जो तप की विधि है सो दो प्रकार की है उस विषे स्वाध्याय नामा परम तप है क्योंकि जो यह स्वाध्याय नामा तप है सो अज्ञानता को निवारे है ॥६९॥ इससे परम पुरुषार्थ का करण हारा यह पुराण का अर्थ इस देश काल के जानन हारे पण्डित उन कर व्याख्यान करणे योग्य है। और जो मत्सर भाव रहित श्रद्धावान पुरुष हैं उन कर सुनने योग्य है मत्सर कहिये द्वेपक व्याख्यान करणे योग्य जो भाव सो सत्पुरुषों को त्याज्य है ॥७०॥

आगे इस पुराण विषे आठ वड़े अधिकार हैं सो अनुक्रम से कहेंगे इन विषे प्रथम ही त्रैलोक्यका कथन ॥ १ ॥ और राजाओं के वंश की उत्पत्ति ॥ २ ॥ और हरिवंश का निरूपण ॥ ३ ॥ और वसुदेव का चरित्र ॥४॥ और नेमिनाथका चरित्र ॥ ५ ॥ और यादवों का द्वारिका विषे निवास ॥६॥ और नारायण प्रतिनारायण के युद्ध का वर्णन ॥ ७ ॥ और नेमिनाथ के निर्वाण का निरूपण ॥ ८ ॥ यह आठ महा अधिकार पूर्वाचार्यों ने सूत्रों के अनुसार प्ररूपे सो यह अवांतर अधिकारों कर शोभित है ॥७३॥ संग्रह कर विभाग कर वस्तु के विस्तार कर इस जिनशासन विषे उपदेश होय हैं इसलिये अधिकारों के विभाग कहिए हैं ॥७४॥ प्रथम ही वर्द्धमान जिनेश्वर का धर्म तीर्थ प्रवर्तन। फिर गणधरादिक गणों की संख्या। फिर राजगृह विषे आगमन। और गौतम स्वामी से राजा श्रेणिक का प्रश्न। और क्षेत्र कहिए त्रैलोक्य। और काल कहिए पट्काल तिनका निरूपण। फिर कुलकरोंकी

उत्पत्ति और ऋषभजी की उत्पत्ति और क्षत्रियादिक के वंश का वर्णन । फिर हरिवंश की उत्पत्ति । और हरिवंश विषे मुनिसुव्रतनाथ की उत्पत्ति ।।७७।। फिर दक्षप्रजापतिका चरित्र । फिर राजा वसु का वृतांत । फिर अंधकवृष्टि का दीक्षा । और समुद्रविजय का राज । और वसुदेव का सौभाग्य वर्णन और उपाय कर वसुदेव का घर से विदेश को निकसना ।।६६।। और वसुदेव के राणी सीमा और विजयसेना का लाभ फिर वनगज का वश करणा और विद्याधर की पुत्री स्यामा का संयोग ।।८०।। फिर वसुदेव को अंगारक विद्याधर का ले उड़ना और चम्पापुरी विषे डारना और गंधर्वसेना का लाभ विष्णु कुमार मुनि का चरित्र फिर चारुदत्त सेठी की कथा और उसको मुनि का दर्शन और वसुदेव के नीलयशाराणी का लाभ और सोमश्री का लाभ ।।८२।। और देवकी की उत्पत्ति का कथन, और राजा सौदास का कथन ! और वसुदेव के कपिला राजकन्या का लाभ और पद्मावती का लाभ और राणी चारुहासिनी और रत्नवती की प्राप्ति और राजा सोमदत्त की पुत्री वेगवती का संगम और मदनवेगा का लाभ वालचन्द्रका अवलोकन तथा प्रियंगुसुन्दरी का लाभ, और बंधमती का समागम, प्रभावती की प्राप्ति और रोहिणी का स्वयंवर, उसके स्वयंवर विषे संग्राम और संग्राम विषे वसुदेव की जीत, और समुद्रविजयादिक बड़े भाइयों से मिलाप ।।८६।। और वलभद्र की उत्पत्ति कंस का व्याख्यान और जरासिंधु की आज्ञा से राजा सिंहरथ का बंधन ।।८७।। और कंस को जरासिंध की पुत्री जीवंजशाका लाभ और राज्य की प्राप्ति उग्रसेन पिता का बधन फिर वसुदेव से देवकी का विवाह ।।८८।। भिर कंस का वड़ा भाई जो अतिमुक्त उसके आदेश कर कंस की आकुलता का होना जो देवकी के पुत्र कर मेरा मरण है फिर वसुदेव सो प्रार्थना करना जो देवकी की प्रसूति हमारे घर होय ।।८६।। सो वसुदेव प्रमांण करी फिर वसुदेव का अतिमुक्त मुनि से प्रश्न, और देवकी अष्ट पुत्रों के पूर्वभव का श्रवन और पाप का नाश करण हारा श्री नेमिनाथ के चरित्र का श्रवण ।।६०।। फिर श्रीकृष्ण की उत्पत्ति और गोकुल विषे वाल लीला और वलदेव के उपदेश से सभा शास्त्रों का ग्रहण ।।६१।। फिर वसुदेव के धनुष रत्न का आरोपण और यमुना द्विषे नागकुमार का जीतना फिर हाथी को जीतना और चाणूरमल्ल का निपात, और कंस का विध्वंस ।।६२।। और उग्रसेन को राज और हरि का सत्यभामासों पाणिग्रहण और तासे अधिक प्रीति ।।६३।। और जीवंजशा का जरासंघ पै जाना और विलाप करना जरासंघ का यादवों पर रोष होना और वड़ी सेना भेजना रण विषे काल यवन का पराभव अपराजित का हरि के हाथ कर रण विषें मरण । और यादवों को परम हर्ष का उप-

जना और किसी का भय नहीं ॥९५॥ फिर शिवदेवी के नेमिनाथ की उत्पत्ति जब गर्भ में आये तब षोडश स्वप्न का देखना और पति से स्वप्न का फल पूछना, पति कही तुम्हारे श्रीनेमिनाथ पुत्र होवेंगे ॥९६॥ फिर भगवान का जन्म और सुमेरु विषे जन्माभिषेक फिर बाल क्रीड़ा और जिनराज का प्रताप और जरासंध का यादवों पर आक्रमण, और यादवों का समुद्र की ओर गमन ॥९७॥ और मार्ग में देवताओं ने जो माया दिखाई उसकर जरासन्ध पीछे फिरना फिर श्री कृष्ण का समुद्र के तीर दाभ की सेज पर तिष्ठ तेला करना ॥९८॥ और इन्द्र के वचन से गौतम नामा देवकर समुद्र का सङ्कोचना और कुवेर कर के द्वारिकापुरी का क्षणमात्र में रचना फिर रुक्मणि का विवाह और सत्य भामा के देदीप्यमान भानुकुमार का जन्म और रुक्मणी के प्रद्युम्न का जन्म और पूर्बला वैरी जो धूमकेतु उस कर प्रद्युम्न का हरण ॥१००॥ विजयार्द्ध विषे प्रद्युम्न की स्थिति काल संवर विद्याधर के मंदिर में और कृष्ण और रुक्मणी को प्रद्युम्न का खेद का निवारण प्रद्युम्न को षोडश लाभ की प्राप्ति और प्रज्ञप्ती और विद्या की प्राप्ति ॥१॥ और प्रद्युम्न का काल संवर से संग्राम, और नारद के आग्रह कर माता पिता के निकट आगम और संबूकुमार की उत्पत्ति और प्रद्युम्न की बालक्रीड़ा और पिता का पिता जो वसुदेव उसने प्रद्युम्न से प्रश्न किया ॥ २ ॥ और प्रद्युम्न ने अपने परिभ्रमण का सकल व्याख्यान किया। फिर यादवों के सकल कुमारों का वर्णन, फिर यादवों की वार्ता के सुनने से जरासन्ध का कोप और यादवों के निकट दूत पठावना उसके आगमन से यादवों की सभा विषे क्षोभ और दोनों सेनाओं का निकसना। और विजयार्द्ध विषे वसुदेव का आगमन, विद्याधरों का क्षोभ, वसुदेव का पराक्रम ॥४॥ और अक्षोहिणी का प्रमाण और रथी अतिरथी अर्द्ध रथी जे राजा महासर्थ तिनका कथन ।५। और जरासंध ने चक्रव्यूह रची, उसके भेदिवे अर्थ कृष्ण के कटक विषे गरुड़ व्यूह की रचना और कृष्ण के गरुडवाहिनी विद्या की प्राप्ति और बलिदेव को सिंहवाहनी विद्या की प्राप्ति और नेमिनाथ के द्विमात भाई रथनेमि और कृष्ण के भाई अनावृष्टि और अर्जुन इन चक्रव्यूह भेद्या, और कृष्ण की सेना विषे मुख्य पांडव। और जरासन्ध की सेना विषे मुख्य धृतराष्ट्र के पुत्र जो कौरव उनमें परस्पर महायुद्ध फिर कृष्ण जरासन्ध का महायुद्ध ॥८॥ उस समय कृष्ण के हाथों में चक्र का आवना और जरासन्ध का वध, वसुदेव की विजय सो वसुदेव को विजयार्द्ध विषे विद्याधारी प्रगट भई और कृष्ण का कोटि शिला का उठावना और वसुदेव का विजयार्द्ध से आगमन और बलदेव वसुदेव की दिग्विजय और देवों पुनीत रत्न की प्राप्ति ॥१०॥ और दोनों

भाईयों को राज्याभिषेक और द्रोपदी का हरण फिर घातकी खंड में कृष्ण सहित पांडव जाय द्रौपदी ल्याये ॥११॥ फिर नेमिनाथ के शरीर के बल का वर्णन व नेमिनाथ के विवाह का हर्ष ॥१२॥ फिर जीवों को वन्ध से छुडा-वना और नेमिनाथ की दीक्षा, और केवलज्ञानका उपजना, देवों का आगमन समवसरण की विभूति का वर्णन, राजमती को प्राप्ति तप की। और यति श्रावक के धर्म का उपदेश और भगवान का तीर्थ विहार और देवकी के षट् पुत्रों का संयम ॥१४॥ फिर भगवान् का गिरनार गिरि विषे आगमन और देवकी के प्रश्न का उत्तर और रुक्मणी सत्यभामा आदि आठों पटराणियों के भवांतर का कथन ॥१५॥ फिर राजकुमार का जन्म और उसकर दीक्षा ग्रहण और वसुदेव टार नव भाइयों का वैराग्य और त्रिषष्ठि शलाका के पुरुषों की उत्पत्ति का वर्णन और जिनराजा के अन्तराल का कथन और वलभद्र का प्रश्न। प्रद्युम्न की दीक्षा और रुक्मणी आदि कृष्ण की स्त्रियों का और पुत्रों का संगम और द्वीपायन मुनि के क्रोध से द्वारावती का नाश ॥१८॥ और वलभद्र नारायण का द्वारका से निकसना और कुटम्ब का भस्म होना और दोनों भाइयों का शोक सहित कौशांवी नगरी के वन विषे प्रवेश ॥१६॥ और वलभद्र का जल के अर्थ जाना और कृष्ण का अकेला रहना और बिना जाने जरद कुमार के हाथ से छूटा जो वाण उसकर दैवयोग से हरि का पर-भव गमन करना ॥२०॥ उसकर जरदकुमार को शोक उपजना और वलभद्र के अति दुस्तर दुःख का उपजना फिर सिद्धार्थ देव के उपदेश से वलभद्र को वैराग्य उपजना तप धरना। और पांचवें स्वर्ग में जाना और पांडवों को वैराग्य होना और गिरनार विषे नेमिनाथ का मुक्ति होना ॥२२॥ और पांचों पांडव महापुरुषों को उपसर्ग का जीतना, और जरदकुमार को दीक्षा लेना। और जरदकुमार की सन्तान से हरिवंश का रहना और उनके वंश के दीपक जे राजा जितशत्रु उनको केवल ज्ञान की प्राप्ति और जो राजा श्रेणिक हरिवंश शिरोमणि उनका राजगृह विषे राज ॥२४॥ और वर्द्धमान भगवान का दीपमालिका के दिन निर्वाण गमन उससे देवों का वह दिन उत्सव रूप मानना। तव दीप्यमान दीपमालिका प्रसिद्ध भई और गणधरों का निर्वाण गमन यह हरिवंश पुराण का विभाग संक्षेप कर कहा है।

अथानन्तर–भव्य जीव प्रसिद्धि के अर्थ विस्तार सहित व्याख्यान सुनें।२६। एक ही पुरुष का चरित्र सुना हुआ पाप का नाश करे और जो सर्व तीर्थेश्वर चक्रेश्वर हलधर उनका चरित्र भव्य जीव जे सुने उनका क्या पूछना, वह तो जन्म जन्म के पाप निवारे हैं जैसे महामेघ की बूंद ही महा ताप का विच्छेद

करे तो समस्त लोक विषे व्याप रहे जे मेघ उनकी जो माला के समूह उनकी जो सहस्रधारा झरे उनकर आताप क्यों न दूर होय सर्वथा दूर होय ।।२७।। जो विवेकी जन हैं सो जिनमें वक्रमार्ग ऐसे लौकिक पुराण भ्रांतिरूप उनको तज कर जैन पुराण की पदवी महासरल कल्याण की करणहारी हितकारी उसे गहो, मोह ही है बाहुल्यता जिसमें ऐसी दिग्मूढ़ता कहिये दिशा भूलपना उसे तजकर भव्य जीव शुद्ध मार्ग लेवो । जिन कहिये भगवान् वेई भये भास्कर कहिये सूर्य तिन कर प्रगट किया जो शुद्ध मार्ग महा विस्तीर्ण उसके होते सन्ते शुद्ध है दृष्टि जिसकी ऐसा सम्यक् दृष्टि सो खाडे विषे काहेको परै ।

भावार्थ——सूर्य के प्रकाश विना अन्ध पुरुष संकीर्ण मार्ग विषे खाडे में पड़े और सूर्य के उदय कर प्रगट भया मार्ग विस्तार्ण उस विषे दिव्य नेत्रों का धारक काहेको खाडे में पड़े ।।२८।।

इति श्री अरिष्टनेमिपुराण संग्रहे हरिवंश जिनसेना चार्यस्य कृतौ संग्रहविभागवर्णनं नाम प्रथम : सर्ग ।।१।।

× × × × × ×

आठवां अधिकार ।

श्री नेमिनाथ का निर्वाण गमन

अथानन्तर—सर्व देवन के देव तीर्थ के कर्त्ता धर्मोपदेश कर भव्यन को कृतार्थ कर उत्तर दिशातै सोरठ की ओर गमन किया ।। १ ।। जब जिन रवि उत्तरायणते दक्षिणायन आये तब या तरफ पूर्वते उद्योत भयो ।। २ ।। अरहत पद की विभूति कर मंडित महेश्वर जब दक्षिण को विहार किया तब वे दक्षिण के सर्व देश स्वर्ग की शोभा को धारते भये ।। ३ ।। भगवान भूतेश्वर निर्वाण कल्याणक आया है निकट जिनके सुर असुर नरक कर अर्चित गिरनार आय विराजे ।। ४ ।। पूर्ववत् समवसरणकी रचना तहां भई देव दानव मानव तथा तिरयंच सब ही प्रभु की दिव्य ध्वनि सुनते भये ।। ५ ।। श्री भगवान सम्यग्दर्शन चारित्र रूप जो महा पवित्र जिनेश्वर धर्म ताका व्याख्यान करते भये सो धर्म स्वर्ग मोक्ष के सुख का साधन है अर साधुन को प्रिय है ।। ६ ।। जैसा केवल ज्ञान के उदय विषें पहले धर्म का उपदेस दिया हुता तैसा ही विस्तार सहित निर्वाण कल्याणक का एक मास

रहा तब लग दिया ॥ ७ ॥ जैसे अग्नि का गुण उष्ण अर ऊर्ध्व गमन अर जल का गुण शीत अर पवन का गुण शीघ्र गमन और तिरछा गमन अर सूर्य का गुण प्रकाशपना अर आकाश का गुण अमूर्तत्व अर पृथ्वी का गुण अनेक वस्तु का धारण अर सहनशीलपना तैसे कृतार्थ जे जिनेन्द्र तिनका गुण धर्मोपदेश है ॥ ६ ॥ जैसे ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय यह चार घातिया कर्म क्षय किये हुते तैसे योग का निरोध कर नाम गोत्र आयु अर वेदनीय इन चार अघातियानकाहू अन्त कर अनेक मुनिवरों सहित जिनवर सिद्ध लोक को सिधारे ॥ १० ॥ तब इन्द्र को आदि देय चतुर्निकायनके देव निर्वाण कल्याणक की पूजा करते भये ॥ ११ ॥ जब भगवान मुक्त होय तब देहबंध रूप स्कंध परमाणु होय जाय अनादि कालकी यह रीति है जैसे बिजुरी विलाय तैसे जिनेश्वर का देह विलाय गया अर मायामयी शरीर रच कर इन्द्रादिक दाह क्रिया करते भये ॥ १२ ॥ अग्निकुमार भवनवासी देव तिनके इन्द्र के मुकुट ते प्रगट भई अग्नि ताकर जिनेन्द्र की देह का दाह भया ॥ १३ ॥ गंध पुष्पादि मनोहर द्रव्यन कर प्रभू की पूजा कर देव अपने अपने स्थान गये। इन्द्र वज्रकर गिरनार गिर विषें सिद्ध सिला उकीर गया। वरदत्तादि मुनि को वंदना कर इन्द्रादिक अर नरेंद्रादिक अपने अपने स्थान गये ॥ १५ ॥ अर समुद्रविजयादि नव भाई अर देवकी के छै पुत्र अर प्रद्युम्न शंबु श्रीकृष्ण के पुत्र अर अनिरुद्ध प्रद्युम्न का पुत्र यह गिरनार गिरते जगत के शिखर गये सो भव्य जीवन कर वंदनीक है गिरनार बड़ा तीर्थ है जहां अनेक भव्य जीव यात्रा को आवे हैं ॥ १७ ॥

अथानन्तर—पांडव महाधीर प्रभु का सिद्ध लोक गमन सुन कर शत्रुञ्जय गिर विषें कायोत्सर्ग धर तिष्ठे ॥ १८ ॥ तहां दुर्योधन के वंश का यवरोधन पापी आय कर वैर के जोग ते महा दुस्सह उपसर्ग करता भया ॥ १६ ॥ लोहे के मुकुट अति प्रज्वलित इनके सिर पर धरे अर लोहे के कड़े अर कटि सूत्रादि लोहे के आभरण अग्नि मई इनको पहराये ॥ २० ॥ तिन कर दाहका उपसर्ग अति रौद्र होता भया परन्तु वे महावीर मुनि वीर कर्मके विपाक के जानन हारे कर्म के क्षय करने को समर्थ दाह का उपसर्ग हिम हिम समान शीतल मानते भये ॥ २१ ॥ तिनमें युधिष्ठर भीम अर्जुन यह तीनों साधु क्षपक श्रेणी विषें आरूढ़ होय शुक्ल ध्यान कर अष्टम भूमि जो निर्वाण ताकों पधारे अन्त कृत केवली अविनाशी भये ॥ २२ ॥ अर नकुल सहदेव ने उपशम श्रेणी मांडी हुती सो ग्यारहवां गुणठाण से फिर गिर चौथे गुणठाणे आय देह तज सर्वार्थसिद्धि पधारे। तहांते चय मनुष्य होय जगत् के

मुकुट मणि होंहिगे ।। २३ ।। बड़े भाइनके आताप देख इनका चित्त कुछ यक अथिर भया अर अन्य हू भव्य जीव कैइक तद्भव मोक्षगामी शुद्ध रत्नत्रय के धारक मोक्ष प्राप्त भये अर कईयक स्वर्गवासी देव भये सो भवधर अभय पद पावेंगे ।। २४ ।। अर नारद भी आयु पूर्ण कर परभव पधारे । भवान्तर में भवरहित होंहिगे ।। २५ ।।

अथानन्तर—वलदेव स्वामी तुंगीगिर शिखर पर नाना प्रकार के दुर्द्धर तप किये एक उपवास दोय उपवास तीन उपवास, पक्ष उपवास छः मासोपवास कर शरीर बहुत सोख्या अर कपाय सोखे अर धैर्य पोख्या ।। २७ ।। नगर ग्रामादि विषें तो गमन निवारा ही हुता आहार के अर्थ कांतार चर्या धारी हुती सो वन विषें विहार करते लोकोंने देखे, मानों साक्षात् चंद्रमा ही है ।। २८ ।। उनकी वार्ता पुर ग्रामादि विषें प्रसिद्ध भई सो दुर्जन भूपति वलदेव के समाचार सुन कर शंका मान नाना प्रकार के आयुध धर उपसर्ग करने को आये तव सिद्धार्थ देव उनको ऐसी माया दिखाई वे जहां देखें तहां दीखें ।। ३० ।। मुनि के चरणनके समीप सिंहनको देख दुष्ट राजा मुनिकी सामर्थ्य जान प्रणाम कर शाँत रूप होय गये ।। ३१ ।। तबसे वलदेव को लोग नरसिंह मानते भये दुष्टन को नरसिंह रूप भासे वे महा मुनि सौ वर्ष तप कर चार प्रकार आराधना आराध पांचमां ब्रह्म नामा स्वर्ग तहां पदमोत्तर विमान विषे ब्रह्मेंद्र भये ।। ३३ ।। वह विमान रतनमयी दैदीप्यमान महा-मनोहर देव देवियों के समूह कर मंडित सुन्दर हैं मन्दिर अर उपवन जा विषें ।। ३४ ।। ऐसे रमणीक विमान विषें महा कोमल उत्पादक सज्या ता विषे हलधर मुनिवर का जीव ब्रह्मेंद्र भया । जैसे समुद्र विषे महा मणि उपजे तैसे स्वामी स्वर्ग विषे उपजे ।। ३५ ।। आहार कहिये कर्म वर्गणाका आकर्षण अर वैक्रियक शरीर अर पांच इन्द्री अर श्वासोश्वास अर भाषा अर मन इन पट पर्याप्ति तत्काल पूरे कर वस्त्राभरण मंडित सेज पर विराजे नव यौवन महा सुन्दर देवन के राजा वह स्वर्ग संपदा देख अर देवांगनान के गीत सुन अर सव देवन को नम्रीभूत देख मनमें विचारी यह सव लोग मेरा मुख विलोके हैं मो विषे अनुरागी हैं अर या लोक के सकलही चन्द्र सूर्य हूतैं अधिक ज्योतिवन्त हैं ।। ३८ ।। यह कौन मनोहर देश है यहां के सव लोक हर्षित हैं अर मैं कौन हूं जो यहां का अधिपति भया हूँ अर मैं कौन धर्म उपार्ज्या जो ऐसा उत्तम भव पाया है ।। ३९ ।। तव वहां के जो मुख्य देव हैं तिन विनती करी जो यह पाँचवां ब्रह्म नामा स्वर्ग है । अर आप ब्रह्मेंद्र होय यहां सवनके स्वामी भये हो महा तप कर यहां आय उपजे हो तव आप अवधि

कर सब वृत्तान्त जाना ॥४१॥ पूर्व भवका सब चरित्र प्रत्यक्ष जाना अर देव इनका अभिषेक करावते भये अर इन्द्रपदकी विभूति दृष्टिगोचर करी ॥४२॥ अर वासुदेवसे अधिक है प्रेम जिनका सो जाय कर भाईसे मिले परस्पर अवलोकन कर दोऊके हर्ष उपज्या वासुदेव कही आगां दोऊ मनुष्य भव पाय वीतराग का धर्म आराध केवल प्रगट कर मोक्ष पावेंगे। अर द्वारिकाके दाह कर अर यदुवंशके क्षय कर लोकापवाद भया सो तुम ऐसा करहु जो भरतक्षेत्र विषें मेरी मूर्त्ति शंख चक्र गदा पद्मादि कर शोभित लोग पूजें यह वचन वासुदेवके उरमें धार बलदेव याही भांति करते भये देवनका किया कहा न होय ॥४६॥ ठौर ठौर पुर ग्रामादि विषें वासुदेवके मन्दिर कराय तिनकी सेवाकी विधि बताय बलदेव स्वर्ग विषें जाय जिनेश्वरकी सेवा करते भये ॥४७॥ अनेक देव अर देवी तिन कर मंडित स्वर्गके अधिपति सुख भोगते भये। यह कथा गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कही फिर कहे हैं—हे श्रेणिक! यह स्नेही जगतके जीवनको जगत विषै भ्रमण करावे है स्नेहके योग कर जहां मित्र होय तहां जाय कर स्नेहकी अधिकतासे आपको सुख प्राप्त भये हैं ते न भोगवे अर दुखका उद्यमी होय तातें यह संसारका स्नेह ही मोक्षके सुखका विघ्न करनहारा है ॥४९॥ श्री नेमिनाथ जिनेंद्रका तीर्थ महा मोहका विच्छेद करन हारा ता विषें वरदत्त नामा मुनि केवली भये हरिवंश विषें जरत्कुमार राजा राजकी धुराके धोरी भये ॥५०॥

इति श्री अरिष्टनेमि पुराण संग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगवन्निर्वाणवर्णनो नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥६५॥

अथानन्तर—राजा जरत्कुमार राज्य करे ताके राज्यमें प्रजा आनन्दको प्राप्त होती भई राजा महा प्रतापी जिनधर्मी ताके राजको लोग अति चाहें ॥१॥ सो जरत्कुमारने राजा कलिंगकी पुत्री परनीताके राजवंशकी ध्वजा समान वसुध्वज नामा पुत्र भया ॥२॥ ताहि राजका भार सौंप जरत्कुमार मुनि भये सत पुरुषनके कुलकी यही रीति है पुत्र को राज देय आप चारित्र धारे ॥३॥ फिर वसुध्वजके सुवसु नामा पुत्र भया सो चन्द्रमा समान प्रजाको प्रिय राजा वसु सारिखा प्रतापी होता भया ॥४॥ अर वसुके भीम वर्मा भया कलिंग देशका पालक अर ताके वंशमें अनेक राजा भये ॥५॥ फिर ताही वंशमें हरिवंशका आभूषण राजा कपिष्ट भया अर ताके अजातशत्रु भया ताके शत्रुकेन भया। अर ताके जितार नामा पुत्र भया ॥६॥ ताके जितशत्रु भया सो हे श्रेणिक! ताहि तू कहा न जाने है जो राजा सिद्धार्थ महावीर स्वामीके पिताकी छोटी वहन परना महा प्रतापवान शत्रु मंडलका जीतन हारा जगत

विषें प्रसिद्ध भया। श्री भगवान महावीरका फूफा सो प्रभुका जन्म भया तब कुण्डलपुर आया। सो राजा सिद्धार्थने बहुत सन्मान किया ॥८॥ राजा जितशत्रु महा जिनधर्मी इन्द्र समान पराक्रमी ताके यशोदा नाम रानी ताके अशोकवती नामा पुत्री सो यश अर दया कर महा पवित्रताका अनेक राजकन्या सहित श्रीमहावीर से विवाह मंगल वांछता भया यह हर्ष देखने के मनोरथ रूप विषें आरूढ था सो भगवान वीतराग कहा विवाह करें जे स्वात्मानुभूति रूप सिद्धिके करन हारे तिनके स्त्रीका कहा प्रयोजन? जब तीर्थेश्वर तप कल्याणकको प्राप्त भये तब वे राजकन्या आर्यका होय गई अर भगवान स्वयंभू जब केवल कल्याणक विषें जगतके तारबे अर्थ विहार किया तब राजा जितशत्रु राज तज मुनि राज भया महातप विषे प्रवर्ता ॥१०॥ सो तपके प्रभावकर जितशत्रुके केवल ज्ञान प्रगट भया मनुष्य भवका यही फल है जो केवल पाय मुक्ति जाय ॥११॥ हे श्रेणिक यह कथा हरिवंशकी कथा तोहि संक्षेपसे कही यह कथा लोक विषे प्रसिद्ध है अर चोबीस तीर्थेश्वर अर बारह चक्रेश्वर अर नव बलदेव नव वासुदेव नव प्रति वासुदेव यह त्रिषष्टि शलाकाके महा पुरुष तिनका चारित्र तोहि कहा सो यह पुराण पद्धति तोहि कल्याणके अर्थ होहु ॥१३॥ यह परमेश्वरी कथा गौतम स्वामीके मुख अनेक राजाओं सहित राजा श्रेणिक सुनकर नगरमें गया बारंबार नमस्कार करता भक्ति रूप है बुद्धि जाकी सो चित्त विषे धर्महीको धारता भया। अर चतुर्निकायके देव अर विद्याधर प्रभुको प्रणाम कर अपने २ स्थानक गये धर्मकथाके अनुरागी धर्महीको सार जानते भये ॥१४॥ निर्वाणकी है इच्छा जिनके अर जितशत्रु केवली जगत पूज्य आर्य क्षेत्र विषे विहार कर अघातिया कर्म हू क्षपाय अक्षय धामको प्राप्त भये अनंत सुखका है अभाव जहां जाके अर्थ यती यतन करे हैं सो पद पाया ॥१५॥ अर वीरजिनेन्द्र हूं भव्य जीवनके समूहको संबोध कर पावापुरीके मनोहर नामा उद्यानते कार्तिक वदी अमावस प्रभात समय स्वाति नक्षत्र विषे योगनका निरोध कर अघातिया कर्म हूं खपाये जैसे घातिया कर्मनका घात किया था तैसे अघातियान हु का घात कर बन्ध तैं रहित जो अपवर्ग स्थानक सिद्धक्षेत्र तहां सिधारे निरन्तर है अनन्त सुखका संबंध जहां ॥१७॥ वे जिनेश्वर शंकर सुगत सदा शिव परम विष्णु शुद्ध बुद्ध महेश्वर पंच कल्याणकके नायक चतुर्निकायके देवन के देव निर्वाण प्राप्त भये तब इन्द्रादिक देवोंने निर्वाण कल्याणक किया प्रभुके माया मई शरीर की पूजा कर दाह क्रिया करी ॥ १८ ॥ प्रभु परम धाम पधारे ता दिन चतुर्थ काल के वर्ष तीन और मास साढा आठ बाकी हुते। दीपोत्सव के दिन जिनवर जगत के शिखर पधारे तिस दिन देवन दीपन के समूह कर वह पुरी प्रकाश रूप करी आकाश और धरती विषे

दीपन की माला प्रज्वलित भई ।। १६ ।। इंद्रादिक सब देव और श्रेणिकादि सकल भूप श्री महावीर स्वामी का निर्वाण कल्याणक देख प्रभु से ज्ञान की प्राप्ति की प्रार्थना कर अपने २ स्थान गये ।। २० ।। उस दिन से इस भरत-क्षेत्र विषै दीप मालिका प्रसिद्ध भई प्रति वर्ष भव्य जीव निर्वाण की पूजा करें अर लोक दीपोत्सव करें ।। २१ ।। अर भगवान को मुक्ति गये पीछे वासठ वर्ष में केवली भये गौतम सुधर्म और जंबू स्वामी सो यह तीनों चतुर्थ कालके उपजे पंचम काल में पंचम गति जो निर्वाण तहां पधारे और इन पीछे सौ वर्ष में पांच श्रुत केवली भये ।। २२ ।। और उन पीछे वर्ष एकसौ तीरासी में ग्यारह अंग अर दस पूर्व के पाठी मुनि दस भये और तिन पीछे वरस दो सौ वीस में पांच मुनि ग्यारह अग के पाठीं भये और तिन पीछे वर्ष एकसौ अठारह में चार मुनि एक आचारांग के पाठी भये तिनके नाम सुभद्र जयभद्र यशोवाहु लोहाचार्य यहां तक अंग रहे ।। २३ ।। फिर इन पीछे अंगन के पाठी तो न भये परन्तु महा विद्यावान व्रतनके धारक भये तिनमें कई एकनके नाम कहे हैं—महा तपकी है वृद्धि जिनके ऐसे नयंधर ऋषि, श्रुति, ऋषि, गुप्ति, शिवगुप्त, अर्हद्वलि, मंदराचार्य, मित्रवीर, वलमित्र, सिंहवल, वीरवित ।। २५ ।। पद्मसेन, गुणपद्म, गुणागुणी, जितदण्ड, नन्दीषेण, दीपसेन, तप ही है धन जिनके ऐसे श्री धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, सुनन्दिसेन, सूरसेन, अभयसेन ।। २७ ।। सुसिवसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शांतिसेन, समस्त सिद्धान्त के वेत्ता षट भाषानमें गुणवान षटखड के अखंड नाथ ही हैं जिनके शब्द अर्थ अगोचर नाही ।। २८ ।। फिर जयसेन नामा सद्‌गुरु होते भये कर्म प्रकृति नामा श्रुति ताके पारगामी इन्द्रीन के जेता प्रसिद्ध वैयाकरणी महा पण्डित प्रभाववान समस्त शास्त्र समुद्र के परगामी ।। २९ ।। तिनके शिष्य अमित तेज नामा सद्‌गुरु पवित्र पुन्नाटगण के अग्रणी जिन शासन की है वात्सल्यता जिनके महा तपस्वी सौ वर्ष ऊपर है अवस्था जिनकी शास्त्रदान के वड़े दाता पण्डितों में मुख्य जिनके गुण पृथिवी में प्रसिद्ध तिनका वडा भाई, धर्म का सहोदर महा शांत संपूर्ण बुद्धि धर्ममूर्ति जिनकी तपोमई कीर्ति जगत में विस्तार रही ऐसे कीर्तिसेन तिनका मुख्य शिष्य श्रीनेमिनाथ का परम भक्त जिनसेन ताने अपनी शक्ति के अनुसार अल्प बुद्धि से प्राचीनग्रन्थ के अनुक्रम हरिवंश की पद्धति कही सो यामें प्रमाद के दोष से शब्द में तथा अर्थमें कहीं भूल होय तो पुराण के पाठी पण्डित सुधार लीजो एक केवली भगवान ही कथन में न चूकें और समस्त चूकें ताकां अचरज नाहीं। कहां यह प्रशंसा योग्य हरिवंश पुराण रूप पर्वत और कहां मेरी अल्प से अल्प वुद्धि की शक्ति ।। ३४ ।। जो काहू ठौर आखडे तो कहा अचरज है। या पुराण विषै

जिनेन्द्र के वंश के स्तवन कर पुण्य की उत्पत्ति है यही वांछा कर मैंने वर्णन किया और काव्य बन्ध से प्रबन्ध कर कीर्ति की कामना राख कथन न किया ।। ३५ ।। काव्य रचना के गर्व कर तथा अन्य पण्डितों से ईर्षा कर मैंने यह आरम्भ न किया । केवल जिनराज की भक्ति ही कर यह कथन किया । चौबीस तीर्थंकर और द्वादश चक्रवर और नव हलधर नवहरि और नव प्रतिहरि इनका वर्णन किया और अन्य अनेक राजान के चरित्र कहे । भूमिगोचरी और विद्याधर सबनके वंश का वर्णन या विषैं है ।। ३७ ।। जो धर्म अर्थ काम मोक्ष के साधन हारे पुरुषार्थ के धारक धीर पुरुष कीर्ति के पुंज तिनकी स्तुति कर मैं पुण्य उपार्ज्या गुण संचय किया ताका यही फल हूजियो जो या मनुष्य लोक के भव्य जीव जिन शासन विषे श्रद्धा करें अर अशुभ कर्म को हरें ।। ३८ ।। यह नेमि जिनेश्वर का चरित्र सकल जीवादि पदार्थ का प्रकाशक है यामें षट द्रव्य सप्त तत्त्व नव पदार्थ पंचास्तिकाय की प्ररूपणा है ।। ३९ ।। जो महा पण्डित हैं सो याकी सभाविषैं व्याख्यान अपने अर पराये हितार्थ करियो अर सभा विषें आवें जे भव्य जीव ते कानरूप हस्तांजली कर हरिवंश कथा रूप अमृतका पान करियो जिनेन्द्र नाम ग्रहणकर नव ग्रहकी पीडा दूर होय है । यह समस्त पुराण आद्योपान्त वांचे अथवा सुने तो पापका नाश होय इसलिये एकाग्र चित्त कर पण्डित जन याका व्याख्यान अपने अर पराये कृतार्थ के अर्थ करहु व्याख्यान निज परका तारक है ।। ४२ ।। यह पुराण मंगल के अर्थियों को महा मंगल का कारण है अर जो धन के अर्थी हैं तिनकों धनकी प्राप्ति का कारण है । अर निमित्त ज्ञानियों को निमित्त ज्ञान का कारण है अर महा उपसर्ग विषें शरण है शन्तिका कर्त्ता है अर जैन का वडा शकुन शास्त्र है शुभ सूचक है ज्ञानार्थीन को ज्ञान, ध्यानार्थीन को ध्यान, योगार्थीन को योग, भोगार्थियों को भोग, राज्यार्थीन को राज्य, पुत्रार्थीन को पुत्र, विजयार्थीन को विजय सर्व वस्तु का यह दाता सर्वज्ञ वीतराग का पुराण है । जो चौबीसों तीर्थेश्वर का महा भक्त चौबीसों शासन देवता चक्रेश्वरी पद्मावती अम्बिका ज्वालामालिनी आदि सम्यग्दृष्टिनी सो सब इस पुराण के आश्रित हैं कैसे हैं यह शासन देवता सदा जिनधर्म अर जिनधर्मीन के समीप ही हैं ।। ४४ ।। अर गिरनार गिरि विषें श्रीनेमिनाथ का मन्दिर ताकी उपासक सिंहवाहनी चक्र की धरनहारी जाके आगे क्षुद्र देवता न टिकें ऐसी अम्बिका कल्याण के अर्थ जिन शासन की सेवक है तहां परचक्र का विघ्न कैसे होय ।। ४५ ।। नवग्रह अर असुर नाग भूत पिशाच राक्षस यह लोगों को हित की प्रवृत्ति विषें विघ्न करे हैं । तातें बुध जन जिन शासन के देवतान के जे गुण तिन कर क्षुद्र देवन को शान्त करे हैं ।। ४६ ।। जे भक्ति कर यह

हरिवंश पुराण पढैं तिनके बिना खेद मनवाञ्छित काम की सिद्धि होय अर धर्म अर्थ मोक्ष की प्राप्ति होय ।।४७।। तातें जे निष्कपट आर्य पुरुष हैं ते पूजा सहित या पुराण को पृथिवी विषे विस्तारहु । कहा कर यांकूं विस्तारहु मात्सर्य कहिये पराई उच्चता का न सहना ऐसा अदेखसका भाव ताहि धैर्य के बल कर प्रवलता रूप जो बुद्धि ताके प्रभाव से निवार कर अर जेते मायाचार के आचरण हैं तिन सबन को तज कर याका रहस्य विचारहु ।।४८।। अथवा भव्य जीवन से यह प्रार्थना है कौन अर्थ, वे स्वतः स्वभाव ही याहि पढेंगे वांचेंगे विस्तारेंगे, जैंसे पर्वत मेहकी धारा को सिर पर धारे अर पृथिवी विषे विस्तारे ।।४९।। यह श्रेष्ठ पुराण प्राचीन पुराण के गम्भीर शब्द तेई भये जल तिन कर पूर्ण सो मुनि मण्डली रूप नदी दोय नयन रूप ढायेन की धरन हारी तिन कर पूर्ण चारों दिश समुद्रान्त विस्तरेगा ।।५०।। वे जिनेश्वर देव तत्त्व के द्रष्टा देवन के समूह पर सेवने योग्य जयवन्त होहु प्रजा को अति शांति के देनहारे शान्त है मार्ग जिनका अर निर्मल हैं निद्रारहित केवल नेत्र जिनके ।।५१।। अर जिनधर्म की परम्पराय जयवन्त होहु जो अनादि काल से काहू कर जीति न जाय । अर प्रजा विषें कुशल होहु । कबहु दुर्भिक्ष मति होहु मरी मति होहू पापी मति होहु पापी राजा मति होहु । अर सुख के अर्थ प्रति वर्ष भली वर्षा होहु अर अति वृष्टि अनावृष्टि मति होहु पृथिवी अन्न जल तृण कर सदा शोभित रहो । प्राणीनको काहू प्रकार की पीडा मति होहु ।।५२।। विक्रमादित्य को सात सौ पांच वर्ष व्यतीत भये तब यह ग्रन्थ भया । ता समय उत्तर दिशा का राजा इन्द्रायुध कृष्णराजका पुत्र था । अर दक्षिण दिशा का राजा श्रीवल्लभ हुता अर पूर्व दिशा का राजा अवन्ति हुता अर पश्चिम का राजा वत्सराज हुता । यह चारों दिशा के चारों राजा महा सूरवीर जीत के स्वरूप पृथिवी मण्डल के रक्षक हुते ।।५३।। कल्याण कर बडी है विस्तीर्ण लक्ष्मी जहां ऐसा श्री वर्धमानपुर तहां श्रीपार्श्वनाथ के चैत्यालय विषें राजा रत्न के राज विषे यह ग्रन्थ आरम्भ अर पूर्ण भया फिर शान्तिनाथ के मन्दिर विषे ग्रन्थ समाप्त किया पूजा भई अति उच्छव भया । जीती है अर संघ की शोभा जाने ऐसा श्रेष्ठ पुन्नाट नामा संघ ताकी परिपाटी विषे उत्पन्न भये श्रीजिनसेन नामा आचार्य तिन सम्यक्ज्ञान के लाभ के अर्थ रचा यह हरिवंशचरित्र लक्ष्मी का पर्वत सो या पृथिवी विषें बहुत काल अति निश्चल तिष्ठो सब दिशि विषे सब जीवन का हरा है शोक जाने ।।५४।।

इति श्रीअरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य गुरु पर्व कमल वर्णनो नाम षट्षष्टितमः सर्ग ।।६६।।

परमात्म प्रकाश भाषा टीका

॥ ॐ नमः: सिद्धेभ्यः ॥

अथ "परमात्मा प्रकास" ग्रंथ "श्री योगिन्द्राचार्य" कृत, ता परि संस्कृत टीका 'श्री ब्रह्मदेव' कृत ताकी भाषा वचनिका रूप लिखिए है।

दोहा

चिदानंद चिद्रूप जो, जिन परमातम देव।
सिद्ध रूप सुचि सुद्ध जो, नमो ताहि करि सेव ॥१॥
परमातम निज वस्तु जो, गुण अनंत मय सुद्ध।
ताहि प्रकासन कै निमित्त, वंदू देव प्रवुद्ध ॥ २ ॥

श्लोक— चिदानंदैकरूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥१॥

अर्थः—

श्री जिनेश्वर देव शुद्ध परमात्मा ज्ञान आनन्द रूप चिदानंद चिद्रूप तिनिक ताइ मेरा सदाकाल नमस्कार होहू। कैसे अर्थि नमस्कार होहू। परमात्मा का स्वरूप ताके प्रकासवे अर्थि। कैसे हवे भगवान सुद्ध परमात्मा स्वरूप के प्रकासक है। निज अर पर सवके स्वरूप कूं प्रकासक है। वहुरि कैसे हैं सिद्धात्मने कहीये कृत कृत्य है, आत्मा जिनका। नमस्कार योग्य परमात्मा ही है। तातैं परमात्मा कूं नमस्कार करि परमातम प्रकास नामा ग्रंथ का व्याख्यान करू हूं ॥१॥

श्री योगिंद्र देवकृत परमातम प्रकास नाम दोहक छंद ग्रंथ ता वीयैं प्रक्षेपक हीये उक्तं च तिनि विना व्याख्यान के अर्थि अधिकारनिको परि-पाटी कहीये है। प्रथमही पंच परमेष्टी के नमस्कार की मुख्यता करिजे है ॥ २ ॥

जे जाया ज्माणगिए—इत्यादि सात दोहा जानने। वहूरि विज्ञापना की मुख्यता करि भावैं पणावि वि इत्यदि दोहातीन ॥३॥

वहूरि वहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा इनिके भेद करि तीन प्रकार आतमा के कथन की मुख्यता करि पुण पुण पण विवि इत्यादि दोहा पांच ॥ ५ ॥

अथानंतर मुक्ति कूं प्राप्त भये जे प्रगट स्वरूप परमातमा ताके कथन की मुख्यता करि तिहू इण वंदिउ इत्यादि दोहा दस ॥१०॥

अथानंतर देह विषै तिष्टता सक्तिरूप परमातमा ताके कथन की मुख्यता करि जेहउ निम्मल इत्यादि चोवीस दोहा ॥२४॥

जिनि में पांच उक्तं च है ॥५॥

अथानंतर जीव का निज देह प्रमाण कथन ता विषै स्व मत परमत के विचार की मुख्यता करि भणंति जिउ सत्व गउ इत्यादि दोहा छह ॥६॥

बहूरि द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप ताके कथन की मुख्यता करि आप जणिय उ इत्यादि दोहा तीन ॥३॥

वहूरि कर्म विचार की मुख्यता करि जीवह कम्म अणार जीय इत्यादि दोहा आठ ॥८॥

वहूरि सामान्य भेद भावना ताके कथन की मुख्यता करि अप्पा-अप्पुजि इत्यादि दोहा तीन ॥३॥

वहूरि कर्म विचार की मुख्यता करि जीवह कम्म अठाइ जिपरि अप्पे अप्पु इत्यादि दोहा एक ॥१॥

वहूरि मिथ्या भाव के कथन की मुख्यता करि पज्भु इरतउ इत्यादि दोहा आठ ॥८॥

वहूरि सम्यग दृष्टी की भावना की मुख्यता करि काल है, विणु इत्यादि दोहा आठ ॥८॥

वहूरि सामान्य भेदभाव की मुख्यता करि अप्पा संयम इत्यादि दोहा इकतीस ॥३१॥

इति श्री योगिंद्र देव विरचित परमातमा प्रकास ग्रंथ ता विषै एक सो तेईस ॥१२३॥

———

अंतिम भागः—

अथानन्तर ग्रंथ कै अंतिमंगल कै अर्थि आसीर्वाद रूप नमस्कार है ।।

।। मालिनी छन्द ।।

परम पय गयाणं भास उ दिव्वकाउ ।
मणि सि मुणि वराणं मुख दो दिव्व जोउ ।।
विसय सुहरयाणं दुल्ल होजो हुलोए ।
जयउ शिव सरूवो के वलोको विवोहो ।।४३।।

अर्थः—जइउ कहिए सर्वोत्कर्ष ताकरि वृद्धि कूं प्राप्त होउ कैसा है वह परमतत्व दिव्य काउ कहिए दिव्य है ग्यान आनन्द रूप शरीर जाकै अथवा अरहंत पद की अपेक्षा दिव्य काय कहिए परम औदारिक शरीर, कूं धारे है। बहुरि कैसा हैं हजारी सूर्यनितै अधिक है, तेज जाका सकल प्रकासी है ।। जे परम पद कूं प्रापत भए है, केवली तिनिकूं तौ साक्षात् दिव्य काय भासै है पुरपाकार भासि रह्या है । अरजे महा मुनि है तिनिके मन विषैं द्वितीय सुकल ध्यानरूपी वीतराग निर्विकल्प समाधियोग रूप भास्या है । कैसा वह तत्व मोक्ष दो कहिए मोक्ष का देनहारा है अर केवल ग्यान है स्वभाव जाका ऐसा अपूर्व ग्यान योति सदा कल्याण रूप शिव स्वरूप अनते परमात्म भावनां ताकरि उत्पन्न जो परमानंद अतिंद्री सुख तातैं विमुख जे पंच इंद्रीनि के विषय तिनि सूं जे आसक्त है तिनिकूं सदा दुर्लभ है ।। या लोक विषैंइजीव जाकूं न पावै ऐसा वह परम तत्व सो जयवंत होऊ ।। या भांति या परमात्मा प्रकासनामा ग्रंथ विषैं प्रथम ही जे जाया, भणिए इत्यादिक एक सौ तेईस दोहा १२३ अर प्रक्षेपक तीन ३ तिनि सहित पहला अधिकार कह्या । बहुरि एक सौ चौदा ११४ दोहा अर प्रत्येक ५ पांच तिनि सहित दूसरा महा अधिकार कहया ।

अरं पर जाणं तु वि परम मुणि, पर संसग्ग चयंति । इत्यादिक एक सौ सात १०७ दोहा नि मैं तीसरा महा अधिकार कह्या प्रक्षेपक अर अंति की दोय काव्य तिनि सहित तीन सै पैंतालीस ३४५ दोहानि मैं परमात्मा प्रकास का व्याख्यान ब्रह्म देवकृत टीका सहित संपूर्ण भया ।। छ ।।

या ग्रंथ विषै प्रचुरताकरि पदनि की संधि करनी ।। अर वचन भी भिन्न भिन्न कहिए जुदे जुदे धरे सुख सूं समझिवे कै अर्थि कठिन संस्कृत न धर्‌या तातैं इहा लिंग वचन क्रिया कारक संधि समास विसेष्य विशेषण दूषण

न लेने जो पंडित जन विशेपग्य है ते ऐसा जांनहुं ।। जो इह ग्रंथवाल बुद्धिनिके समझिवे कूं सुगम कीया है या परमात्मा प्रकाश की टीका का व्याख्यान जांनि करि भव्य जीवनिकूं ऐसा विचार करनां ।। जो मैं सहज सुद्ध ज्ञानानंद स्व-भावि नीविकल्प हूं उदासीन हूं । निजानंद निरंजन सुद्धातम सम्यक् दर्शन सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र रूप निश्चय रत्नत्रय मई निर्विकल्प समाधि करि उपज्या वीतराग सहजानन्दरूप आनंदानुभूति मात्रा जो सु संवेदन ज्ञान ताकरि गम्य हूं और उपायनि करि गम्य नांही ।। निर्विकल्प निजानंद ज्ञान ही करि प्राप्ति है, मेरी भरितावस्थ कहिए पूर्ण हूँ राग द्वेप मोह क्रोध मान माया लोभ पांच इंद्रीनिके विषय व्यापार मनकाय द्रव्य कर्म भावकर्म नो कर्म क्षाति पूजा लाभ देखे सुनें अनुभए जेभोग तिनि की वांछा रूप निदान बंधभया । मिथ्या शल्य त्रियादि विभाव परिणाम रहित सून्यौ हं कहिए सव प्रपंचनि तैं रहित हूँ ।। तीनलोक तीनकाल विषैं मन वचन काय करि कृत कारित अनुमोदना करि शुद्ध निश्चय नय की मैं आतमाराम ऐसा हूँ तथा सर्व ही जीव ऐसे हैं इह निरंतर भावनां करनी ।।छ।।

यह परमातम प्रकास ग्रंथ का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट के संवोधने अर्थि श्री योगिंद्र देव नैं किया ता परि श्री ब्रह्मदेव नैं संस्कृत टीका करी । श्री योगिंद्राचार्य नें प्रभाकर भट्ट संवोधिवेकैं अर्थि दोहा तीन सैं तीयालीश कीए ।। ता परि श्री ब्रह्मदेव नै संस्कृत टीका हजार पांच च्यारि ५००४ कीएता परि दौलति राम ने भाषा वचनिका का श्लोक अडसठि सैं निवै ६८६० संख्या प्रमाण कीए ।। श्री योगिंद्राचार्य कृत मूल दोहा ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका का दौलतिराम कृत भाषा वचनिका पूर्ण भई ।। छ।। इति श्री योगिंद्राचार्य विरंचित परमात्मा प्रकास की भाषा वचनिका संपूर्ण ।।छ।।

दोहाः—

कटि कूवडि कर वेगडी, नीचा मुख अर नैंण ।
इस संकट पुस्तक लिखूं, नीका राखो सैंण ।।

× × × × ×

आदिपुराण

रचनाकाल :—संवत् १८२४ चैत्र सुदी पूर्णिमा

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

अथ तीसवां पर्व ।

अथानंतर पृथ्वी का प्रभु पश्चिम दिशा के जीतिवेकूं उद्यमी भया, नैंऋत्य कोण कै मार्ग अपनी सेना के साधन करि पृथ्वी कूं वशि करता चाल्या ।।१।। आगे आगे घोड़े जाय हैं तिनि कै पीछे रथ चले अर मध्यविषैं हाथनिकी घटा चाली अर पयादे सर्वत्र चाले ।।२।। या भांति चतुरंगवल देवनि के अर विद्याधरनिके कटक सहित पडंग पृथ्वी विषैं विस्तरचा ।।३।। चालता कटक का क्षोभ ता थकी समुद्र चलायमान भया सो मानूं सेवक जे सुभट तिनिकूं स्वामी कै पीछै चालना पहौंचावनेंकूं संग होना प्रगट दिखावै है ।।४।। कटक के लोकनि बलात्कारतैं भोगे वृक्षनि के फल सो फल तोड़वै वृक्ष नय गए अर नदीनिका जल सुसि गया कीच होय गया अर बड़े बड़े पहाड़ थल होय गए ।।५।। याके कार्य की सिद्धि सब सफल होती भई अतिरसकी भरी सुखकी करणहारी सेवक जननिकरि वांछिवे योग्य महा उत्साह सहित अत्यंत फलती भई याकी मंत्र शक्ति उत्साहशक्ति प्रभुत्वशक्ति ।।६।।

अर सेना, पृथ्वीके जीतिवेकी है इच्छा जाकै सो देदीप्यमान होती भई कैसी है शक्ति अर सेना—काहूतैं भेदी न जाय, दृढ़ है प्रबन्ध जिनिका अर शत्रुनि के क्षयका कारण ।।७।। याके योद्धा वाणनिसहित जीतिके भावकूं प्राप्त भए, कैसे हैं वाण अर योद्धा वाण तौ फल कहिए भाला तिनिकरि संयुक्त हैं अर योद्धा मनवांछित फलकरि युक्त हैं अर वाणहू तीक्ष्ण हैं अर योद्धाहू तीक्ष्ण हैं अरु वाण तौ पक्ष कहिए पांख तिनिकरि सहित हैं अर योद्धा पक्ष कहिए सहायी तिनिकरि संयुक्त हे अर वाणहू दूरगामी अर योद्धाहू दूरगामी ।।८।। अर याके विपक्षी कहिए शत्रु ते सत्यपनैं विपक्ष कहिए पक्षरहित सहायरहित होते भए, सेना के लोकनि तिनिकूं दूरि काढि दीए, ते सब सामग्रीसूं रहित होय गए ।।९।। एक बड़ा अचिरज है याके विरोधी याके कोपकूं होतसंतैं भी कुपति कहिए कुमाणस होय गए सब सामग्रीरहित भए, अर दूजा अर्थ-व्यंग्यरूप-कुपतिनाम पृथ्वीपतिका है । अर याके विरोधी पहाड़निकूं उलंघि दूरि भागे अर दूजा अर्थ भूभृत् नाम राजानिका है अर याके विरोधी अैसे होय गए जो अन्न न मिलैं वनफल खाय आजीविका पूर्ण करते भए अर दूजा व्यंग्य अर्थ-फलसंपदा भोगवते भए ।।१०।। याकै संधि कहिए मिलाप अर विग्रह कहिए युद्ध ताकी चर्चा शास्त्रविषैं होती भई समस्त शत्रुकी पक्षका निराकरण करणहारा ताकैं कौनसूं संधि ? अर कौनसूं युद्ध ? याकै सब सेवक है कोऊ समान होय तौ

संधि विग्रह संभवै ॥११॥ या भांति इह अजेतव्यपक्ष कहिए नांही रह्या कोऊ प्रवल शत्रु जीतिवे योग्य जाकै याकै ढिग सव दीन हैं तथापि इह दिग्विजयकूं उद्यमी भया सो मानूं अपना पालिवेका भरत क्षेत्र ताकी दिग्विजयके मिसकरि प्रदक्षिणा देता भया ॥१२॥

याकी सेनाके लोकनि समुद्रके तीरकी भूमि सब वशीभूत करी. कैसी है तीरकी भूमि-सुपारीके वृक्षनिकरि करी है छाया जहां अर नालेरनिके वनकरि मंडित है ॥१३॥ याकी सेना के लोक सरोवरनिके तीर वृक्षनिकी छाया तहां विश्राम करणहारे तरुण नारेलनिका चया जो रस ताहि पीवते भए ॥१४॥ अर याकी सेना के लोक ताल वनविषैं सुनते भए सूखे पाननिके शब्द, पवन के हलायवेकरि पडैं हैं ताडपत्र तिनिके पडिवेकी महा कठोर ध्वनि होय रही है ॥ १५ ॥ अर दूइ नृपनिका पति तांबूलनिकी वेलिसहित देखता भया खैर के वृक्ष, सो परस्पर मिलिरहे हैं मानूं लोकनिकूं ऐसैं दिखावैं हैं जो पाननिका अर हमारा एक कार्य है जहां पान तहां काथ ॥१६॥ नृपनिका इन्द्र तांवूलनिकी वेलिसूं लगिरहे खैर के वृक्ष तिनिकूं देखता संता इनि वृक्षनिकरि वेढी तांवूलकी वेलि तिनिकूं अवलोकिकरी हर्षित भया, मानूं ए स्त्री–पुरुष के युगलभावकूं आचरे हैं ॥१७॥ अर वनविषैं विहंग जे पक्षी तिनिकूं देखता संता हर्षित भया मानूं ए पंखी मुनिसारिखे सोहै हैं मुनिहुकी यहु रीति है जहाँ सूर्य अस्त होयवेका समय निकट आवै तहांही निवास करै रात्रीकूं गमन न करै अर पंछीहू निशा-विषैं गमन न करैं अर पंखी निरतंर शब्द करै है सो मानूं स्वाध्यायही करै हैं ॥१८॥

अर कटहल के वृक्ष मांही मृदु अर बाहरि जिनिकी त्वचा, कांटेनिकरि युक्त तिनिके मिष्टरस अमृतसमान सेनाके लोक यथेष्ट भखते भए ॥१९॥ नारेलनिका रस पीवना अर कटहलका भोजन अर मिरचनिकी तरकारी, अहो वनका निवासहु सुखकारी है ॥२०॥ अर तीक्ष्णरसकी भरी मिरच तिनिका आस्वादकरि पंखी शब्द करै हैं अर परै हैं आंखिनिसूं अश्रुपात जिनिके तिनिकूं भूपेंद्र देखता भया ॥२१॥ अर तरुण मर्कट महातीक्ष्ण मिरचनिकी मंजरी ताहि भखिकरि सशंकित भए सिर हलावैं हैं तिनिकूं पृथ्वीका पति निरखता भया ॥२२॥ ता समैं कटकके जन लोकके उपकारी जे वनके वृक्ष तिनिकूं फलनिकरी नम्रीभूत देखि कल्पवृक्षनिके अस्तित्वविषैं निःसंदेह भए, मनमैं विचारी –ए वृक्षही फलदाता हैं तौ कल्पवृक्ष तो फलदाता होयही होय ॥२३॥ लतारूप स्त्री ताकरि मन्डित अर फूलरुप प्रसूतिकरि संयुक्त ऐसे वनके वृक्ष मानूं

पृथ्वीपतिके करदेवा किसाणही हैं, ते वृक्ष लोकनिकूं फलनिकरि पोषते भए ।।२४।। नालेरनिका रस सोई भया ग्रासव ताकरि मदोंन्मत्त कछुइक घूमैं हैं नेत्र जिनिके ग्रैसी सिंहलदेशकी स्त्री पृथ्वीपतिका यश श्रुतिगंभीर स्वरसूं गावती भई, वह यश सुननहारेनिके श्रवणनिकूं ग्रतिसुन्दर ।।२५।।

ग्रर त्रिकूटाचल मलयाचल तिनिके तटविषैं ग्रर पांड्यकवाटक नामा पर्वत ताविषै याका यश किंनरीदेवी ग्रतिगम्भीर स्वरसूं गावती भई ।।२६।। ग्रर मलयाचलके निकट वननिविषैं ग्रर सह्याचलके वनविषैं याका यश पृथ्वीके जीतिवेकरि उपज्या सो भीलनिकी स्त्री गावती भई ।।२७।। ग्रर चंदन का उद्यान ताहि स्पर्शिकरि मन्द सुगन्ध पवन बाजती भई, मलयाचलके कुन्जनितैं हरे हैं नीझरणनिके जलकण जानैं ।।२८।। दक्षिणदिशाकी पवन चौगिरद विस्तरती नृपका खेद हरती मानूं पाहुणगतिकरि सेनाके लोकनिका सत्कारही करै है ।।२९।। ग्रर केरल देशकी स्त्री लौंग इलायची ग्रादि सुगन्ध वस्तुनिकी वास तिनिकरी सुगन्ध हैं मुखके श्वास जिनिके ग्रर जिनिके स्तन सघन चन्दनके द्रवकरि चरचे पांडु होय रहे हैं ।।३०।। ग्रर लीलासहित मन्द है गमन जिनिका मानूं नितंवनिके भारकरि मन्द चालैं हैं ग्रर कामके पुष्पवाण तिनिकी कलीके खिलिवेकेसे विभ्रमकूं धरे सुन्दर है मुलकनि जिनिकी ।।३१।। ग्रर कोयलके ग्रालाप समान मधुर हैं वचन जिनिके ते वचन ग्रतिप्रकट नाँही झीणे स्वरकूं धरे हैं ग्रर ग्रतिकोमल जो वाहुलता ग्रतिसुभग हिंडोरे समान तिनिकूं हलावती मनोज्ञ है चेष्टा जिनिकी ।।३२।। ग्रर महासुन्दर नृत्य करती नृत्यसमय स्खलित होय है पगनिकी रचना जिनिकी ग्रर वाहुल्यताकरि मोतीनिके ग्राभूषण पहरे जीते हैं भंवरनिके गुन्जार जिनि ग्रैसे मन्द मनोहर गान करती ।।३३।।

तमालवनकी कुंजगलीनिमैं यथेष्ट विचरती नवयौवनकूं धरे केरलदेश-की स्त्री याका मन प्रसन्न करती भई ।।३४।। सो राजेंद्र दक्षिणदिशाकूं वशिकरि चोल देश केरलदेशके राजा तिनि सबनिकूं जीतिके साधनतैं वशिकरि प्रणाम करावता भया, सब राजा ग्राय पांय परे ।।३५।। कलिंगदेशके उपजे गज मलयाचलपर्वतसमान ऊंचे मानूं ग्रपने उच्च शरीरकरि गिरिनिकी उच्चताकूं उलंघैं हैं ।।३६।। दिग्विजयविषैं सेनाके गज सब दिशानिमैं विश्राम करते दिग्गजपणां ग्रंगीकार करते भए, लोकनि जानी—एही दिग्गज हैं ग्रर ग्रौर दिग्गज कहिए हैं सो उपमाकै ग्रर्थि कहिवेमात्र हैं ।।३७।।

वहुरि भरतक्षेत्रका भूपाल पश्चिमदेशकूं प्राप्त होय सह्याचलके समीप पश्चिमदिशिके समुद्रके तटके राजा तिनिकूं जीतता भया ।।३८।। जीतिका

साधन याका कटक पश्चिमदिशाके समुद्रके तीर निवास करता भया ।।३९।। उपसिंधु कहिए खारडी समुद्र सो अपने दोऊ तटनिविषै राजानिके राजाका कटक देखि भयथकी क्षोभकूं प्राप्त सोय मानूं आकुल व्याकुल भया ।।४०।। सेनाके क्षोभतैं समुद्र या तट की उर प्राप्त होय अर या तट की उर निवास करती सेनाके क्षोभतैं वा तटकी उर प्राप्त होय है ।।४१।। हरितमणि तिनिकी प्रभाके विस्तारकरि समुद्रका जल अैसा सोहता भया मानूं चिरकालतैं सिवाले नीचैं हुता सो ऊपरि आय गया है ।।४२।। अर कहूंइक पद्मरागमणिनिकी किरणनि करि समुद्रका जल अैसा सोहता भया मानूं कटकके क्षोभतैं समुद्रका हृदय विदार्या गया है तातैं उचलै है रुधिरकी छटा ।।४३।। सह्याचल पर्वतके तटकूं समुद्रका जल स्पर्श है सो मानूं याकी गोहमैं लोटता संता अपना दुख निवेदन करै है अर वह याकूं धारता संता मानूं भाईका भाव प्रगट करै है ।।४४।। न सह्या परै अैसा बलका संघट्ट ताकरि सो सह्याचल भग्न भए जे वृक्ष तिनिकरी मानूं हाथ ऊँचेकरि पुकारही करै है ।।४५।। सह्याचल कटककरि बिदार्या, चलायमान हैं प्राणी जहाँ सो गुफाके छिद्रनिकरि आकुल शब्द करता मानूं मृत्युदशाकूं प्राप्त होय है, कैसा है पर्वत—सिंहादि प्राणी ते ही हैं प्राण जाके। भावार्थ—जो मृत्यु दशाकूं प्राप्त होय है ताके प्राण चलायमान होय हैं अर याके प्राणी चलायमान हैं ।।४६।। चलायमान हैं वृक्ष जाके अर चलायमान हैं प्राणी जहाँ अर शिथिल होय गई है कटिनी जाकी सो पर्वत या भांति चलाचल होता थका कहिवेमात्रही अचलनाम धरावता भया, लोकन जानी—कहिवेका अचल है ।।४७।।

प्राणीनिके समूहनैं कीया है वनका भोग अर तुरंगनिके खुरघट्टनकरि तथा कटकके लोकनिके पांयनिकरि चूरी संती सह्याचलकी भूमि क्षणमात्रमैं स्थलके भावकूं प्राप्त भई ।।४८।। चक्रवर्त्तीके विजय गज पश्चिमके समुद्रके तटपर्यंत अर मध्यमाचलगिरीपर्यंत अर तुंगवर पर्वतपर्यंत भ्रमते भए, कैसा है तुंगवर-ऊंचे पाषाणनिकरि संयुक्त है ।।४९।। बहुरि कृष्णगिरीकूं उलंघि अर सुमंदरगिरीकूं उलंघि बहुरि मुकुंदगिरिकूं उलंघि राजेंद्रके गजराज भूमिमैं भ्रमते भए ।।५०।। तहां पश्चिमदिशिके समीपके हाथी छोटी है ग्रीवा कहिए नारी जिनिकी अर लांबे हैं दांत जिनिके अर सुंदर हैं नेत्र जिनिके अर मृदु है त्वचा जिनिकी सचिक्कण श्याम महापुष्ट ।।५१।। बडा है शरीरका ऊपला भाग जिनिका उत्तुंग है अंग जिनिका अर रक्त हैं जीभ होठ तालवे जिनिके महामानके धारणहारे अर दीर्घ है पूंछ जिनिकी अर कमलसमान सुगंध झरै है मद जिनिकै ।।५२।। अपने वनविषैं संतुष्ट अर महाशूरवीर दृढ हैं चरण जिनिके

अर सुंदर है शरीर जिनिका अैसे पश्चिमके हस्ती वननिके स्वामी अति आदरसूं भेट ल्याए तिनिकूं आप राखता भया ॥५३॥

सो पृथ्वीका राजा अनेक नदी उलंघता भया, कैसी हैं नदी-वन ही हैं रोमावली जिनिकै अर ऊंचे तट तेई हैं नितंव जिनिके, केई नदी पूर्वगामिनी केई नदी पश्चिमगामिनी मानूं सह्याचलकी पुत्रीही हैं, तिनिकूं उलंघता भया ॥५४॥ विचरैं हैं भीषण ग्राह जिनिमैं अैसी भीमानामा नदी अर भीमरथी जलचरके समूह तिनिकरि उठचा है भंवर जिनिमैं अैसी दारुवेणा अर दारुणा महानदी तिनिकूं उलंघता भया ॥५५॥ अर नीरानामा नदी नीरके तीर जे वृक्ष तिनिके शाखाके अग्रभागकरि आच्छादित है जल जाका अर मूलानामा नदी ढाहेनिकूं उपाडैं अैसा है प्रवाह जाका सो अपने प्रवाहकरि मूलतैं उखारैं हैं तटके वृक्ष जानैं ॥५६॥ अर वाणा नामा नदी, सो कैसी है—निरंतर वहै है जल जामैं अर केतवा नामा नदी सदा जलकरि भरी बहुरि करीरीनामा नदी सो कैसी है—करी जे हाथी तिनिके दांतनिकरि विदारे हैं तट जाके इत्यादि महानदी तिनिकूं नृपनिका इंद्र उलंघता भया ॥५७॥ बहुरि प्रहरा नामा नदी विषम जे ग्राह तिनिकरि दूषित मानूं वह नदी असती कहिए दुराचारिणी नारीही है, दुराचारिणी स्त्री विषम ग्राह जे नीचजन तिनिकरि दूषित है बहुरि मुररा नामा नदी कुरर जातिके पंछी तिनिकरि सेव्य सो नदी कीच रहित मानूं महासतीही है महासतीहू पंक कहिए कलंक ताकरि रहित है ॥५८॥

अर पारा नामा नदी जाके जलके तीर शब्द करैं हैं कुरंचि कलहंस सारस। अर मदनानामा नदी कैसी है मदना—समानस्थल अर नीचेस्थल तिनिविषैं जलकरि समान है अर अखंड हैं गति जाकी ॥५९॥ अर वेणुकानामा नदी मानूं इह नदी सह्याचलरूप गजकी मदधारा ही है। अर गोदावरी अखंड है प्रवाह जाका अति विस्तारकूं धरैं है ॥६०॥ अर करीरवनकरि मंडित है तीरकी भूमि जाकी अैसी तापी नामा नदी आतापके संतापतैं कछुइक उष्णजलकूं धरतीसंती वहै है ॥६१॥ अर रम्या नामा नदी ताके तीरके वृक्ष तिनिकी छाया सूते हैं मृगनिके बालक, अर लांगल खातिकानामा नदी कैसी है मानूं पश्चिम दिशाकी खाई ही है ॥६२॥ इत्यादि अनेक नदी तिनिकूं सेनापति सेनासहित उलंघता भया जहां जहां सेनापति गया तहां तहां वनके माते हाथी ग्रहता भया ॥६३॥ चक्रवर्त्तिका कटक सह्याचलकूं उलंघि विंध्याचल जाय प्राप्त भया, कैसा है सह्याचल पसारी हैं नदीरूप जीभ जानैं सो मानूं समुद्रकूं पीवेकूं उद्यमि भया है ॥६४॥

अब कटक विंध्याचल आया सो विंध्याचलकूं भूपनिका भूप आपसमान देखता भया—वह गिरिनिका पति उत्तुंग अर वह आपहू उत्तुंग अर आप तौ बडे वंशकूं धरे अर वह बडे बांसनिकूं धरे, आप दीर्घताकूं धरै अर वहहू दीर्घताकूं धरे, आपहू औरनिकरि अलंघ्य अर गिरिहू औरनिकरि अलंघ्य तातैं गिरींद्रकूं आप तुल्य देखि प्रसन्न भया ।।६५।। कैसा है गिरी—अपने ऊंचे शिखरनिकरि सोहै है उछलिकरि दूरि जाय परैं हैं निझरने जिनितैं अर ध्वजासहित विमाननिके समूहकरि मानूं विश्रामकै अर्थि याका आश्रय ले हैं ।।६६।। जो विंध्याचल अपनी पूर्व अर पश्चिमकी अणी तिनिकरि समुद्रकूं अवगाहिकरि तिष्ठया है मानूं दावानलके भयतैं समुद्रसूं मित्रता कीया चाहे है ।।६७।।

अर निरन्तर झरै हैं नींझरने जाकै तलहटीके वृक्षनिके सींचिवेकै अर्थि सो मानूं इह गिरि अैसा भाव कहै है—बडे नृपनिकूं इह योग्य है जो अपने चरणनि लागे तिनिकूं पालन करै ।।६८।। अर तटविषैं तिष्ठते ऊँचे पाषाण तिनिसूं स्खलित होय उछलै है जल जाका अैसी नदीरूप नारी तिनिकूं मानूं शब्दसहित नीझरने तिनिकरि हसैसी है ।।६९।। अर दावानल नीचले विस्तीर्ण वन तिनिकूं जलकी सरदीकरि दाहिवेकूं असमर्थ तातैं भृगुपात कहिए गिरितैं गरिवेकै अर्थि शिखरकूं चढै है भावार्थ—तलैं सरदी जलकी घनी है अर शिखरपरि जल ठहरै नांही तातैं शिखरपरि दावानल लागै है सो मानूं झंपापात वेलेकूं चढी है ।।७०।। प्रज्वलित दावानल ताकरि संयुक्त जे गिरिके शिखर तिनिकूं वनचर जे भील ते ज्येष्ठ आषाढके दिनानिमैं सुवर्णसारिखे लखै हैं ।।७१।।

जाके वन मातंग जे हाथी अथवा भीलादिक चांडाल तिनिकरि संयुक्त हैं अर भुजंग कहिए सर्प अथवा विषके भरे दुष्ट जीव तिनिका है संचार जहाँ अर विजाति कहिए पक्षी अथवा नीच जाति तेई भए कंटक तिनिकरि पूर्ण हैं तातैं कहूंइक अतिकष्टकूं धरै हैं ।।७२।। अर माते हाथी तिनिका है योग जहाँ अर समुद्र लवणकी है बाहुल्यता जहाँ अर विपत्र कहिए पंखीनिकी पांख जहाँ बहुत पडी हैं अर पत्र तथा कूंपल तिनिकरि बहुत सोहै है ।।७३।। अर कहूंइक फटि गए हैं बांस जिनिके उदरतैं गिरे जहाँ तहाँ विखरि रहे हैं मुक्ताफल तिनिकरि मानूं वनलक्ष्मी प्रगट जो दांतनिकी किरण ताकरि वनविषैं हसैही है ।।७४।। अर इह विंध्याचल गुफानिके मुख तिनिकरि झरै हैं नीझरने तिनिके शब्दकरि मानूं गाजैही है, अपनी महिमाकरि करी है कुलाचलनिसूं स्पर्द्धा जानैं ।।७५।।

अर इह पहाड नीचे ऊंचे स्थानक तिनिकरि अर नानाप्रकारकी गेरू आदि धातु तिनिकरि अर नानाप्रकारके मृगनिके रूप तिनिकरि मानूं चित्रपटके आकारकूं धरे है ।।७६।। अर जाके वनविषैं रात्रिसमैं औषधि प्रज्वलित होय है सो मानूं देवनि ए दीपक प्रज्वलित कीए हैं अन्धकारके हरणहारे ।।७७।। अर कहूंइक मृगेंद्रनि विदारे हैं गजेंद्रनिके कुम्भस्थल तिनितैं उछलैं हैं मोती तिनिकरि जाका समीपस्थल बिखरे पुष्पनिकी शोभाकूं धरै है ।।७८।। सो नृपनिका नृप दूरिहीतैं महागिरिकूं देखि परम आनन्दकूं प्राप्त भया मानूं वह गिरि राजराजेंद्रकूं पवनकरि हालते तट के वृक्ष तिनिकरि बुलावै है ।।७६।। सो चक्रेश्वर विंध्याचलके किरात कहिए भील अर करी कहिए हाथी तिनिकूं समूहसहित दूरतैं देखता भया, कैसे हैं किरात अर कैसा हैं करी—कालीघटा-मयान काले अर भील तौ बांस के धनुष धरैं अर हाथी धनुषके आकार वंश कहिए पीठ ताहि धरैं ।।८०।। ता पर्वतके तटविषैं नदीरूप स्त्री चंचल जे मच्छी तेई हैं नेत्र जिनिकैं अर पंछीनिके शब्द तेई हैं अव्यक्त सुन्दर शब्द जिनिके ऐसी नदीरूप नारी तिनिकूं नरपति निरखता भया ।।८१।।

अर विंध्याचलकै मध्य नर्मदा नदीकूं देखता भया सो नर्मदा नदीनिमैं बडी मानूं विंध्याचलकी समुद्रपर्यंत कीर्ति विस्तरी है काहूपैं निवारी न जाय ।।८२।। तरंगरूप है जलका वेग जाका ऐसी नर्मदा मानूं पृथ्वीकी लांबी चोटीही है अर विंध्याचलपर्वतकी पताकाही है समस्त पर्वतनिकूं जीतै ताकी प्रशंसा प्रगट करणहारी ।।८३।। सो नदी कटकके क्षोभतैं उठी है पंछीनिकी पंक्ति जाविषैं सो मानूं पृथ्वीका पति अपने स्थल आया तातैं तोरणही बांधे हैं, पंखीनिके उडिवेतैं क्षणेक ऐसी भासी ।।८४।। अर इह सांचिली नर्मदा है जो राजानिकी रानीनिकूं नर्म कहिए क्रीडा ताकी देनहारी ताके मध्य मच्छी केलि करै हैं ।।८५।। ता नर्मदाकूं उतरिकरि राजेश्वरका कटक विंध्याचलकै पैलै तट जाय पहोंच्या घरकी देहलीकी बुद्धिकरि विंध्याचलकूं उलंघ्या अर नर्मदाके पार भए, कैसी है नर्मदा—कटकके क्षोभतैं उडी है पंखीनिकी पंक्ति जाविषैं ।।८६।।

अर विंध्याचल नर्मदाकै दक्षिणदिशिभी देख्या अर उत्तरदिशिभी देख्या मानूं विंध्याचलनैं दोऊदिशाविषैं अपना रूप दोयप्रकार कीया है दोऊही दिशानिमैं जाका छेह नाही ।।८७।। चक्रीका कटक नर्मदाकी चौगिरद विंध्या-चलकूं वेडिकरि निवास करता भया मानूं इह कटक दूजा विंध्याचलही है ।।८८।। वह कटक अर विंध्याचल परस्पर भेद न धारते भए, कटकमैं तौ गज अर गिरीमैं गंडोपल कहिए ऊंचे स्थानक अर कटकमैं अश्व अर पर्वतमैं अश्व-

चक्र कहिए किंनर देव, अश्वहू चपल अर किंनरहू चपल ॥८९॥ कटकनैं भखे समस्त फल अर पल्लव अर तरु सो विंध्याचल दल फल पुष्प वेलि पत्र तिनिकरि रहित होयगया सो मानूं, विंध्याचल बंध्याचल होय गया। वंध्या नाम निफलका है ॥९०॥ बांसनिके चावल बांसनिके मोती निकरि मिश्रित तिनिकरि कटकके लोग जिनेंद्रकी अर्चा करते अपनी इच्छाकरि सुखसूं तिष्ठते महामनोज्ञहै विंध्याचल की स्थली ॥९१॥ तहां पृथ्वीपतिनैं निवास किया तव वनके राजा राजाधिराजकूं देखते भए अर वनकी नानाप्रकारकी वस्तु प्रशंसायोग्य रोगकी निवारणहारी महाऔषध भेट करते भए ॥९२॥ हाथीनिके दांत अर गजमोती अर बांसनिके मोती भीलनिके अधिपति भेट करते भए सो उचितही है पृथ्वीपतिका सत्कार करना ॥९३॥

नर्मदाकूं उतरि विंध्याचलकूं उलंघि चक्रवर्त्तीका कटक पश्चिमदिशाके जीतिवेकूं प्रयाण करता भया ॥९४॥ पहली कछुइक उत्तरदिशाकी तरफ कटक जायकरि पश्चिमदिशाकूं चक्रसहित प्राप्त भया, याका प्रताप तौ पहिलीही सव उर व्यापि रह्या है ॥९५॥ कटकके अश्व तिनिके खुरनितैं उठी पृथ्वीकी रज सो सूर्यके तेजकूं रोकती भई केवल वैरीनिकाही तेज न रोक्या जाके तेज आगैं सूर्यहूका तेज रुकिगया ॥९६॥ लाट देशके राजा ललाटकरि स्पर्श्या है पृथ्वीतल जिनि अतिसुन्दर भाषा वोलते प्रभुकी आज्ञाके वशि होय लाभाटिक पदकूं प्राप्त भए। जो स्वामीका अभिप्राय जानैं अर आज्ञाप्रमाण कार्य केरिवेकूं समर्थ ताहि लालाटिक कहिए ॥९७॥ कैयक वनके अधिपति सोरठदेशके गज अर पंचनदीके वननिके गज भेंटकरि पृथ्वीनाथका दर्शन करते भए, चक्रकरि सव चलायमान होय गए ॥९८॥ चक्रके देखिवेतैं डरे, देश तजि पृथ्वीनाथकै समीप आए तिनि जानी इह सव पृथ्वी चक्रेश्वरकी है जाहि जो स्थल देय सो पावै कैयक राजा क्रूरग्रह समान महाक्रूर हुते सो चक्रीकै वशि भए ॥९९॥

भरतक्षेत्रका पति सव दिशानिके देशपति माते हाथी समान मदोन्मत्त तिनिकूं अपने बलतैं दवाय सूधे करता भया कैसे हैं राजा अर कैसे हैं गजराज— राजा तो वडे वंशके उपजे अर गज वडे पीठिकूं धरैं, वंशनाम पीठहूका है, अर हाथी मदोन्मत्त राजाहू मदोन्मत्त सो सव राजा राजेंद्रके प्रतापतैं निर्मद होय गए ॥१००॥ सोरठदेशके राजा अर उष्ट्रदेशके राजा ल्याए हैं अनेक प्रकार भेटनिके समूह तिनिकूं पृथ्वीनाथ संतुष्ट करता तिनिपरि कृपा करता गिरिनारगिरिकी थली आया ॥१०१॥ सोरठदेशविषैं गिरिनारगिरि सुमेरुसारिखा पर्वत तहां भरतक्षेत्रका पति आय पहौंच्या, असवारीतैं उतरि गिरिनारिकी प्रदक्षिणा

देय होनहार बावीसमैं तीर्थंकर तिनिका ध्यान करता गिरिकी वंदना करी ।।१०२।। रोमी कपडे अर रेशमी कपडे अर चीन पाटंवर इत्यादि अनेक प्रकार-के वस्त्र भेंटकरि भूपति भूपेंद्रका दर्शन करते भए ।।३।। कैयकनिकूं सन्मान दान-करि कैइकनिकूं स्नेहवचनकरि कैयकनिकूं कृपाकी दृष्टिकरि अतिहर्षित करता भया ।।४।। अर नानाप्रकारके गज अर ऐराकी घोडे अर नानाप्रकारके रत्न तिनिकरि पश्चिमदिशाके राजा सोरठमैं आया नृपतिका नाथ ताहि पूजते भए ।।५।। महातेजस्वी शरीर जिनिका अतिसुन्दर बुद्धिमान तरुण वय पराक्रमगुण-करि मंडित तुरुक्कदेशके उपजे तुरंगम तिनिकरि कैइकराजा राजेश्वरकूं पूजते भए ।।६।। अर कैयक राजा कांवोजदेश के घोडे अर वाल्हीकदेशके घोडे तथा तैतिलदेशके अर अट्टदेशके सिंधुदेशके वनायुदेशके गांधारदेशके वाणदेशके इत्यादि अनेक देशनिके तुरंगम तिनिकरि भूपेंद्रकूं आरावते भए ।।१०७।। महाकुलीन ऐराकी जातिके घोडे नानादेशके विचरणहारे पूर्ण हैं अंग जिनिके तिनिकरि भूप भूपेंद्रकूं सेवते भए ।।१०८।। प्रयाण प्रयाण प्रति याकै केवल रत्ननिहीका लाभ न भया यशका अत्यन्त लाभ भया जे राजा दुःसाध्य हुते ते अपने वलतैं सब वशि कीए ।।६।। जल और थलके पंथ तिनिकूं सब ओरतैं रोकि अपनी जीतिके साधनकरि गए सिंधुके सब राजानिकूं सेनापति जीतता भया ।।११०।।

नानाप्रकारके देश अर वन नदी पर्वत तिनिकूं उलंघि सेनापति पश्चिमके राजानिकूं पृथ्वीपतिकी आज्ञा सुनावता भया ।।१११।। जो काहू ठौर कछु अपराध न होय, हिंसादिक पाप अर अनीति कोऊ करि न सकै, चोरी जोरी न होय, या भांति आज्ञा सुनाय जैसैं पूर्वके भूपाल वशि कीये हुते तैसैं पश्चिमके अनुक्रमतैं वशि कीए, हर्‌या है तिनिका मानधन, या भांति सबनिकूं वशिकरि राजेंद्र पश्चिमके समुद्र आया ।।१२।। सो समुद्र तरंगनिरूप कर तिनिकूं विस्ता-रता दूरहीतैं मानूं नरेंद्रका सत्कार करता भया तरंगनिमैं नानाप्रकारके रत्न विस्तरे सो मानूं समुद्र अर्घपाद्यही करै है ।।१३।। जवाहरिनिकरि प्रशंसायोग्य जे वडे जवाहरी तिनिकरि या समुद्रके रत्न अल्पमूल्य गिनिये हैं अर या चक्रेश्व-रके रत्न बहुमूल्य गिनिये हैं ।।१४।। अर इह नामकरि लवणसमुद्र सो लघु भया तातैं तासमैं नृपनि ऐसा माना जो इह चक्रही रत्नाकर है अनेक रत्नतिकी राशि है, या भांति सब राजनि बहुत प्रशंसा करी ।।१५।।

या पश्चिमदिशाविषै सूर्य आवै है तब सूर्यहूका तेज मंद होय जाय है सो याहू दिशिमैं नृपेंद्रका तेज अति देदीप्यमान होता भया, पश्चिमके सब राजा जीते ।।१६।। इह चक्रेश्वर शत्रुनिकूं तीव्र उद्वेग उपजावता सूर्यसमान दिपता

भया चक्ररत्नकूं धारता सकलप्रजाके दुख टारता गुणरुप समुद्रकूं पूर्ण करता भया, सब शत्रु कंपायमान करे ॥१७॥ समुद्रके तीर चाल्या, पश्चिमके तीर पहुंच्या जो द्वार होय सिंधुनदी समुद्रमैं प्रवेश कीया है असा सिंधुद्वार ताके समीप कटकके डेरे कराए, कैसा है कटक—अपने चित्तसमान निराकुल है चक्रेश्वर महालक्ष्मीवान जा समान अन्य कोऊ विभूतिवंत नांही ॥१८॥ सिंधुके तटके वन तहां सेनाके डेरे भए फौजके हाथी तिनिके चरिवेकरि पेडमात्र रहिगये ॥१९॥ तहां मंत्रसहित चक्ररत्नकी पूजा करी समस्त रीतिका वेत्ता पुरोहित, पंचपरमेष्ठीकी विधिपूर्वक पूजा करी ॥२०॥ पवित्र गंधोदकसूं मिश्रित आसिकासहित अक्षत देयकरि पवित्र आशीर्वाद देय पुरोहित चक्रीकूं आनन्द उपजावता भया ॥२१॥ तासमैं धरे हैं देवोपनीत शस्त्र जानैं पहली रातिप्रमाण रथविषैं आरूढ होय लवणोदधिकूं गायके खोज समान अल्प जानि पृथ्वीका पति लवणोदधिकूं अवगाहता भया ।२२॥ उत्कृष्ट है दीप्ति जाकी असा प्रभासनामा देव ताहि जीत्या पृथ्वीका पति अपनी प्रभाके समूहकरि सूर्यकी प्रभाकूं तिरस्कार करै है ॥२३॥ जो वीरलक्ष्मी सोई भई मच्छी ताके वशि करिवेकूं जालसमान मोतीनिका जाल अर संतान जातिके कल्पवृक्षनिकी माला अर सुवर्णका जाल ए सब प्रभासदेव भेट करी सो चक्रधर ग्रही ॥२४॥ या भांति पुण्यके उदयतैं पृथ्वीपति वडे देवनिकूं जीतता भया तातैं बुद्धिमान पुण्यरूप धनका निरंतर उपार्जन करहु, सो पुण्यधन महाप्रबल है ॥२५॥

चक्रवर्तीनिमैं आदि प्रथमचक्री अतुल है लक्ष्मी जाकै अर नाचते उछलते उत्तुंग तुरंग तिनिके खुरनिकरि चूर्ण कीए हैं विषमस्थल जानैं, तुरंगनिके खुरनिकरि उठी रेणु ताकरि समुद्रकूं श्यामता उपजावता संता प्रभासदेवकूं जीतिकरि ताथकी सारभूत वस्तु लीन्ही ॥२६॥ लक्ष्मीके हींदिवेकी लतासमान संतानजातिके कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी माला उरविषैं धारी अर मोतिनिका अर सुवर्णका जालजुगल ताकरि संयुक्त जैसैं कोऊ वींद वींदनी परणि भीतरतैं बाहर निकस तैसैं लक्ष्मीका ईश लक्ष्मीकूं परणकरि समुद्रतैं निर्भय निकसता नूतन वरकी शोभाकूं धरता अत्यन्त सोहता भया ॥१२७॥ समुद्रपर्यन्त पूर्वके राजा अर समस्त दक्षिणके राजा वैजयंतद्वारपर्यन्त तिनिकूं जीतिकरि पश्चिमका समुद्र है सीमा जाकी असी पश्चिमदिशा तहांके दिक्पालनितुल्य भूपाल तिनितैं प्रणाम करावता समस्त देवनिकूं कंपायमान करता समस्तदिशाके चक्रकूं अरिचक्ररहित करता भया । या भांति जीते हैं सकलभूप जानैं असा नृपनिका प्रभु पृथ्वीकूं वशि करता भया ॥१२८॥ इह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे राजन्! पुण्यके प्रभावतैं इह जीव भूमंडलकी जीतनहारी चक्रवर्त्तीकी लक्ष्मी

ताहि पावै है अर इन्द्रपदकी दिव्यलक्ष्मी पावै है अर पुण्यथकीही तीर्थङ्करकी विभूति पावै है अर पुण्य ही थकी परंपराय मोक्षकी अविनाशी लक्षमी पावै है। या भांति पुण्यके प्रभावतैं ए च्यारू विभूतिनिका भव्यजीव भाजन होय है तातैं ऐसा जानि जे सुबुद्धि हैं ते पवित्र जिनेंद्रके आगमतैं पुण्यकू उपार्जो ॥१२९॥

इति श्री भगवज्जिनसेनाचार्यविरचित त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पश्चिमार्गवद्वारविजयवर्णन नाम तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३०॥

× × × × ×

डॉ० कासलीवाल के अध्यवसाय और अनुसंधान का यह एक और पुण्य फल हमारे सामने है। इसमें दौलतराम की कृतियां, कुछ आंशिक, कुछ पूरी दी गयी हैं, जिससे दौलतराम की लेखनी के रस का आनन्द हमें मिलता है, किन्तु इसकी भूमिका में विद्वान डॉ० कासलीवाल ने दौलतराम के समकालीन कवियों का परिचय देकर हिन्दी-साहित्य का बहुत उपकार किया है। इससे जयपुर में दौलतराम जी की समृद्ध साहित्यिक पृष्ठ-भूमि का ज्ञान भी उपलब्ध हो जाता है। जयपुर की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का विशेष ज्ञान भी हमें ऐतिहासिक संदर्भ-सहित इस भूमिका में उपलब्ध होता है—और राजनीतिक स्थिति का भी। जैन धर्म के एक लब्ध प्रतिष्ठ कवि और उसकी कविता का गहन परिचय इसमें प्रस्तुत किया है, इससे हिन्दी के इतिहास को प्रकाशित करने वाली सामग्री भी हमें उपलब्ध होती है। श्री दौलतराम की कृतियां स्वयं बहुत महत्त्व रखती हैं, उन्हें सम्पादित करके प्रकाश में लाने का बहुत उपयोगी कार्य डॉ० कासलीवाल एवं श्री महावीर क्षेत्र कमेटी ने किया है। मैं इस कार्य के लिए उन्हें बधाई देता हूँ।

डॉ० सत्येन्द्र
निदेशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर